बी०कॉम० (प्रतिष्ठा) द्वितीय खण्ड

व्यावसायिक सन्नियम-तृत्तीय पत्र

क्रम सं०	पाठ	इकाई संख्या	पृष्ठ सं०
1.	व्यावसायिक सन्नियम	1	01-09
2.	वैध अनुबन्धा के आवश्यक तत्त्व	2	10-34
3.	अनुबन्धों का निष्पादन, समाप्ति एवं अनुबन्ध-भंग	3	35-44
4.	गर्भित अथवा अर्द्ध-गर्भित अनुबन्ध	4	45-57
5.	निक्षेप एवं गिरवी के अनुबन्ध	5	58-70
6.	एजेन्सी अनुबन्ध	6	71-89
7.	वस्तु-विक्रय अधिनियम	7	90-117
8.	भारतीय साझेदारी अधिनियम	8	118-137
9.	पंच-निर्णय अधिनियम 1940	9	138-147

© दूर शिक्षा निदेशालय, पटना विश्वविद्यालय

दूर शिक्षा निदेशालय, पटना विश्वविद्यालय के डायरेक्टर (निदेशक) की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तिका के किसी भी अंश का पुर्नप्रकाशन नहीं होगा।

व्यावसायिक सन्नियम (Business Law)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

1.0 उद्देश्य (Objective)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 परिभाषाएँ

1.3 भारतीय व्यावसायिक सन्नियम के स्रोत (Sources of Indian Business Law)

1.4 व्यावसायिक सन्नियम का क्षेत्र (Scope of Business Law)

1.5 अनुबन्ध की परिभाषा (Definition of Contract)

1.6 ठहराव (Agreement)

1.6.1 ठहराव के लक्षण (Characteristics of Agreement)

1.6.2 ठहराव के प्रकार

1.6.3 व्यर्थ ठहराव एवं व्यर्थनीय ठहराव में अन्तर (Difference between Void Agreement and Voidable Agreement)

1.6.4 व्यर्थ एवं अवैध ठहराव में (Difference between Void Agreement and Illegal Agreement)

1.7 सारांश (Summuing up)

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1.9 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य छात्रों को व्यापारिक सन्नियम के बारे में विस्तृत जानकारी दी जायेगी।

त्रि-वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम (Three Years Decree Honours) के अन्तर्गत बी०कॉम० खण्ड दो में प्रथम पत्र है। इस पत्र के अन्तर्गत आप लोगों को व्यापार के संचालन में लागू एवं प्रयोग होने वाले सभी वैधानिक नियमों एवं सिद्धांतों का अध्ययन करना है। किन्तु इस प्रथम पाठ के अन्तर्गत हम व्यावसायिक सन्नियम का आशय, परिभाषाएँ, स्रोत एवं अनुबन्ध के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यावसायिक सन्नियम के अन्तर्गत व्यापारिक सम्बन्धों एवं सभ्य समाज में रहने वाले मानव की वाणिज्य सम्बन्धी क्रियाओं से सम्बन्धित समस्त वैध सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने इच्छानुसार किसी भी व्यापार अथवा उद्योग की स्थापना करने के लिए स्वतन्त्र है, किन्तु इस प्रकार के व्यापार अथवा उद्योग के सफल संचालन हेतु राज्य द्वारा प्रतिपादित नियमों अर्थात् व्यावसायिक सन्नियम का मानव के आर्थिक क्रिया-कलापों से घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें उन समस्त नियमों एवं उप-नियमों का अध्ययन किया जाता है जो व्यापार अथवा उद्योग से सम्बन्धित होते हैं एवं जिनका मानवीय आर्थिक क्रियाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक सन्नियम का आशय व्यापार सम्बन्धी उन सभी वैधानिक नियमों एवं सिद्धांतों से है जो व्यापार के संचालन में लागू होते हैं एवं प्रयोग किये जाते हैं।

1.2 परिभाषाएँ ()

व्यावसायिक सन्नियम की परिभाषाएं विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से दी है जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं-

(क) प्रो० ए० के० सेन के अनुसार, व्यावसायिक सन्नियम के अन्तर्गत वे राज नियम आते हैं, जो व्यापारियों, वर्कर्स तथा व्यावसायियों के सामान्य व्यवहार पर लागू होते हैं और जो राजनियम की उस शाखा को स्पष्ट करते हैं, जिनका सम्बन्ध सम्पत्ति के अधिकारी एवं व्यापार में लगे हुए व्यक्तियों के सम्बन्धों से होता है। (Commercial Law includes the law applicable to the ordinary transaction of merchants, bankers and traders and denotes that branch of the law which related to the rights of property and the relation of persons engaged in commerce.)

(ख) प्रो० एम० सी० शुक्ला के शब्दों में - "व्यापारिक सन्नियम राज नियम की वह शाखा है जिसमें व्यापारिक व्यक्तियों के उन अधिकारों एवं दायित्वों का वर्णन होता है जो कि व्यापारिक व्यवहारों से उत्पन्न होते हैं।" (Mercantile Law may be defined as that branch of law which deals with the rights and obligations of mercantile persons arising out of mercantile transactions in respect of mercantile property.)

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं-

(i) व्यावसायिक सन्नियम राज नियम का ही एक भाग है।

(ii) **यह व्यवसायियों के सामान्य व्यवहारों पर लागू होता है।**

(iii) व्यापारियों के अधिकारों एवं दायित्वों को स्पष्ट करता है।

1.3 भारतीय व्यावसायिक सन्नियम के स्रोत (Sources of Indian Business Law)

भारतीय व्यावसायिक सन्नियम का निर्माण अंग्रेजी शासन काल में किया गया था। यही कारण है कि इनपर अंग्रेजी अधिनियमों का गहरा प्रभाव है। इन सन्नियमों में आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं प्रथाओं एवं रूढ़ियों के आधार पर संशोधन कर दिये गये हैं। विभिन्न विद्वानों के अनुसार इनके निम्नलिखित मुख्य स्रोत हैं-

(1) संसद द्वारा निर्मित परिनियम (Statutes) - ऐसे सन्नियम जो किसी देश के संसद एवं विधान सभाओं द्वारा बनाये जाते हैं उसको परिनियम कहते हैं। इसे भारतीय व्यावसायिक सन्नियम का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत माना गया है। ये परिनियम स्पष्ट एवं लिखित होते हैं। अनुबन्ध अधिनियम, वस्तु विक्रय अधिनियम, साझेदारी अधिनियम एवं कम्पनी अधिनियम इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इंगलैण्ड की संसद ने इन अधिनियमों का निर्माण किया था, जिनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके भारतीय संसद ने उन्हें अधिनियम के रूप में अपना लिया

(2) अंग्रेजी कॉमन लॉ (English Common Law) - इस नियम के अन्तर्गत ऐसे नियमों का समूह आता है, जो सामान्य रूढ़िवादी प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों से सम्बन्धित था। ऐसे नियमों को ऐसे स्थानों पर लागू किया जाता है जहाँ परिनियम उपलब्ध नहीं होते अथवा वे अस्पष्ट एवं भ्रम उत्पन्न करने वाले होते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय न्यायालय अंग्रेजी लॉ का ही सहारा लेकर निर्णय करते हैं।

(3) न्याय सिद्धांत (Principles of Equity) - प्राचीन काल में राजा जनता की शिकायतों को सुनता था एवं उन पर अपना निर्णय दिया करता था। यह प्रथा इंगलैंड में भी प्रचलित थी। सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन के साथ-साथ इस नियम में भी परिवर्तन हुआ और राजा जनता की शिकायत चान्सलर को भेजने लगा। प्रायः चान्सलर जो पादरी हुआ करता था, शिकायतों को निपटारा प्राकृतिक न्याय, शुद्ध अन्तःकरण और स्वयं के सामान्य विवेक एवं समाज द्वारा माने जाने वाले सिद्धांतों के अनुसार किया करता था। इस प्रकार चान्सलर द्वारा जिन सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता था उन्हीं को न्याय सिद्धान्त कहा जाता है।

इंगलैंड की ही तरह भारत में भी जहाँ कहीं साधारण सन्नियम न्यायपूर्ण हल प्रदान नहीं करता, वहां न्यायालय को न्याय के अधिकार पर निर्णय करने का अधिकार दिया गया है।

(4) भारतीय रीति-रिवाज (Indian Customs and Usage) - भारत में प्रचलित कुछ परम्परागत रीति-रिवाज है जिन्हें वाणिज्यिक व्यवहारों पर लागू किया जाता है। जब तक न्यायालय द्वारा इन्हें पूर्णरूपेण अस्वीकृत नहीं कर दिया जाता, तब तक वे सर्वदा व्यापारिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों पर लागू रहते हैं। उदाहरण के लिए हुण्डी सम्बन्धित नियम स्थानीय रीति-रिवाजों पर आधारित होते हैं।

(5) आधारभूत निर्णय (Leading Cases) - भारतीय न्यायालय न्यायपूर्ण निर्णय देने के लिए प्रायः उच्चतम न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये आधारभूत निर्णयों का सहारा भी लेते हैं। उदाहरण के लिए 'लालमन शुक्ला बनाम गौरीदत्त' एवं मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष आदि का विवाद स्रोत की श्रेणी में आते हैं।

1.4 व्यावसायिक सन्नियम का क्षेत्र (Scope of Business Law)

व्यावसायिक सन्नियम का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, क्योंकि यह व्यापारियों के साथ-साथ समाज के सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, क्योंकि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जाने-अनजाने ऐसा कार्य करता है जो अनुबन्धों की तरह होता है। जैसे वस्तु क्रय करना, रेल या बस में यात्रा करना, भोजनालय में भोजन करना इत्यादि। व्यावसायिक अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित अधिनियम आते हैं-

1. अनुबन्ध अधिनियम (Contract Act)
2. वस्तु-विक्रय अधिनियम (Sale of Goods Act)
3. साझेदारी अधिनियम (Partnership Act)
4. विनिमय-साध्य लेखपत्र अधिनियम (Negotiable Instrument Act)
5. कम्पनी अधिनियम (Companies Act),
6. बैंकिंग अधिनियम (Banking Act),
7. बीमा अधिनियम (Insurance Act),

8. प्रतिभूति अधिनियम (Securities Act),
9. पंचायत अधिनियम (Arbitration Act),
10. पेटेण्ट एवं कॉपीराइट अधिनियम (Patent and Copyright Act) तथा
11. सार्वजनिक वाहक तथा ढुलाई एवं जहाज भाड़ा अधिनियम (Law related to Common Carriers and Carriage Shipping Freight Act).

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872

(Indian Contract Act 1872)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 25 अप्रैल, 1872 को पास किया गया एवं इसे 1 सितम्बर से लागू किया गया। यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में समान रूपसे प्रभावी है।

1.5 अनुबन्ध की परिभाषा (Definition of Contract)

अब हमें यह जानना आवश्यक है कि अनुबन्ध क्या है ? इसकी सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है-

(1) लॉक के अनुसार, "एक वैध अनुबन्ध को स्रोत के रूप में, एक ठहराव में, यह आवश्यक है कि पक्षकार कुछ कार्य करने के लिए होगा और दूसरे पक्षकार को उसे प्रभावकारी बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। "An agreement as the source of a legal Contract imparts that one party shall be bound to some performance, which the other shall have a legal right to enforce."

(2) सर विलियम ऐन्सन के अनुसार, "अनुबन्ध कानून द्वारा प्रवर्त्तनीय एक ऐसा ठहराव है, जो दो या दो से अधिक पक्षकारों द्वारा किया जाता है एवं इस ठहराव के द्वारा यह एक से अधिक पक्षकार दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के ऊपर किसी कार्य को करने या उससे विरत रहने के सम्बन्ध में कुछ अधिकारों को प्राप्त कर लेते हैं।" (A contract is an agreement enforceable by law made between two or more persons, by which rights are acquired by one or more acts or forbearances on the part of the other or others)

(3) सालमण्ड के शब्दों में, अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो पक्षकारों के बीच दायित्वों को उत्पन्न करें एवं उन दायित्वों को परिभाषित करें। (Contract is an agreement creating and defining obligations between the parties.)

(4) सर फेडरिक पोलक की परिभाषा - "प्रत्येक ठहराव तथा वचन जो कानून द्वारा प्रवर्तनीय हो, अनुबन्ध कहलाता है।" (Every agreement and promise enforceable by law is a Contract.)

(5) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(h) में दी गई परिभाषा और अधिक स्पष्ट है- "ऐसा ठहराव जो कानून द्वारा प्रवर्त्तनीय हो, अनुबन्ध कहलाता है।" (An agreement enforceable by law is a Contract.)

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि एक वैध अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि उसे कानून द्वारा मान्यता प्राप्त हो एवं उसे कानून द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सके। अतः कोई भी अनुबन्ध तभी वैध होगा,

जबकि उसमें निम्नलिखित आवश्यक लक्षण तत्त्व होंगे-

(i) किसी अनुबन्ध का निर्माण करने के लिए कम-से-कम दो पक्षकारों का होना अनिवार्य है।

(ii) दोनों पक्षकारों के बीच किसी कार्य को करने या न करने का ठहराव होना चाहिए- रवि अपनी साइकिल रमेश को 500 रुपया में बेचने का प्रस्ताव करता है एवं रमेश उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। रमेश की स्वीकृति मिलते ही वह प्रस्ताव का रूप धारण कर लेगा।

(iii) अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों को अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अवयस्क, अस्वस्थ मस्तिक वाला व्यक्ति, कैदी एवं विदेशी शत्रु अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है।

(iv) ठहराव पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति से होना चाहिए। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा १४ के अनुसार एक सहमति उस दशा में स्वतंत्र मानी जायेगी जबकि वह (क) बल प्रवर्त्तन, (ख) अनुचित प्रभाव, (ग) छल या कपट, (घ) मिथ्या वर्णन, (ङ) त्रुटि आदि से प्रभावित न हो।

(v) वैध प्रतिफल के साथ किया गया ठहराव ही वैध अनुबन्ध हो सकता है। क्योंकि बिना प्रतिफल के एक अनुबन्ध बाजी का अनुबन्ध हो जाता है। एक अनुबन्ध के अन्तर्गत एक पक्षकार द्वारा दिया गया वचन दूसरे पक्षकार के लिए प्रतिफल होता है। यहाँ मोहन के लिए घड़ी एवं महेश के लिए 300 रुपया की प्राप्ति एक दूसरे के लिए प्रतिफल है।

(vi) अनुबन्ध न्यायोचित उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए। अवैध उद्देश्य वाले ठहराव को व्यर्थ माना गया है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार प्रत्येक ठहराव के ऐसे उद्देश्य अवैध माने हैं जो

(क) विधि द्वारा वर्जित हों या

(ख) कपटपूर्ण हों,

(ग) किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाले हों या

(घ) न्यायालय के मतानुसार अनैतिक अथवा लोकनीति के विरूद्ध हों।

(vii) ठहराव ऐसा नहीं होना चाहिए जिसे भारतीय अनुबन्ध अधिनियम ने व्यर्थ घोषित कर दिया हो। अधिनियम के अन्तर्गत व्यर्थ घोषित ठहराव निम्नलिखित है- (क) एक ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर है, (ख) एक वयस्क व्यक्ति के विवाह में रूकावट डालने वाला ठहराव, (ग) व्यापार में रूकावट डालने वाला ठहराव, (घ) वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने का ठहराव, (ङ) अधिनियम अर्थ वाले ठहराव (च) बाजी का ठहराव, (छ) किसी असम्भव कार्य को करने का ठहराव।

(viii) ठहराव का लिखित, प्रमाणित एवं पंजीकृत होना जरूरी है।

इसी प्रकार किसी भी वैध अनुबन्ध के लिए किसी भी ठहराव में उपर्युक्त सभी तत्त्वों का समावेश होना चाहिए। इन तत्त्वों में से किसी एक के अभाव में भी यह अनुबन्ध व्यर्थ माना जायेगा।

1.6 ठहराव (Agreement)

साधारण शब्दों में ठहराव किसी प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति को कहते हैं जिसके द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी

विशेष काम करने या न करने का वायदा करते हैं। परन्तु इसे वैधानिक रूप देने के लिए आवश्यक है कि वे वैधानिक रूप से स्वीकृत ठहराव हों। वैसे ठहराव की परिभाषा निम्नलिखित ढंग से की गई है-

(1) लॉक के अनुसार, ''ठहराव से अभिप्राय ऐसे दो व्यक्तियों के मध्य सहमति से है, जो किसी निश्चित किये विषय पर एकमत हो।'' "Agreement consists in two persons being of the same intention concerning the matter agreed upon."

(2) पोलक महोदय के अनुसार, ''ठहराव एक या एक से अधिक पक्षकारों के द्वारा अन्य पक्षकार या पक्षकारों के लिये गये जाने वाले किसी कार्य की कल्पना करता है।'' "An agreement contemplates something to be done or forborne by one or more of the parties for the use of other or others."

(3) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(e) के अनुसार, ''प्रत्येक वचन या वचनों का प्रत्येक समूह जोएक दूसरे का प्रतिफल हो, ठहराव कहलाता है।'' "Every promise ande very set of promises, forming the consideration for each other,is an agreement."

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर ठहराव के लिएवचन अथवा वचनों का समूह होना आवश्यक है। शर्त्तरहित स्वीकार किया गया प्रस्ताव 'वचन' कहलाता है। वचन, प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति से ही उत्पन्न होता है। संक्षेप में ''कोई भी प्रस्ताव जब स्वीकृत हो जाता है, तभी ठहराव कहलाता है। उदाहरण के लिए राम ने श्याम के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि वह अपना रेडियो 500 रुपया में बेचने के लिए तैयार है। यदि श्याम इस प्रस्ताव को स्वीकार करलेता है अर्थात् वह 500 रुपये में रामकोरेडियो खरीदने के लिए अपनी स्वीकृति दे देता है तो यह एक ठहराव माना जायेगा।

1.6.1 ठहराव के लक्षण (Characteristics of Agreement) -

ठहराव की उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं-

(i) ठहराव के लिए दो पक्षों का होना आवश्यक है।

(ii) एक पक्ष प्रस्ताव एवं दूसरा स्वीकर्त्ता होना चाहिए।

(iii) प्रत्येक वचन अथवा वचनों का समूह जिसमेंएक का वचन दूसरे के लिए प्रतिफल हो, आवश्यक है।

(iv) ठहराव के दोनों पक्ष आपस में एक दूसरे के प्रति अपना प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति से उत्पन्न वचनों को पूरा करने के दायित्व से बँधे होते हैं।

इस प्रकार ठहराव के उपर्युक्त लक्षणों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता हैकि एक ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर होता है। यही कारण है कि ''सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं, किन्तु सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते।'' (All contracts are agreement, but allagreements are not contracts.) क्योंकि दोनों में निम्नलिखित मुख्य अन्तर है-

(i) अनुबन्ध का वर्णन अधिनियम की धारा 2(h) के अन्तर्गत किया गया है, जबकि ठहराव का वर्णन 2(e) में है।

(ii) प्रत्येक ऐसा ठहराव जो कि कानून द्वारा प्रवर्तनीय हो, अनुबन्ध कहलाता है। किन्तु प्रत्येक वचन एवं वचनों का प्रत्येक समूह, जिसमें वचन एक-दूसरे के लिए प्रतिफल होते हैं, ठहराव कहलाता है।

(iii) अनुबन्ध का क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते जबकि ठहराव का क्षेत्र व्यापक होता है, क्योंकि प्रत्येक अनुबन्ध पहले ठहराव होता है।

(iv) केवल वैध ठहराव ही अनुबन्ध होता है। किन्तु ठहराव के अन्तर्गत वैधानिक एवं अवैधानिक दोनों ही प्रकार के कार्य हो सकते हैं।

(v) किसी भी अनुबन्ध का आधार ठहराव है। किन्तु किसी भी ठहराव का आधार अनुबन्ध नहीं होता है।

(vi) अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि वह कानून द्वारा प्रवर्तनीय हो। जबकि ठहराव के लिए कानून द्वारा प्रवर्तनीय होना आवश्यक नहीं है।

1.6.2 ठहराव के प्रकार -

ठहराव को उनकी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग दृष्टि से वर्गीकृत किया गया है, जो निम्नलिखित है-

(1) ठहराव के ढंग (Procedure) की दृष्टि से :

(क) **स्पष्ट ठहराव (Expressed Agreement)** - जब एक अथवा एक से अधिक पक्षों द्वारा मौखिक अथवा लिखित रूप से दूसरे पक्ष अथवा पक्षों के सामने स्पष्ट अथवा निश्चित प्रस्ताव रखे जाते हैं और दूसरा पक्ष लिखित अथवा मौखिक रूप से किन्तु नि श्चित एवं स्पष्ट रूप से उस प्रस्ताव को स्वीकृति दे देता है, तो इस प्रकार के ठहराव को स्पष्ट ठहराव कहा जाता है। जैसे- रवि अपनी घड़ी 300 रुपया में रमेश को बेचने का प्रस्ताव करता है। रमेश इस प्रस्ताव को लिखित या मौखिक रूप से स्वीकार कर लेता है। इसे स्पष्ट ठहराव कहेंगे।

(ख) **गर्भित ठहराव (Implied agreement)** - जिस ठहराव में पक्षकार अपनी इच्छा शब्दों द्वारा लिखित या मौखिक रूप से स्पष्ट नहीं करते, बल्कि अपने आचरण एवं व्यवहार द्वारा यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे आपस में ठहराव कर रहे हैं, तो उसे गर्भित ठहराव कहते हैं। उदाहरण के लिए ट्रेन का टिकट लेते ही यात्री एवं रेलवे कं० के मध्य आचरण एवं व्यवहार द्वारा ठहराव हो जाता है।

(2) निष्पादन (Performance) की दृष्टि से :

(क) एक पक्षीय ठहराव (Unilateral Agreement) - ये वे ठहराव है, जिनमें एक पक्ष अपने वचन की पूर्ति कर देता है, किन्तु दूसरे पक्ष को अपने वचन की पूर्ति करना शेष रहता है।

(ख) द्विपक्षीय ठहराव (Bilateral Agreement) - ऐसा ठहराव जिसमें दोनों पक्षकारों को अपने वचन का पालन करना शेष रहता है, तो उसे द्विपक्षीय ठहराव कहते हैं। ऐसे ठहराव में एक पक्ष का वचन दूसरे पक्ष के लिए एवं दूसरे पक्ष का वचन पहले पक्ष के लिए प्रतिफल होते हैं।

(3) प्रवर्तनीयता (Promotion) की दृष्टि :

(क) व्यर्थ ठहराव (Void Agreement) - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(g) के अनुसार, "ऐसा ठहराव जिसे कानून द्वारा प्रवर्तनीय न कराया जा सके, व्यर्थ ठहराव कहलाता है। अर्थात् व्यर्थ एक ऐसा ठहराव होता है, जिसका कानून की दृष्टि में कोई मूल्य नही होता और इस कारण से इसमें किसी भी पक्षकार को कानून द्वारा प्रवर्तनीय कराने को अधिकार प्राप्त नहीं होता। जैसे 'A' एवं 'B' एक ऐसी गाय खरीदने का ठहराव कर रहे हैं, जो मर चुकी है, किन्तु 'A' एवं 'B' को इसकी जानकारी नहीं है। यहाँ पर तथ्य सम्बन्धी गलती के कारण ठहराव व्यर्थ होगा।

(ख) व्यर्थनीय ठहराव (Voidable Agreement) - अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(i) के अनुसार, "जब एक ठहराव एक या एक से अधिक पक्षकारों की इच्छा पर तो प्रवर्तनीय हों, लेकिन दूसरे पक्ष का या पक्षकारों

की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो, तो उसे व्यर्थनीय ठहराव कहेंगे। जब ठहराव छल या कपट, बल प्रवर्तन, अनुचित प्रभाव अथवा मिथ्या वर्णन के आधार पर किया जाता है तो उसे व्यर्थनीय ठहराव कहा जाता हैं किन्तु ठहराव को निरस्त करने का अधिकार केवल पीड़ित पक्षकार को ही प्राप्त होता है।

1.6.3 व्यर्थ ठहराव एवं व्यर्थनीय ठहराव में अन्तर (Difference between Void Agreement and Voidable Agreement) -

(i) यह ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होता, व्यर्थ ठहराव कहलाता है, किन्तु ऐसा ठहराव जो केवल एक, या एक से अधिक पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय होता है, परन्तु दूसरे पक्षकारों की इच्छा पर नहीं, तो इसे व्यर्थनीय ठहराव कहते हैं।

(ii) व्यर्थ ठहराव आरम्भ से अन्त तक व्यर्थ ही रहता है। इसलिए इसका कोई वैधानिक अस्तित्व नहीं होता, जबकि व्यर्थनीय ठहराव में जब पीड़ित पक्ष इसे व्यर्थ घोषित नहीं करता, तब तक यह वैध समझा जाता है।

(iii) व्यर्थ ठहराव के अन्तर्गत वस्तु का हस्तांतरण करने वाले एवं वस्तु को प्राप्त करने वाले-दोनों का अधिकार दूषित समझ जाता है, किन्तु व्यर्थनीय ठहराव में यदि वस्तु का हस्तांतरण पीड़ित पक्षकार द्वारा ठहराव व्यर्थ करने के अपने अधिकार के प्रयोग किये जाने के पूर्व ही हो जाता है, तो पाने वाले का अधिकार अच्छा रहेगा।

(iv) व्यर्थ ठहराव के संबंध में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कठोर है जबकि व्यर्थनीय ठहराव के संबंध में अधि ानियम अपेक्षाकृत कम कठोर है।

(v) व्यर्थ ठहराव को किसी पक्षकार द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता, किन्तु व्यर्थनीय ठहराव पीड़ित पक्षकार की इच्छा से प्रवर्तनीय कराया जा सकता है।

(vi) व्यर्थ ठहराव को न्यायालय द्वारा मान्यता नहीं दी जाती, परन्तु व्यर्थनीय ठहराव को पीड़ित पक्षकारों की इच्छा पर न्यायालय द्वारा मान्यता दी जा सकती है।

व्यर्थ ठहराव प्रायः अवयस्क के साथ अनैतिक, असम्भव, लोकनीति के विरूद्ध किये गये ठहरावों के कारण होता है, किन्तु व्यर्थनीय ठहराव के अन्तर्गत मुख्यतः स्वतन्त्र सहमति का होना ही मुख्य कारण होता है।

(4) वैध ठहराव (Legal Agreement) -

जब किसी ठहराव में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में निर्धारित सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान रहते हैं तो वैध ठहराव की संज्ञा दी जाती है। जैसे- रवि अपनी साइकिल 300 रुपये में रीतेश से बेचने का ठहराव करता है। यह एक बैध ठहराव है।

(5) अवैध ठहराव (Illegal Agreement) -

यह ठहराव जो कानून द्वारा मान्यता प्रापत न हों, तो वह अवैध ठहराव कहलायेगा। अर्थात् ऐसा ठहराव जो कानून के विरूद्ध हो, तो वह अवैध ठहराव होगा एवं वह व्यर्थ माना जायेगा। जैसे- यदि कोई व्यक्ति किसी अनैतिक कार्य करने का ठहराव करता है अथवा किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को हानि पहुँचाने के लिए ठहराव करता है तो वह अवैध ठहराव की श्रेणी में आयेगा। इस प्रकार सभी अवैध ठहराव व्यर्थ माने जाते हैं। किन्तु यह जरूरी नहीं है कि सभी व्यर्थ ठहराव भी अवैध हों। इसके अतिरिक्त अवैध ठहराव दण्डनीय भी होते हैं क्योंकि वे कानून के विपरीत होते हैं।

1.6.4 व्यर्थ एवं अवैध ठहराव में (Difference between Void Agreement and Illegal Agreement) अन्तर निम्नलिखित हैं-

(i) सभी व्यर्थ ठहराव अवैध नहीं होते हैं, किन्तु सभी अवैध ठहराव व्यर्थ होते हैं।

(ii) व्यर्थ ठहराव दण्डनीय नहीं होते, परन्तु सभी अवैध ठहराव दण्डनीय भी होते हैं।

(iii) व्यर्थ ठहराव के समानान्तर ठहराव वैध माने जाते हैं, जबकि अवैध ठहराव के समानान्तर ठहराव भी अवैध माने जाते हैं।

(iv) व्यर्थ शब्द की व्यापकता अधिक है। किन्तु अवैध शब्द सीमित है।

(6) अप्रवर्तनीय ठहराव (Unforceable Agreement) -

यह वह ठहराव होता है जिसके आधार पर न्यायालय में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। ऐसा ठहराव वैध एवं कानूनी ठहराव है, परन्तु किसी भी तकनीकी कमी के कारण वह एक न्यायालय में ले नहीं जाया जा सकता है। जैसे स्टाम्प अधिनियम के अनुसार आवश्यक स्टाम्प का न लगा रहना या अपर्याप्त स्टाम्प का लगा होना, पंजीकरण न कराना, समय सीमा अधिनियम द्वारा समय का समाप्त हो जाना आदि। इन सब कारणों से ऐसे ठहराव कानून द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराये जा सकते हैं।

(7) आनुषंगिक ठहराव (Collateral Agreement) -

मूल व्यवहार के व्यर्थ होने पर भी आनुषंगिक व्यवहार राजनियम (कानून) द्वारा प्रवर्त्तनीय हो सकता है। ऐसे ठहराव तृतीय पक्ष से सम्बन्धित होते हैं एवं तृतीय पक्ष के प्रति वचन गृहीता को उत्तरदायी बना देते हैं।

1.7 सारांश (Summing up)

व्यावसायिक सन्नियम व्यवसाय से सम्बन्धित समस्त क्रिया-कलापों के नियमन एवं नियंत्रण से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत अनुबन्ध अधिनियम, साझेदारी अधिनियम, कम्पनी अधिनियम, बैंकिंग अधिनियम आदि शामिल होता है।

अनुबन्ध का तात्पर्य वैसे ठहराव से है जो कानून द्वारा प्रवर्तनी हो ठहराव कई प्रकार के होते हैं।

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. वैध ठहराव से आप क्या समझते हैं ? इसके आवश्यकत तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
2. वैध एवं अवैध ठहराव में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

1.9 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 2 **वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व** पाठ-1

(Business Law)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objective)

2.1 परिचय (Introduction)

2.2 प्रस्ताव का अर्थ एवं परिभाषायें

2.3 प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम

2.3.1 प्रस्ताव का खण्डन

2.3.2 निरंतर या खुला प्रस्ताव

2.3.3 प्रस्ताव की स्वीकृति

2.3.4 स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियम

2.3.5 स्वीकृति का खण्डन

2.4 अनुबन्ध करने की क्षमता

2.4.1 अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति

2.4.2 नाबालिग के सम्बन्ध में वैधानिक स्थिति

2.4.3 अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति

2.5 स्वतंत्र सहमति

2.6 उत्पीड़न या बल प्रयोग

2.6.1 उत्पीड़न का प्रभाव

2.6.2 उत्पीड़न एवं अनुचित प्रभाव में अन्तर

2.6.3 मिथ्या वर्णन

2.6.4 मिथ्या वर्णन का प्रभाव

2.6.5 कपट अथवा धोखा

2.6.6 कपट का अनुबन्ध पर प्रभाव

2.7 कपट एवं मिथ्या वर्णन में अन्तर

2.7.1 त्रुटि अथवा गलती

2.7.2 कानुन सम्बन्धी गलती

2.7.3 गलती का प्रभाव

2.8 न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य

2.8.1 प्रतिफल

2.8.2 अपवाद

2.8.3 प्रतिफल के सम्बन्ध में भारतीय एवं अंग्रेजी राजनियम में अन्तर

2.8.4 प्रतिफल एवं उद्देश्य की अवैधता

2.9 वैध अनुबन्ध के अनिवार्य तत्त्व एवं सांयोगिक अनुबन्ध

2.9.1 स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव

2.9.2 अपवाद

2.9.3 वैधानिक कार्यवाही के रूकावट डालने वाला ठहराव

2.9.4 अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव

2.9.5 बाजी ठहराव

2.10 बाजी के ठहराव एवं साधारण ठहराव में अन्तर

2.11 सांयोगिक अनुबन्ध

2.11.1 सांयोगिक अनुबन्ध के लक्षण

2.11.2 सांयोगिक अनुबन्ध की प्रवर्तनीयता सम्बन्धी नियम

2.12 सांयोगिक अनुबन्ध एवं बाजी के ठहराव में अन्तर

2.13 सारांश (Summuing up)

2.14 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

2.15 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

2.0 उद्देश्य (Objective)

पिछले पाठ के अन्तर्गत हमलोगों ने देखा के सभी अनुबन्ध वैध नहीं हो सकते। कोई भी अनुबन्ध तभी वैध माना जायेगा जब उसमें अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व होंगे। अब हमलोगों का उन्हीं तत्त्वों को विस्तार से अध्ययन करना है। किसी भी अनुबन्ध का आरम्भ प्रस्ताव से होता है। अतएव प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति के सम्बन्ध में ही वैधानिक नियमों का अध्ययन पहले किया जायेगा।

2.1 परिचय (Introduction)

वैध अनुबन्ध से हमारा तात्पर्य वैसे ठहराव से है जो कानून द्वारा प्रवर्तनीय है। कानून द्वारा वही ठहराव प्रवर्त्तनीय होत है जिसमें कुछ आवश्यक तत्त्व मौजूद होते हैं और जो वैधानिक दायित्व उत्पन्न करने वाला होता है।

2.2 प्रस्ताव (Proposal or Offer)

किसी भी ठहराव के लिए यह जरूरी है कि एक पक्ष प्रस्ताव करें एवं दूसरा पक्ष उसको स्वीकार करें। न तो केवल कोई प्रस्ताव एवं केवल स्वीकृति ही कोई ठहराव का निर्माण कर सकता है। जब कोई प्रस्ताव स्वीकृत होता है तो एक ठहराव की नींव पड़ती है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(a) के अनुसार- "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी कार्य को करने या न करने की इच्छा इस उद्देश्य से रखता है कि दूसरा व्यक्ति उस कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने की सहमति प्रदान करेगा, तो यह कहा जायेगा कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव रखा।"

प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति का "प्रस्तावक" एवं जिससे प्रस्ताव किया जाता है, उसे "स्वीकर्त्ता" कहते है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी प्रस्ताव में निम्न लक्षण होना चाहिए-

(i) किसी भी प्रस्ताव में कम-से-कम दो पक्षकार होना चाहिए, एक प्रस्तावक एवं दूसरा स्वीकर्त्ता।

(ii) प्रस्ताव किसी कार्य को करने या नहीं करने के लिए होना चाहिए।

(iii) कोई भी प्रस्ताव दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के अभिप्राय से ही किया जाना चाहिए।

2.3 प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम

(i) प्रस्ताव स्पष्ट एवं निश्चित होना चाहिए, क्योंकि अस्पष्ट एवं अनिश्चित प्रस्ताव को वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं है। इस प्रकार उचित मूल्य पर वस्तुएँ बेचने का प्रस्ताव वैध नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ मूल्य निश्चित नहीं है।

(ii) कोई भी प्रस्ताव विनय के रूप में होना चाहिए, आज्ञा के रूप में नहीं, क्योंकि प्रस्तावक किसी के उपर कोई उत्तरदायित्व नहीं सौंप सकता है।

(iii) एक प्रस्ताव स्पष्ट एवं गर्भित प्रस्ताव दोनों हो सकता है। यदि प्रस्ताव मौखिक या लिखित रूप में शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है, तो उसे स्पष्ट कहते हैं। जैसे 1 अपने घड़ी 300 रुपये में B के हाथ बेचने का प्रस्ताव रखता है, किन्तु शब्दों के अतिरिक्त प्रस्तावक की इच्छा उसके व्यवहार या आचरण अथवा परिस्थितियों द्वारा स्पष्ट हो, तो उसे गर्भित प्रस्ताव कहा जाता है। जैसे-रेलगाड़ी का एक स्थान से दूसरे स्थान जाना ही जनता के लिए गर्भित प्रस्ताव है।

(iv) प्रस्ताव द्वारा दोनों पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए, क्योंकि सभी व्यापारिक लेन देन वैधानिक सम्बन्ध का निर्माण करते हैं। सामाजिक या नैतिक सम्बन्ध वाले प्रस्ताव वैध हो भी सकते हैं और नहीं भी। जैसे- राम के साथ रवि का सिनेमा जाने का प्रस्ताव।

(v) प्रस्ताव सामान्य एवं विशेष, दोनों ही हो सकता है। यदि प्रस्ताव किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों के विशेष समूह के समक्ष रखा जाता है तो उसे विशेष प्रस्ताव कहते हैं, जैसे-रवि अपनी साइकिल रमेश को 400 रुपये में बेचने का प्रस्ताव रखता है। किन्तु यदि प्रस्ताव साधारण जनता अथवा व्यक्तियों के अनिश्चित समूह से किया जाता है तो उसे 'सामान्य पप्रताव' कहते हैं, जैसे-विज्ञापन द्वारा किसी वस्तु की बिक्री का प्रस्ताव।

(vi) प्रस्ताव करने की इच्छा या उसके अभिप्राय को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है। जैसे- A बातचीत के दौरान कहता है कि जो उसकी पुत्री से शादी करेगा उसे यह 10,000 रुपये देगा। यह प्रस्ताव एक घोषणा मात्र है, किसी से प्रस्ताव नहीं।

(vii) प्रस्ताव करने के नियंत्रण को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है। जैसे-प्रविवरण, गश्ती पत्र, टेण्डर, मूल्य-सूची, विज्ञापन एवं रेलवे समय-सारणी, ये सारे प्रस्ताव के लिए नियंत्राण मात्र है, कोई प्रस्ताव नहीं।

(viii) किसी भी वैध प्रस्ताव के लिए उसका संवहन (Communication) होना अनिवार्य है। अर्थात् जिनके लिए प्रस्ताव किया जा रहा है, उस पक्ष को इसकी सूचना होनी चाहिए, जैसे- कोई व्यक्ति किसी खोयी हुई वस्तु के लिए इनाम की घोषणा करता है। किन्तु जो व्यक्ति उस वस्तु को बिना इनाम की जानकारी के खोजता है तो मिलने पर भी वह इनाम का हकदार नहीं माना जायेगा। (लालमन शुक्ला बनाम् गौरी दत्त)

2.3.1 प्रस्ताव का खण्डन :

प्रस्ताव का खण्डन का अर्थ प्रस्ताव की समाप्ति से है। अर्थात् किसी भी प्रस्ताव को उसकी स्वीकृति प्रस्तावक के पास पहुँचने के पहले उसको खण्डित कर सकता है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 6 में प्रस्ताव को खण्डित करने सम्बन्धी निम्नलिखित विधियों का उल्लेख किया गया है-

(i) प्रस्तावक द्वारा 'प्रस्ताव खण्डन' की सूचना देकर किसी भी प्रस्ताव को समाप्त किया जा सकता है। किन्तु खण्डन प्रस्ताव के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने के पूर्व ही होना चाहिए।

(ii) यदि प्रस्तावक ने प्रस्ताव करते समय स्वीकृति के लिए कोई समय निर्धारित किया हो तो उस अवधि के समाप्त होते ही वह प्रस्ताव स्वतः समाप्त माना जायेगा, किन्तु यदि प्रस्ताव में समय निर्धारित नहीं है तो 'उचित समय के समाप्त होने पर प्रस्ताव समाप्त हो जायेगा। 'उचित समय' अनुबन्ध की परिस्थितियाँ, प्रस्ताव की शर्त्तों पर निर्भर करता है।

(iii) स्वीकर्त्ता द्वारा किसी अनिवार्य पूर्व-शर्त्त के पालन न करने पर भी प्रस्ताव खण्डित हो जाता है। उदाहरण के लिए A अपनी साइकिल बेचने का प्रस्ताव B के सम्मुख रखता है, एवं शर्त्त अग्रिम नहीं भेजता है और प्रस्ताव को बाद में स्वीकार करता है तो यह प्रस्ताव खण्डित मान लिया जायेगा।

(iv) प्रस्तावक की मृत्यु या उसके पागल होने की अवस्था में प्रस्ताव का खण्डन स्वतः हो जाता है। किन्तु यदि स्वीकृति प्रस्तावक की मृत्यु या पागल होने की सूचना मिलने के पूर्व ही हो चुकी है, तो यह स्वीकृति वैध होगी।

(v) यदि प्रस्तावक ने प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए कोई विशेष निर्देश दिया है, तो प्रस्ताव उसी निर्देश के अनुसार होना चाहिए, अन्यथा प्रस्ताव का खण्डन हो जायेगा।

(vi) अगर किसी प्रस्ताव की स्वीकृति उसमें कुछ परिवर्त्तन करके किया गया है तो यह विपरीत प्रस्ताव कहलायेगा एवं तब मूल प्रस्ताव स्वतः खण्डित हो जायेगा।

2.3.2 निरंतर या खुला प्रस्ताव (Continuous or Standing Offer) :

कुछ ऐसे प्रस्ताव भी होते हैं, जो एक निश्चित वस्तु को एक निश्चित कीमत पर, एक निश्चित समय तक के लिए बेचने के लिए किया जाता है। वैसे प्रस्ताव को निरन्तर अथवा चालू जैसे-खोए हुए बच्चों का पता लगाने के सम्बन्ध में सामान्य प्रस्ताव द्वारा इनाम देने की घोषणा भी निरन्तर अथवा खुला प्रस्ताव कहलायेगा।

2.3.3 प्रस्ताव की स्वीकृति :

कोई भी प्रस्ताव स्वीकृति के बाद ही समझौता या ठहराव का रूप लेता है। वह पक्षकार जिसके समक्ष प्रस्ताव रेखा जाता है यदि वह उस प्रस्ताव पर अपनी मौखिक या लिखित सहमति प्रकट कर देता है तो यह मान लिया जाता है कि उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है, इस प्रकार पक्षकारों के मध्य एक ठहराव का निर्माण हो जाता है।

(i) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(b) में स्वीकृति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी गई है-'' जब वह व्यक्ति जिसके समक्ष प्रस्ताव रखा गया है, प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट कर देता है तो यह कहा जाता है कि उसने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है।''

2.3.4 स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियम :

(i) स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिसके सामने प्रस्ताव रखा गया है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति उस प्रस्ताव को स्वीकार करता है तो वह मान्य नहीं होगा। जैसे- 'बोल्टन बनाम् जोन्स' के मुकदमें में न्यायाधीश ने निर्णय दिया था कि बोल्टन, जोन्स से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि प्रस्ताव उसके समक्ष रखा ही नहीं गया था।

(ii) स्वीकृति प्रस्ताव में दी गई शर्तों के अनुसार ही होनी चाहिए क्योंकि शर्तयुक्त स्वीकृति का एक 'प्रति प्रस्ताव' ही माना जाता है, स्वीकृति नहीं।

(iii) स्वीकृति की अभिव्यक्ति आचरण द्वारा भी की जा सकती है। अर्थात् व्यवहारों एव कार्यों द्वारा भी प्रस्ताव की स्वीकृति की जा सकती है। उदाहरण के लिए मोहन, सोहन से 500 रुपया में उसकी साइकिल क्रय करने का प्रस्ताव करता है। सोहन मुँह से कुछ न बोलकर अपनी साइकिल मोहन के पास भेज देता है। इस केश में सोहन ने अपने आचरण द्वारा मोहन का प्रस्ताव स्वीकार किया।

(iv) प्रस्ताव की तरह स्वीकृत का संवहन (Communication) होना आवश्यक है। क्योंकि, केवल मानसिक स्वीकृति, जो शब्दों या व्यवहारों द्वारा स्पष्ट नहीं हो, वैधानिक दृष्टि से स्वीकृति नहीं कहलाती है। यदि किसी प्रस्ताव पर स्वीकर्त्ता मौन रह जाता है तो इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि उसने प्रस्ताव को स्वीकार किया है अथवा अस्वीकार। अतः प्रत्येक स्वीकृति शब्दों या आचरण द्वारा होनी चाहिए। जैसे- A, B के सम्मुख अपनी घड़ी 500 रुपया में बेचने का प्रस्ताव रखता है एवं कहता है कि अगर तुम चुप रह गये तो समझूँगा कि तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार है। यहाँ पर यदि B चुप रह जाता है, तो भी चुप रह जाना स्वीकृति नहीं कहलायेगा। (फ्लेट हाउस बनाम बीन्डले का विवाद)।

(v) स्वीकृति उसी विधि से होनी चाहिए जिस विधि का निर्देश प्रस्ताव में किया गया है। जैसे-यदि प्रस्ताव ने तार द्वारा स्वीकृति माँगी है, तो स्वीकृति तार द्वारा ही होनी चाहिए।

(vi) स्वीकृति, प्रस्ताव में निर्धारित समय के अन्दर ही होनी चाहिए। अगर प्रसताव में समय निर्धारित नहीं है तो

प्रस्ताव उचित समय के अन्दर ही स्वीकृत होना चाहिए। उचित समय अनुबन्ध की बातों एवं परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

(vii) जब एक बार कोई प्रस्ताव अस्वीकृत हो चुका हो तो पुनः वह प्रस्ताव तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता है जब तक कि पुनः नये सिरे से दूसरा प्रस्ताव नहीं रखा गया हो।

(viii) स्वीकृति स्पष्ट या गर्भित हो सकती है। मौखिक या लिखित स्वीकृति को स्पष्ट स्वीकृति को स्पष्ट स्वीकृति कहते हैं एवं आचरण या कार्यों द्वारा की गई स्वीकृति को गर्भित स्वीकृति कहते हैं।

(ix) स्वीकर्त्ता को प्रस्ताव के सम्बन्ध में जानकारी अवश्य होनी चाहिए। (लालमन शुक्ला बनाम गौरीदत्त का मुकदमा)।

(x) स्वीकृति प्रस्ताव के अन्त होने या खण्डित होने से पहले ही मिलनी चाहिए।

(xi) कुछ प्रस्ताव की स्वीकृति लाभ प्राप्त करके भी दी जा सकती है। जैसे रेलवे कम्पनी का ट्रेन से यात्रा करने का प्रस्ताव यात्रा का लाभ उठाकर स्वीकार किया जा सकता है। चूँकि उसने ट्रेन से यात्रा करके लाभ प्राप्त किया है, अतः वह भाड़ा देने के लिए उत्तरदायी है।

2.3.5 स्वीकृति का खण्डन :

जिस प्रकार प्रस्ताव खण्डन का कुछ नियम है उसी प्रकार स्वीकृति खण्डन का भी नियम है। स्वीकृति के खण्डन का अर्थ स्वीकर्त्ता द्वारा अपनी स्वीकृति वापस लेने से है। स्वीकृति का खंडन स्वीकर्त्ता के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व अर्थात् स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक तक पहुँचने से पहले कभी भी हो सकता है। डाक द्वारा स्वीकृति के सम्बन्ध में स्वीकृति का खण्डन प्रस्तावक के पास स्वीकृति-पत्र पहुँचने के पहले कभी भी हो सकता है। किन्तु अंग्रेजी सन्नियम के अनुसार स्वीकृति का खण्डन नहीं हो सकता है, क्योंकि पत्र डाक में छोड़ते ही पूर्ण मान लिया जाता है।

2.4 अनुबन्ध करने की क्षमता (Contractual Capacity)

एक वैध अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि पक्षकार अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हों, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत वैसे व्यक्तियों की चर्चा की गई है जो अनुबन्ध करने की योग्यता रखते हैं, जो इस प्रकार है-"प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है जो अपने उपर लागू होने वाले राजनियम के अनुसार वयस्क आयु का है, स्वस्थ मस्तिष्क का है एवं अपने उपर लागू होने वाले किसी राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित नहीं है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि नाबालिग, पागल, जन्मजात मुर्ख एवं शराबी, अस्वस्थता के कारण अनुबन्ध करने के अयोग्य समझे जाते हैं, कुछ व्यक्ति, जैसे विदेशी राजदूत, विदेशी शत्रु आदि अपने स्तर या व्यक्तिगत कानून के कारण अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखते हैं।

2.4.1 अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति :

(1) अवयस्क (Minors) :

भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 की धारा 3 के अनुसार भारत में निवास करने वाला व्यक्ति जो 18 वर्ष की उम्र को पूरा कर लेता है, वयस्क माना जाता है। किन्तु यदि किसी नाबालिग की सम्पत्ति की देख-रेख के लिए संरक्षक (Guardian) नियुक्त किया गया हो तो 21 वर्ष होने पर वह बालिग [illegible] जायेगा। किन्तु इंगलैंड में 21 वर्ष से कम उम्र वाले व्यक्ति नाबालिग होते हैं।

2.4.2 नाबालिग के सम्बन्ध में वैधानिक स्थिति (Legal Position Regarding Minors) :

(i) नाबालिग के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णरूप से व्यर्थ होता है। अतः नाबालिग के साथ अनुबन्ध होने पर उस पर कोई उत्तरदायित्व नहीं आता है। इस प्रकार एक नाबालिग किस अनुबन्ध के द्वारा यदि धन प्राप्त करता है तो लौटाने के लिए वह बाध्य नहीं है। जैसे- मोहरी बीवी बनाम धर्मदास घोष के मुकदमें में एक नाबालिग ने सम्पत्ति रखकर उधार लिया था। न्यायालय ने बन्धक को व्यर्थ घोषित करते हुए नाबालिग को ऋण वापस करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया।

(ii) चूँकि नाबालिग के साथ किया गया ठहराव प्रारम्भ में ही व्यर्थ होता है, अतः उसकी पुष्टि उनके बालिग हो जाने पर भी नहीं की जा सकती है। इस प्रकार रवि द्वारा नाबालिग अवस्था में किये गये अनुबन्ध को लागू नहीं कराया जा सकता है।

(iii) किन्तु एक नाबालिग अनुबन्ध के अधीन लाभ उठा सकता है। दूसरे शब्दों में, नाबालिग के पक्ष में लिखा गया बन्धक मान्य और प्रवर्त्तनीय होता है एवं नाबालिग दूसरे पक्ष को दिया हुआ ऋण वसूल कर सकता है।

(iv) एक नाबालिग अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुबन्ध कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति एक नाबालिग की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति करता है, तो ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति नाबालिग की सम्पत्ति में से अपनी वस्तुओं के मूल्य पाने का अधिकारी होगा। अर्थात् नाबालिग स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा, केवल उसकी सम्पत्ति ही उत्तरदायी होगी।

जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ नाबालिग की आर्थिक स्थिति एवं रहन-सहन के स्तर पर निर्भर करती है। किन्तु श्रृंगार एवं सजावट की वस्तुएँ अनिवार्य वस्तु नहीं मानी जा सकती है। साधारणतः नाबालिग के रहने के लिए मकान, कपड़ा, भोजन, दवा, शिक्षा, सफ़र आदि का व्यय, उसके आश्रितों के आवश्यक व्यय मृतक के संस्कार का व्यय, उसके एवं इसके आश्रितों के विवाह का खर्च, उसकी सम्पत्ति की रक्षा के लिए आवश्यक व्यय को आवश्यक आवश्यकताएँ माना जाता है।

(v) नाबालिग के अपने लाभ के लिए किया गया अनुबन्ध वैध होता है। अर्थात् एक नाबालिग अपने लाभ के लिए किए गए अनुबन्ध को लागू करवा सकता है किन्तु अनुबन्ध के अधीन उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इस प्रकार, यदि नाबालिग अपनी सम्पत्ति बेचने के बाद उसे रद्द कराने के लिए मुकदमा करता है, तो न्यायालय सम्पत्ति की बिक्री को रद्द घोषित कर नाबालिग को क्रय-मूल्य लौटाने का आदेश दे सकता है।

(vi) यदि नाबालिग के संरक्षक अथवा उसकी सम्पत्तियों के निरीक्षक नाबालिग की ओर से उसके लाभ के लिए अनुबन्ध करते हैं तो वह वैध होगा। किन्तु यह अनुबन्ध निम्नलिखित दो शर्त्तों के अधीन होना चाहिए-

(A) अनुबन्ध नाबालिग के लिए किया गया हो, एवं

(B) नाबालिग के संरक्षक या निरीक्षक अनुबन्ध की योग्यता रखते हों।

किन्तु नाबालिग के साथ किये गये किसी भी अनुबन्ध के लिए उसके माता-पिता जिम्मेदार नहीं होते हैं, भले ही नाबालिग ने अनुबन्ध जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए किया हो।

(vii) साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार सभी साझेदारी की सहमति से उसे साझेदारी में लाभ के लिए शामिल किया जा सकता है। किन्तु उसे व्यक्तिगत रूप से साझेदारी के किसी भी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है।

(viii) एक नाबालिग को ऐजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है। वह अपने कार्यों द्वारा नियुक्ति को बाध्य कर सकता

है किन्तु वह स्वयं कर्त्तव्य पालन न करने या लापरवाही करने को जान-बूझकर गलती करने पर भी उत्तरदायी नहीं बन सकता है।

(ix) भारत में प्रचलित दिवालिया अधिनियम के अनुसार एक नाबालिग को दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है; क्योंकि वह व्यक्तिगत रूप से किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होता हैं।

(x) भारतीय विनिमय-साध्य अधिनियम की धारा 26 के अनुसार एक नाबालिग, विनिमय-पत्र, प्रतिज्ञा पत्र, चेक आदि लिख सकता है, उसका हस्तान्तरण कर सकता है। उसके इस कार्य के लिए अन्य पक्षकार बाध्य होते हैं किन्तु वह स्वयं उत्तरदायी नहीं होता।

(xi) यदि नाबालिग ने धोखे से कोई वस्तु प्राप्त की हैं, और वह वस्तु उसके अधिकार में है तो न्याय सिद्धान्त (Principles of Equity) के आधार पर नाबालिग को उस वस्तु को लौटाने के लिए बाध्य किया जा सकता है। जगन्नाथ सिंह बनाम लालता प्रसाद के मुकदमें में नाबालिग ने अपने को बालिग कह कर अपनी सम्पत्ति को 10,000 रुपये में बन्धक रखा। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि अनुबन्ध दूसरे पक्ष को धोखा देकर किय गया, अतः बन्धक के अधीन प्राप्त पूरी रकम उसे लौटानी पड़ेगी।

(xii) यदि कोई नाबालिग जान-बूझकर किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाता है, तो इसके लिए वह उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। Bernard Vs. Haggis के मुकदमें में एक नाबालिग ने एक घोड़ा चढ़ने के लिए उधार लेकर अपने साथी को दिया। साथी ने उछल-कूदकर घोड़े को मार डाला। न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि नाबालिग क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य होगा।

इस प्रकार भारतीय अधिनियम ने नाबालिग को विशेष सुविधापूर्ण स्थिति प्रदान की हैं, कानून न केवल उसके हितों की रक्षा करता है और उसके अधिकारों को सुरक्षित रखता है, बल्कि उसके सलाहकार का भी काम करता है। किन्तु अधिनियम नाबालिग को अपनी स्थिति का अनुचित लाभ प्राप्त करने की अनुमति भी प्रदान नहीं करता है।

2.4.3 अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति (Persons of Unsound Mind) :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार केवल स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति ही अनुबन्ध कर सकते हैं। अब प्रश्न उठता है कि स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति कहते किसे हैं ? इसकी व्याख्या भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 12 में की गई है, जो निम्नलिखित है-

''ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का समझा जाता है, जो अनुबन्ध करते समय अनुबन्ध की शक्ति रखता हो और साथ ही उसमें विवेकपूर्ण निर्णय लेने की शक्ति हो कि अनुबन्ध का उसके हितों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।''

इससे स्पष्ट है कि ऐसे व्यवित जो सामान्य रूप से स्वस्थ मस्तिष्क का है, उस अवस्था में अनुबन्ध करने के योग्य होता है जब वह स्वस्थ मस्तिष्क का हो।

निम्नलिखित व्यक्ति अस्वस्थ मस्तिष्क के माने जाते हैं-

(A) पागल या उन्मत प्रकृति के व्यक्ति (Insane or Lunatic) - चूँकि पागल या उन्मत प्रकृति के व्यक्ति किसी भी विषय पर विवेकपूर्ण निर्णय नहीं ले सकते हैं, अतः वे वैध अनुबन्ध नहीं कर सकते हैं। किन्तु उस समय जबकि उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो, अनुबन्ध कर सकते हैं।

(B) जन्मजात मूर्ख (Idiot) - जो व्यक्ति जन्म से बेवकूफ हो, वैध अनुबन्ध नहीं कर सकते, क्योंकि उसमें सोचने-समझने की शक्ति एकदम नहीं होती है। वे जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के लिए अनुबन्ध कर सकते हैं, किन्तु इसके लिए वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होते बल्कि उनकी सम्पत्ति ही उत्तरदायी होती है।

(C) शराबी या बेसुध व्यक्ति (Drunkerd or Delirious Persons) - ऐसे व्यक्ति जो नशीले पदार्थ का सेवन किये हुए हों या कोई व्यक्ति जो ज्वर से बेसुध पड़े हों, उस अवस्था में, अनुबन्ध के अयोग्य होते हैं। किन्तु नशा उतरने के बाद ज्वर कम होने से सुध लौट आने पर अनुबन्ध कर सकते हैं।

3. राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति-

कोई भी ऐसा व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखता है जो अपने उपर लागू होने वाले राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया हो। निम्नलिखित व्यक्तियों को अनुबन्ध के अयोग्य घोषित किया गया है-

(i) विदेशी शत्रु (Alien Enemy) - विदेशी व्यति के साथ अनुबन्ध होता है किन्तु जिस देश का वह नागरिक है उससे युद्ध छिड़ जाने पर अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

(ii) विदेशी शासक, राजदूत एवं उसके प्रतिनिधि (Foreign Sovereigns, Ambassadors and their Representatives) - ये लोग सम्मानित व्यक्ति वाले व्यक्ति होते हैं एवं ये लोग भारतीय न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आते हैं। अतः भारत के नागरिक इनके साथ कोई अनुबन्ध नहीं कर सकते हैं, किन्तु वे यदि चाहें तो भारत के किसी भी नागरिक के साथ अनुबन्ध कर सकते हैं। किन्तु इन्हें प्रस्तुत करने के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है जो विशेष परिस्थितियों में ही प्राप्त हो सकती है.

(iii) निगम (Corporation) - निगम एक कृत्रिम व्यक्ति होता है जिसकी उत्पत्ति विधान के द्वारा होती है, जिसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता है। अतः ये स्वयं अनुबन्धक करके अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अनुबन्ध करते हैं इनका अधिकार पार्षद सीमा नियम एवं पार्षद अन्तर्नियम तक ही सीमित होता है। इन सीमाओं से बाहर वह अनुबन्ध नहीं कर सकता है।

(iv) अपराधी या कैदी (Convicts) - कोई भी व्यक्ति जिसे न्यायालय ने आजीवन कारावास या कोई दण्डनीय सजा दी हों, उन्हें अपराधी या कैदी कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति सजा के दौरान अनुबन्ध करने के अयोग्य माने जाते हैं। सजा समाप्त हो जाने पर या क्षमा मिलने पर ये व्यक्ति अनुबन्ध कर सकते हैं।

(v) दिवालिया (Insolvent) - यदि कोई व्यक्ति दिवालिया घोषित किया गया है तो भारतीय दिवालिया अधिनियमों के अनुसार वह अनुबन्ध करने के अयोग्य समझा जाता है, किन्तु न्यायालय द्वारा उन्मुक्त (Discharge) कर देने के बाद वह अनुबन्ध कर सकता है।

(vi) उच्च पेशे वाले व्यक्ति (Higher Professional) - इंग्लैंड में बैरिस्टर अपने प्रतिष्ठापूर्ण पेशा के कारण अपनी फीस के लिए मुकदमा नहीं चला सकता हैं, किन्तु भारत में इस प्रकार की अयोग्यता नहीं पाइ जाती है इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक निर्णय ने हाईकोर्ट में एडवोकेट की श्रेणी में नाम लिखानेवाले बैरिस्टर को अपनी फीस के लिए मुकदमा चलाने के अधिकार को मान्यता प्रदान कर दी है, यही नियम भारत में चिकित्सकों के सम्बन्ध में भी है जो अपनी फीस के लिए मुकदमा चला सकते हैं।

(vii) विवाहित स्त्रियाँ (Married Woman) - भारत एवं इंगलैंड में स्त्रियों को चाहे विवाहित हों या अविवाहित,

अनुबन्ध करने का अधिकार होता है। वे अपनी सम्पत्तियों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का अनुबन्ध कर सकती है, जबतक कि अनुबन्ध करने के अयोग्य वे न हों। भारतीय कानून विवाहित स्त्री को जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पति के रूप में भी मान्यता प्रदान करता है। इस प्रकार, विवाहित स्त्रियों को प्रदान की गयी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं का यथोचित मूल्य उसके पति की सम्पत्तियों से वसूला जा सकता है। किन्तु यदि वह अपनी इच्छा से पति से अलग रहती है, तब उसका पति उसके जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए भी जिम्मेदार नहीं होता।

2.5 स्वतंत्र सहमति (Free Consent)

एक अनुबन्ध की वैधता के लिए अन्य बातों के साथ यह भी आवश्यक है कि पक्षकारों की सहमति स्वतंत्र हो, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 13 के अनुसार "जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर तथा एक ही अर्थ में सहमत होते हैं तो उसे स्वतन्त्र सहमति कहते हैं।"

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार "सहमति केवल उसी समय स्वतंत्र कही जा सकती है जबकि वह निम्नलिखित में से किसी के कारण प्रदान न की गई हो-

(1) उत्पीड़न या बल-प्रयोग, (2) अनुचित प्रभाव, (3) मिथ्या वर्णन, (4) कपट एवं (5) त्रुटि अथवा गलती।

अब हमें उनका विस्तार से अध्ययन करना है, जो निम्नलिखित हैं-

2.6 उत्पीड़न या बल प्रयोग (Coercion)

धारा 15 के अनुसार "उत्पीड़न का अभिप्रायः किसी ऐसे कार्य को करने की धमकी देने से है, जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है, या इस दृष्टिकोण से दूसरे व्यक्ति को संविदे में सम्मिलित कर लिया जाये अथवा संविदे के लिए उसकी सहमति प्राप्त कर ली जाय अथवा उस व्यक्ति की सम्पत्ति को अवैध रूप से रोकने अथवा रोकने की धमकी देने से है।" इससे स्पष्ट है कि उत्पीड़न का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह जरूरी है कि अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों में से एक दूसरे को ठहराव के लि प्रेरित करने के लक्ष्य से उत्पीड़न का आश्रय ले। इन दोनों पक्षकारों के स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति भी किसी प्रकार या उसके किसी सम्बन्ध को उक्त कोई कार्य करने की धमकी दे सकता है। यदि इस प्रकार की धमकी से किसी पक्षकार की सहमति प्राप्त की जाती है तो उत्पीड़न कहा जायेगा।

धारा 15 के अनुसार निम्नलिखित कार्य उत्पीड़न माना जायेगा-

(क) भारतीय दण्ड विधान के विरूद्ध कार्य - भारतीय दण्ड विधान किसी कार्य को करने की सहमति नहीं देता है। ऐसे बहुत से कार्य है जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है, जैसे आत्म-हत्या की धमकी देना अथवा किसी लाश को न उठने देना। जैसे- Ranganpkmma Vs. Alavr Setti के मुकदमों में एक विधवा को यह धमकी दी गई थी कि जब तक वह एक लड़के को गोद नहीं लेगी, उसके पति का अन्तिम संस्कार नहीं होने दिया जायेगा। यह धमकी भारतीय दण्ड विधान के आदेशों के विरूद्ध है। अतः इसे उत्पीड़न माना जायेगा।

(ख) सम्पत्ति को अवैध रूप से रोकने की धमकी देना, जैसे- Muthiah Chettiar Vs. Karuppan के मुकदमें में एक एजेन्ट ने जिसकी कार्यावधि समाप्त होने पर दूसरा एजेन्ट नियुक्त कर दिया गया था, नये एजेन्ट को व्यवसाय की लेखा पुस्तक तब तक न लौटाने की धमकी दी जबतक कि उसे समस्त दायित्वों से मुक्ति पत्र न मिल जाये। निर्णय दिया गया कि यह धमकी उत्पीड़न थी।

2.6.1 उत्पीड़न का प्रभाव :

उत्पीड़न से प्रेरित अनुबन्ध उस पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय हो जाता है जिसकी सहमति उत्पीड़न द्वारा ली गई है। पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(2) अनुचित प्रभाव (Undue Influence) :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 16(1) के अनुसार ''कोई भी अनुबन्ध उस समय अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित कहा जाता है, जब कि पक्षकारों के मध्य ऐसे सम्बन्ध हों कि उनमें कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हों और दूसरे पक्षकार पर अनुचित लाभ पाने के लिए उस स्थिति का वास्तव में प्रयोग किया गया हो।''

इच्छा प्रभावित करने की स्थिति :

(क) जब एक पक्षकार की दूसरे पक्षकार पर अधिकार या सत्ता जमा सकने की स्थिति में हो, जैसे- पिता एवं पुत्र, शिक्षक एवं शिष्य तथा ऋणदाता एवं ऋणी। उदाहरण के लिए Mannu Singh Vs. Umadutt Pande के मामले में बालिग व्यक्ति ने अपनी सारी सम्पत्ति का दान-पत्र रद्द कर दिया।

(ख) जब पक्षकारों में विश्वासी सम्बन्ध होंऋ जैसे वकील एवं मुवक्किल।

(ग) जब दो पक्षकारों में से एक की मनःस्थिति अधिक उम्र अथवा शारीरिक या मानसिक रोग से ग्रस्त हो, जैसे-मरीज और चिकित्सक।

(घ) 'अनुचित प्रभाव' का प्रमाण-

अनुचित प्रभाव अनुबन्ध को उस पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय बना देता है जिसकी सहमति इस प्रकार से प्राप्त की गयी है। यदि अनुचित प्रभाव के होने का दावा किया जाता है तो इसके नहीं होने को प्रमाणित करने का भार उस पक्ष पर होता है जो दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है।

2.6.2 उत्पीड़न एवं 'अनुचित प्रभाव' में अन्तर :

(i) उत्पीड़न के अन्तर्गत शारीरिक दबाव का प्रयोग होता है, जबकि अनुचित प्रभाव के अन्तर्गत नैतिक दबाव का प्रयोग किया जाता है।

(ii) उत्पीड़न में पक्षकारों के मध्य विशिष्ट सम्बन्ध की विद्यमानता आवश्यक नहीं है, किन्तु अनुचित प्रभाव में एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होना चाहिए।

(iii) उत्पीड़न के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसका प्रयोग ठहराव करने वाले पक्षों के विरूद्ध ही किया जाये। उसकी सहमति को प्रभावित करने के लिए उसके किसी सम्बन्धी को भी धमकी दी जा सकती है। जबकि अनुचित प्रभाव ठहराव के पक्षकारों में से ही एक दूसरे पक्ष के विरूद्ध करता है।

2.6.3 मिथ्या वर्णन (Misrepresentation) :

साधारणतः मिथ्या वर्णन अथवा असत्य कथन का दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है-

(A) जान-बूझकर किसी को धोखा देने के उद्देश्य से किया गया मिथ्या वर्णन,

(B) अज्ञानता में किया गया मिथ्या वर्णन जिसकी असत्यता की जानकारी न हो,

इस प्रकार, पहले प्रकार के मिथ्या वर्णन का अध्ययन हमलोग आगे 'कपट' शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। अभी हमलोगों को दूसरे प्रकार के मिथ्या वर्णन की ही चर्चा करनी है।

जब एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध करने के उद्देश्य से अज्ञानतावश मिथ्या वर्णन करता है, जिसमें उसका उद्देश्य धोखा देना नहीं हो, ऐसे असत्य कथन को मिथ्या वर्णन कहा गया है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 में मिथ्या वर्णन के निम्नलिखित रूपों की चर्चा की गई है-

(i) ऐसी बात, जिसका मिथ्या वर्णन होता और जो सत्य नहीं है, यद्यपि कहने वाला उसकी सत्यता में विश्वास रखता है, मिथ्या वर्णन होता है। महेश गणेश से कहता है कि ''मेरी भूमि पर 4000 क्विंटल गेहूँ पैदा होता है, ''इस पर गणेश विश्वास करके महेश की जमीन खरीद लेता है। बाद में उस भूमि में केवल 3000 क्विंटल गेहूँ उत्पन्न होता है। यद्यपि महेश का विश्वास 4000 क्विंटल गेहूँ उत्पादन का होता है, किन्तु उसके पास विश्वास का कोई आधार नहीं था। अतः यह मिथ्या वर्णन हुआ।

(ii) ऐसे कर्त्तव्य भंग जो बिना कपट के अभिप्रायः से किया गया है और जिससे ऐसा करने वाले व्यक्ति अथवा उसके अधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति को लाभ होता है और दूसरे पक्षकार को हानि उठानी पड़ती है, मिथ्यावर्णन कहलायेगा। जैसे रवि ने अपना जीवन बीमा यह कहकर कराया कि उसकी आयु 20 वर्ष है, जबकि वास्तव में उसकी आयु 24 वर्ष थी, बीमा कम्पनी ने उसी आधार पर अपेक्षाकृत कम प्रीमियम निर्धारित किया। यहाँ पर कर्त्तव्य-भंग द्वारा मिथ्या वर्णन किया गया।

(iii) कभी-कभी अज्ञानतावश तेम्य प्रदर्शन किया जाता है जिससे एक पक्षकार अनुबन्ध को महत्त्वपूर्ण विषय-वस्तु के सम्बन्ध में त्रुटि कर बैठता है। जैसे-मोहन सोहन से कहता है ''मेरा मकान दोषमुक्त है। सोहन इस बात पर विश्वास करके मकान खरीद लेता है। किन्तु मोहन को वास्तव में यह मालूम नहीं था कि मकान की नींव में भारी दरार पड़ चुकी है। यह भी मिथ्यावर्णन का ही रूप होगा।

2.6.4 मिथ्यावर्णन का प्रभाव :

धारा 19, के अनुसार अनुबन्ध पर निम्न प्रभाव पड़ते है :

(क) अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय हो जाता है।

(ख) पीड़ित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध को प्रवर्त्तनीय करा सकता है यदि ऐसा करना उसके हित में लगे।

(ग) यदि पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को रद्द कर देता है तो वह प्रत्यस्थापन (Restitution) की माँग कर सकता है। किन्तु उसे क्षतिपूर्ति का अधिकार नहीं होगा।

2.6.5 कपट अथवा धोखा (Fraud) :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार जब किसी अनुबन्ध का एक पक्षकार या उसकी उपेक्षा से उनका प्रतिनिधि, दूसरे पक्षकार या उस प्रतिनिधि को धोखा देने के उद्देश्य से या धोखा से अनुबन्ध करने के लिए प्रवृत्त करने के उद्देश्य से निम्न में से कोई कार्य करता है, तो यह माना जायेगा कि उसने 'कपट' किया है-

(क) किसी असत्य बात को जान-बूझकर सत्य बताना,

(ख) किसी तथ्य को छुपाना, जिसका उसे सत्यज्ञान हों,

(ग) ऐसा वचन देना जिसे पूरा करने का कोई इरादा न हो

(घ) ऐसा कोई कार्य या भूल करना जो दूसरे पक्ष को धोखा देने के लिए किया गया हो, या जिसे कानूनन विशिष्ट तौर पर कपटपूर्ण घोषित कर दिया गया हो,

(ङ) कुछ परिस्थितियों में केवल मौन रहना भी कपट बन जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार कपट में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं-

(i) कपटपूर्ण कार्य अनुबन्ध के एक पक्ष या उसके एजेन्ट द्वारा किया जाता है।

(ii) कपटपूर्ण कार्य का उद्देश्य देना होता है।

(iii) कपट का उपयोग किसी पक्षकार या उसके एजेन्ट का अनुबन्ध करने के लिए प्रवृत्त करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।

(iv) कपट कई प्रकार से किया जा सकता है, जैसे-

(A) यदि कोई पक्षकार यह जानते हुए भी कि कोई बात असत्य है उसे सत्य बताता है या ऐसा प्रदर्शन करता है या तो इस दूसरे पक्षकार के प्रति कपट किया गया माना जायेगा, जैसे- यदि राम, श्याम से कहकर अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करे कि उसका फर्नीचर सागवान लकड़ी का बना हुआ है, जबकि राम जानता है कि वह शीशम लकड़ी का बना हुआ है, तो उसका ऐसा प्रदर्शन करना कपटपूर्ण होगा।

(B) साधारणतः अनुबन्ध से सम्बन्धित सभी बातों को प्रकट करना किसी पक्षकार का दायित्व नहीं है। पक्षकारों से सावधान रहने की अपेक्षा की जाती हैं, जिससे कि वे धोखे में न पड़े।

किन्तु कुछ अनुबन्धों में पक्षकार का कर्त्तव्य और दायित्व होता है कि वह उनसे सम्बन्धित महत्वपूर्ण बातों को प्रकट कर दें। जैसे-

(i) कानूनों के आदेशानुसार कुछ अनुबन्धों में तथ्यों को प्रकट करना अनिवार्य होता है; जैसे- सम्पत्ति के विक्रेता को खरीददार की जानकारी के लिए सम्पत्ति के भार या बन्धकमुक्त होने अथवा न होने से सम्बन्धित समस्त तथ्य प्रकट कर देना चाहिए। ऐसा न करने पर "Transfer at property Act" की धारा 55 का उल्लंघन होगा और क्रेता द्वारा अनुबन्ध व्यर्थ माना जा सकता है।

(ii) बीमें में अनुबन्ध, कम्पनी के क्रय करने का अनुबन्ध साझेदारी अथवा गारन्टी के अनुबन्ध ऐसे अनुबन्ध है जिनमें पूर्ण सद्भावना की अपेक्षा की जाती है। यदि एक पक्षकार को महत्वपूर्ण जानकारी ज्ञात हे और दूसरा पक्षकार उस जानकारी को प्राप्त करने में असपर्थ है और अगर दससे निर्णय प्रभावित होने वाला है तो जानकारी रखने वाले पक्ष का दायित्व होता है कि दूसरे पक्ष का सही बात की सूचना दे दें।

(C) ऐसा वचन देना जिसे पूरा करने का इरादा नहीं है। अर्थात् वचन के पूरा न करने का इरादा वचन देते समय ही नहीं होना चाहिए।

धारा 17 के अनुसार 'मौन' धारण कर लेना कपट नहीं कहलाता है। किन्तु दो परिस्थितियों में 'मौन' धारण करना कपट कहलाता है-

(क) यदि परिस्थितियाँ इस प्रकार की हो कि मौन धारण कर लेने वाले का यह कर्त्तव्य हो जाये कि वह बोले। जैसे सद्भावना वाले अनुबन्ध में मौन धारण करना कपट कहलायेगा।

(ख) यदि मौन धारण करना बोलने के समान हो। उदाहरण के लिए रवि, रमेश से कहता है कि अगर चुप रह

गये तो समझूँगा कि तुम्हारा स्कूटर ठीक-ठाक है। रमेश मौन धारण कर लेता है। यहाँ मौन धारण करना बोलने के समान है।

2.6.6 कपट का अनुबन्ध पर प्रभाव :

(i) अनुबन्धक पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थहीन हो जाता है।

(ii) पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को प्रभावित करा सकता है यदि ऐसा उसे हित में हे।

(iii) पीड़ित पक्षकार अपना धन या सम्पत्ति जो दूसरे पक्षकार को देता है, उसे वापस पाने का अधिकार रखता है एवं

(iv) यदि पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध के अन्तर्गत कोई हानि हुई है, तो वह उसकी पूर्ति का अधिकार रखता है।

2.7 कपट एवं मिथ्या वर्णन में अन्तर (Difference between fraud and Misrepresentation)

कपट एवं मिथ्या वर्णन में निम्नलिखित मुख्य अन्तर है-

(i) कपट धोखा देने या दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से किया जाता है, जबकि मिथ्यावर्णन में धोखा देने अथवा कुछ लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं होता है।

(ii) कपट सदैव जान-बूझकर ही किया जाता है, किन्तु मिथ्यावर्णन अज्ञानतावश होता है।

(iii) कपट के अन्तर्गत पीड़ित पक्षकार हानि की क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु मिथ्या वर्णन में बाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इसमें क्षतिपूर्ति का सिद्धांत लागू नहीं होता है।

(iv) कपट की स्थिति में पीड़ित पक्षकार उचित अवधि में अनुबन्ध के विरूद्ध कोई कार्यवाही न भी करें तो भी अनुबन्ध को वैध नहीं ठहराया जा सकता। किन्तु, मिथ्या वर्णन की दशा में यदि पीड़ित पक्षकार उचित अवधि में अनुबन्ध के विरूद्ध कोई कार्य न करेंगे, अनुबन्ध वैध माना जायेगा।

(v) कपट में धोखा देनेवाला पक्षकार (मौन द्वारा कपट को छोड़कर) यह नहीं कह सकता है कि दूसरे पक्षकार के पास सत्य की खोज करने के पर्याप्त साधन था अथवा वह साधारण प्रयास से सत्य की खोज कर सकता था, किन्तु मिथ्यावर्णन में पीड़ित पक्षकार के विरूद्ध ऐसा कहा जा सकता है।

2.7.1 त्रुटि अथवा गलती (Mistake) :

गलती या त्रुटि का आशय किसी विषय के सम्बन्ध में भ्रामक विश्वास से होता है। अर्थात् किसी गलती या भूल के कारण जब किसी के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो तो उसे गलती कहा जाता है।

अनुबन्ध के सम्वन्ध में गलती दो प्रकार की होती है-

(a) तथ्य सम्बन्धी गलती, एवं

(b) कानून सम्बन्धी गलती,

अब हम इन दोनों प्रकारों का अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

(i) अनुबन्ध करते समय विषय-वस्तु का अस्तित्व जरूरी है। इसके अभाव में अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा। जैसे- 'A', 'B' से अपनी गाय बेचने का अनुबन्ध करता है। बाद में मालूम होता है कि गाय पहले ही मर चुकी है, जबकि दोनों पक्षकार यह समझते हैं कि गाय जीवित है।

(ii) विषय-वस्तु की पहचान के सम्बन्ध में दोनों पक्षकारों का एक मत न होने पर अनुबन्ध व्यर्थ होता है, जैसे एक पक्षकार का अर्थ दूसरे पक्षकार से अलग हो।

(iii) पत्रकारों के बीच विषय वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में भ्रम होने पर अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। जैसे-विक्रेता गलती से किसी वस्तु का मूल्य 6000 रु० के स्थान पर 4000 रु० लिख देता है और क्रेता उसको जानते हुए भी चुप रहता है।

(iv) यदि अनुबन्ध के दोनों पक्षकार विषय-वस्तु के किस्म या गुण सम्बन्धी गलती कर रहे हों तो भी अनुबन्ध व्यर्थ होगा।

(v) यदि दोनों पक्षकारों द्वारा विषय-वस्तु की मात्रा के सम्बन्ध में गलती हो जाती है, तो भी अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है।

(vi) यदि व्यक्ति की, जिसके साथ अनुबन्ध किया जा रहा है, पहचानने में कोई गलती होती है, तब भी अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

(b) कानून सम्बन्धी गलती (Mistake of Law) - प्रत्येक व्यक्ति से एक देश के नागरिक होने के नाते आशा की जाती है कि वह वहाँ के राजनियम से परिचित होगा। अतः किसी प्रकार की किसी भी राजनियम सम्बन्धी गलती को क्षमा नहीं किया जा सकता है। जैसे A ने B को मार डाला और न्यायालय में यह कहा कि मुझे नहीं मालूम था कि जान से मारना अपराध है। इस आधार पर उसे क्षमा नहीं किया जा सकता है। क्योंकि, यह मान लिया गया है कि उसे इसकी जानकारी होनी चाहिए।

2.7.3 गलती का प्रभाव :

(i) अपने साथ हुए अनुबन्ध को रद्द कर सकता है,

(ii) उसके विरुद्ध जो अभियोग चलाया उससे वह अपनी रक्षा सरलतापूर्वक कर सकता है, एवं

(iii) अनुबन्ध के सम्बन्ध में दिया गया धन पुनः वापस पाने का अधिकार रखता है।

2.8 न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य (Lawful Consideration and Objects)

प्रत्येक अनुबन्ध के दो भाग होते हैं- वचन एवं वचन के लिए प्रतिफल। किसी काम को करने अथवा नहीं करने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा तभी वचन दिया जाता है। जब उसे ऐसा करने के बदले कुछ प्राप्त होता है। अतः साधारणतः बोल-चाल की भाषा में हम कह सकते हैं कि प्रतिफल का अर्थ ''कुछ के बदले कुछ'' "Something for something" से है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक पक्षकार को उसके कार्य के बदले दूसरे पक्षकार से जो कुछ प्राप्त होता है वही प्रतिफल है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(d) के अनुसार ''जब वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहीता या किसी अन्य व्यक्ति ने कुछ कार्य किया हो या करने के विरत रहा हो, या करता हो या करने से विरत रहता हो। भविष्य में करने या न करने का वचन देता हो तो ऐसा कार्य या ऐसा वचन उस वचन का प्रतिफल कहलायेगा।''

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषा से हमें प्रतिफल के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्व मिलते हैं-

(1) प्रतिफल का अर्थ कुछ करने या नहीं करने से होता है।

(2) प्रतिफल साधारणतया वचनग्राही द्वारा ही दिया जाता है, किन्तु यह तीसरे पक्ष अर्थात् अनुबन्ध से असम्बद्ध

पक्ष द्वारा भी दिया जा सकता है। चिन्नाया बनाम रमैया के मुकदमें में वचनग्राही के भाई द्वारा दिया गया प्रतिफल वचन के निष्पादन के लिए मान्य समझा गया।

(3) प्रतिफल सदैव वचनदाता की इच्छा पर ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि कोई प्रतिफल यदि वचनदाता की बिना इच्छा के अथवा अपनी इच्छा से अथवा तृतीय पक्षकार की इच्छा से उत्पन्न होता है तो वैधानिक दृष्टि से उसे प्रतिफल नहीं कहा जा सकता है। जैसे यदि A ने जिलाधीश के सुझाव पर बाजार के विस्तार एवं सुधार पर कुछ व्यय किया हो, तो वह बाजार के दूकानदारों से बाजार में विस्तार लाने के लिए किये गये व्यय की राशि की माँग नहीं कर सकता है।

(4) प्रतिफल का वचन के लिए पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है, बल्कि कानून की नजर में प्रतिफल का सिर्फ कुछ मूल्य होना चाहिए। इस प्रकार 10,000 रुपए की वस्तु 1000 रुपये में बेची जा सकती है। किन्तु इसके लिए जरूरी है कि वचनदाता की सहमति स्वतन्त्र हो, क्योंकि प्रतिफल की अपर्याप्तता अनुबन्ध नहीं कर सकती है।

2.8.1 प्रतिफल :

(i) भूल या वर्तमान में कार्य करने सये विरक्ति जो वचन दिये जाने के पहले ही हो चुकी हों,

(ii) वर्तमान या सम्पादित अर्थात वचन दिये जाने के साथ-साथ कार्य या कार्य से अलग एवं

(iii) भावी अर्थात् कुछ करने या नहीं करने का वचन हो सकता है। किन्तु अंग्रेजी सन्नियम भूत प्रतिफल को मान्यता प्रदान नहीं करता है।

प्रतिफल स्पष्ट होना चाहिए। यदि प्रतिफल अस्पष्ट, अनिश्चित, छलपूर्ण अथवा कपटपूर्ण है तो उसे प्रतिफल नहीं कहा जायेगा एवं वह वैधानिक नहीं होगा। इस सम्बन्ध में (Jogindra Nath Vs Chandra Nath) का मामला महत्त्वपूर्ण है।

2.8.2 अपवाद (Exceptions) :

एक वैध अनुबन्ध के लिए कुछ न कुछ प्रतिफल का होना अनिवार्य है। इसलिए कहा गया है कि "प्रतिफल नहीं, अनुबन्ध नहीं, (No consideration, No contract.")। किन्तु, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 में इसके कुछ अपवादों की भी चर्चा की गयी है, जो निम्नलिखित है-

(1) यदि कोई ऐसा ठहराव हो जो पक्षकार के मध्य स्वाभाविक (प्राकृतिक) प्रेम एवं स्नेह के कारण निकट सम्बन्धियों के बीच किया गया है और वह लिखित एवं पंजीकृत है, तो वह बिना प्रतिफल के भी मान्य होता है।

(2) यदि अनुबन्ध उस व्यक्ति की क्षतिपूर्ति का वचन हो जो पहले ही अपनी इच्छा से वचनदाता के लिए कार्य कर चुका हो अथवा कोई कार्य किया हो जिसे करने के लिए वचनदाता वैधानिक रूप से बाध्य था। जैसे- A, B की खोई हुई वस्तु पाता है एवं उसे लौटा देता है। इसके लिए B, A को 100 रुपया देने का वचन देता है। यह एक वैध अनुबन्ध होगा।

(3) यदि एक व्यक्ति ऐसे वैध ऋण को पूर्णतः या अंशतः चुकाने का वचन देता है, जिसकी अवधि वर्जित हो चुकी है, तो यह वचन प्रतिफल के अभाव में भी प्रवर्तनीय होता है।

(4) निःशुल्क निक्षेप का अनुबन्ध भी प्रतिफल के अभाव में वैध माना जाता है, जैसे- पुस्तकालय के कर्मी के पास अपना बैग जमा करवाना।

(5) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 185 के अनुसार एजेन्सी का निर्माण करने वाला समझौता बिना प्रतिफल के भी मान्य होता है।

(6) यदि अनुबन्ध पूर्ण दान या ऐसे दान के रूप में हो जो दिया जा चुका हो। इस प्रकार दान के रूप में लिखित एवं पंजीकृत प्रलेख को बाद में प्रतिफल के अभाव के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है।

2.8.3 प्रतिफल के सम्बन्ध में भारतीय एवं अंग्रेजी राजनियम में अन्तर :

(1) भारतीय राजनियम के अनुसार अनुबन्ध की धारा 25 के अपवादों को छोड़कर बिना प्रतिफल के सभी ठहराव व्यर्थ होते हैं, किन्तु अंग्रेजी राजनियम के अनुसार यदि अनुबन्ध लिखित एवं पंजीकृत हों, तो बिना प्रतिफल के वैध होते हैं।

(2) भारतीय राजनियम के अनुसार प्रतिफल वचन ग्रहीता की ओर से या किसी अन्य व्यक्ति की ओर से भी हो सकता है, जबकि अंग्रेजी सन्नियम के अनुसार प्रतिफल वचनग्रही द्वारा ही दिया जाना चाहिए।

(3) भारतीय राजनियम भूतपूर्व प्रतिफल को मान्यता प्रदान करता है। किन्तु अंग्रेजी सन्नियम भूतपूर्व प्रतिफल को मान्यता प्रदान नहीं करता है।

(4) भारतीय राजनियम कुछ अवस्थाओं में प्रेम एवं स्नेह को उचित प्रतिफल मानता है, जबकि अंग्रेजी सन्नियम के अनुसार प्रतिफल का कानून की नजरों में कुछ मूल्य अवश्य होना चाहिए।

2.8.4 प्रतिफल एवं उद्देश्य की अवैधता :

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार निम्न दशाओं में प्रतिफल अवैध माना जाता है

(i) कोई ऐसा कार्य करना या वचन देना जो राजनियम द्वारा निषिद्ध है। चोरी-करना या किसी की हत्या करने का ठहराव अवैध है।

(ii) यदि प्रतिफल किसी राजनियम के आदेशों का उल्लंघन करता है या उसके प्रावधानों को निष्फल कर देता है

(iii) यदि प्रतिफल कपटपूर्ण है अर्थात् उसका उद्देश्य किसी को धोखा देना है तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

(iv) यदि उसका उद्देश्य किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुँचाना है।

(v) यदि न्यायालय उसे अनैतिक या लोकनीति के विपरीत मानता है। जैसे अनैतिक शारीरिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन देने वाले ठहराव अनैतिक है। देश अथवा सर्व साधारण का अहित करने वाले कार्य लोकनीति के विरुद्ध कहे जाते हैं।

2.9 वैध अनुबन्ध के अनिवार्य तत्त्व एवं सांयोगिक अनुबन्ध

एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्वों का अध्ययन जारी रखते हुए हम इस पाठ के अन्तर्गत वैध अनुबन्ध के अन्तिम तत्त्व 'स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव' का विस्तार से अध्ययन करेंगे। साथ ही पाठ के अन्त में सांयोगिक अनुबन्ध पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

2.9.1 स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव (Agreements Expressly Declared as Void) :

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं द्वारा कुछ ठहरावों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया गया है। व्यर्थ ठहराव वे हैं जिनका वैधानिक अस्तित्व नहीं होता। ऐसे ठहराव निम्नलिखित हैं-

अब हम विस्तार से इनका अध्ययन करेंगे-

(1) विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव	(धारा 26)
(2) व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव	(धारा 27)
(3) वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव	(धारा 28)
(4) अनिश्चित कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव	(धारा 29)
(5) बाजी के ठहराव	(धारा 30)
(6) असंभव कार्य करने का ठहराव	(धारा 56)

(1) विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव - ऐसी कोई भी रूकावट जो एक वयस्क के विवाहित होने के आधारभूत अधिकार का हनन करती है, चाहे वह आंशिक हो या पूर्ण, लोक नीति के विरूद्ध होने से व्यर्थ घोषित कर दी गई है।

इस प्रकार किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया वचन कि वह जीवन भर अविवाहित रहेगा, सन्नियम द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष के साथ शादी नहीं करने का दिया गया वचन शादी में रूकावट डालने वाला ठहराव नहीं होता।

(2) व्यापार में रूकावट डालने वाला ठहराव - अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार "प्रत्येक ऐसा ठहराव जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार का वैध पेशा, व्यापार या व्यवसाय अथवा धंधा करने में रूकावट पैदा करता है, उस समय तक व्यर्थ है जब तक वह ठोस अवरोध उत्पन्न करता है, किन्तु यदि ठहराव का कोई एक अंश ही व्यापार में रूकावट डालता है तो वह अंश ही व्यर्थ होगा; किन्तु यदि ठहराव का यह अंश अलग नहीं किया जा सकता तो वह पूरा ठहराव ही व्यर्थ होगा।

व्यवसाय में रूकावट डालने वाला ठहराव लोक-नीति के विरूद्ध भी माने जाते हैं। यह अवरोध सामान्य हो या आंशिक, उचित हो या अनुचित, असीमित हो या सीमित, सभी व्यापार निरोधक कहे जाते हैं और व्यर्थ होते हैं, क्योंकि किसी व्यक्ति को अनुबन्ध के आधार पर उसके कौशल, प्रतिभा एवं परिश्रम से मिलने वाले लाभ में अवरोध उत्पन्न नहीं किया जाना चाहिए।

किन्तु अंग्रेजी विधान के अनुसार, यदि अवरोध उचित हो, जनता के हित के विरोध में न हो, प्रतिफल के ... हों और पक्षकार की सुरक्षा के लिए हो तो वह व्यर्थ नहीं होगा।"

2.9.2 अपवाद (Exceptions) :

इसके निम्नलिखित अपवाद हैं :

(i) व्यापार की ख्याति के विक्रय के समय का ठहराव - ख्याति के ... खरीदने वाले की यह शर्त मान सकता है कि निर्धारित सीमाओं और समय में प्रतिस्पर्धी व्यापार नहीं करेगा, किन्तु इन सीमाओं का औचित्य न्यायालय निर्धारित करेगा।

(ii) **साझेदारों के पारस्परिक ठहराव** - भारतीय साझेदारी **अधिनियम** की धारा 11 के अनुसार, फर्म के साझेदार साझेदारी व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य कोई व्यवसाय न करने का ठहराव कर सकते हैं और यह ठहराव मान्य ठहराव होगा।

(iii) **नौकरी सम्बन्धी ठहराव** - किसी कर्मचारी द्वारा नौकरी की अवधि में दूसरे नियोक्ता के यहाँ नौकरी स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगाने अथवा अपने मालिक के आधार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रतियोगिता करने वाले

कारोबार करने पर रोक लगाने वाले अनुबन्ध वैध होंगे। किन्तु नौकरी छोड़ने के बाद भी यदि नियोक्ता अपने कर्मचारी पर ठहराव व्यर्थ माना जायेगा।

(iv) प्रतिस्र्द्धा को सीमित करने वाले ठहराव - यदि कोई ठहराव एकाधिकार को जन्म नहीं देता है एवं लोकनीति के विरूद्ध नहीं है, तो वैध होगा। जैसे- उत्पादक एवं व्यापारी अपने मालों का न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने, लाभो एवं व्यापार सीमाओं को परस्पर बाँटने के उद्देश्य से व्यापार संघों का निर्माण कर सकते हैं। Fraser & Co. Vs. The Bombay Ice Manufacturing Co. के मुदमें में बर्फ उत्पादकों द्वारा बर्फ को एक निश्चित कीमत से कम पर बेचने का ठहराव किया गया। न्यायालय ने इस ठहराव को वैध बतलाया।

अतः उत्पादकों, व्यापारियों एवं सेवा-योजकों द्वारा आपस में किये गये ठहराव, जिसका ध्येय पारस्परिक प्रतियोगिता को समाप्त करना हो अथवा मूल्य निर्धारण द्वारा पूर्ति को नियन्त्रित करना हो, अवैध नहीं माने जाते, भले ही इंनसे जनता को हानि हो।

(v) फर्म के समापन की स्थिति में किया गया ठहराव - सभी साझेदार इस प्रकार का ठहराव कर सकते हैं कि वे सभी लोग अथवा उनमें से कुछ साझेदार एक निश्चित समय तक एवं एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर फर्म के व्यापार से मिलता-जुलता व्यापार नहीं करेंगे, किन्तु यह ठहराव तभी वैध होगा जब प्रतिबन्ध उचित हों।

2.9.3 वैधानिक कार्यवाही के रूकावट डालने वाला ठहराव -

चूँकि ऐसे ठहरावं लोकनीति के विरूद्ध होते हैं अतः व्यर्थ है। धारा 28 के अनुसार वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव निम्नलिखित है-

(क) किसी पक्षकार को किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत न्यायालय में बाद प्रस्तुत करने से रोकते हों, या

(ख) उस अवधि को सीमित करने के किए जाते हों जिसमें कोई पक्षकार न्यायालय में बाद प्रस्तुत कर सकता है।

ऐसे समस्त ठहराव स्पष्टतः व्यर्थ घोषित कर दिये गये हैं। इन सामान्य आदेशों के दो अपवाद है। जिनका उद्देश्य व्यर्थ की मुकदमेंबाजी को नियन्त्रित करना है। जो निम्नलिखित है-

(क) जब पक्षकार इस बात पर राजी हो जाये कि यदि भविष्य में उनके बीच किसी प्रकार का विवाद या मतभेद होगा तो उसका निपटारा पंचायत के माध्यम से करेंगे एवं इस प्रकार के सुपुर्द विवाद में केवल पंचायत द्वारा निर्णीत धन ही प्राप्त करेंगे तो यह ठहराव व्यर्थ नहीं होगा।

(ख) ऐसा ठहराव जिसके द्वारा दो या दो से अधिक पक्षकार आपस में निर्णय करें कि उनके मध्य उठे विवाद को वे न्यायालय में न जाकर पंचायत को ही सुपुर्द करेंगे, तो यह ठहराव व्यर्थ नहीं होगा।

2.9.4 अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव -

धारा 29 के अनुसार वे समस्त ठहराव व्यर्थ है, जिनका अर्थ या तो निश्चित है ही नहीं अथवा निश्चित किया जाना सम्भव नहीं है। ऐसे ठहरावों में पक्षकारों के अधिकार एवं दायित्व न तो स्पष्ट होते हैं और न किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ-

(A) महेश, गणेश के साथ 5000 क्विंटल अनाज बेचने का सौदा करता है। यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि अनाज कौन-सा होगा, अतः यह ठहराव व्यर्थ है।

2.9.5 बाजी के ठहराव -

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 30 के आदेशानुसार, वे सभी ठहराव व्यर्थ है, जिनका उद्देश्य बाजी लगाना होता है, उदाहरण के लिए, भारत व पाकिस्तान की हॉकी टीम के ओलम्पिक मैच में किसी टीम के जीतने या हारने पर लगाई गई

धन की शर्त या वर्षा होने से एक नियत अवधि में पत्तों से पानी टपकने पर मुद्रा की हार-जीत के ठहराव, बाजी के ठहराव के अन्तर्गत आते हैं, अतः व्यर्थ है।

न्यायाधीश हाकिन्स के शब्दों में "बाजी का ठहराव वह है जिसमें दो व्यक्ति, किसी अनिश्चित घटना के विषय में विपरीत विचार रखते हुए, परस्पर यह ठहराव करते हैं कि उस घटना के निश्चित हो जाने पर एक व्यक्ति की दूसरे पर जीत होगी और दूसरा पहले को कुछ धन अथवा वस्तु देगा। बाजी में रखे गये धन या वस्तु के अतिरिक्त, ठहराव के पक्षकारों का अन्य कोई हित नहीं रहता और न कोई प्रतिफल ही होता है। दोनों व्यक्ति हारने या जीतने की स्थिति में रहते हैं। किसी व्यक्ति का हारना या जीतना घटना के परिणाम पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर बाजी के ठहराव में निम्नलिखित लक्षण या विशेषताएँ होती हैं

(i) इस प्रकार के ठहराव में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को एक निश्चित धनराशि या इसके बदले कोई वस्तु देने को वचन देता है।

(ii) घटना के घटित होने अथवा न होने के सम्बन्ध में किसी पक्षकार को कोई भी जानकारी नहीं होती अर्थात् घटना का घटित होना पूर्ण रूप से निश्चित होता है।

(iii) बाजी लगाने के ठहराव में दोनों पक्षकारों के लिए हार-जीत के समान अवसर होते हैं अर्थात् उनमें से किसी एक की आर और दूसरे की जीत हो सकती है।

(iv) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 30 बाजी लगाने के रूप में किये गये ठहरावों को व्यर्थ घोषित करती है, जैसे पाकिस्तान और भारत के बीच होने वाले टेस्ट मैच के सम्बन्ध में यदि ऐसा ठहराव किया जाता है कि दोनों पक्षकार इसी हार या जीत के लिए रुपया जमा करेंगे, तो इस प्रकार का ठहराव व्यर्थ होगा, यद्यपि टेस्ट मैच अपने-आप में वैध है।

(v) घटना के घटित होने से पूर्व पक्षकारों को उस घटना की सम्भावना पर निर्भर रहना आवश्यक होता है।

(vi) एक पक्षकार को कुछ लाभ एवं दूसरे पक्षकार को कुछ हानि अवश्य होनी चाहिए।

(vii) पक्षकारों का जीतने या हारने के अतिरिक्त ठहराव में कोई अन्य हित नहीं होना चाहिए।

(viii) घटना का घटित होना या नहीं होना दैवाधीन होता है।

(ix) भूतकाल में यदि कोई घटना घट चुकी हो तो उसके सम्बन्ध में भी बाजी का ठहराव किया जा सकता है। किन्तु घटना के परिणाम की जानकारी ठहराव के किसी पक्षकार को नहीं होना चाहिए।

स्पष्टीकरण :

रवि, रमेश से कहता है कि यदि कल वर्षा होती है तो रमेश को 500 रुपया देना होगा अथवा वह रमेश को देगा, तो इस प्रकार का ठहराव बाजी कहलायेगा एवं व्यर्थ माना जायेगा।

अपवाद (Exceptions) :

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 30 के अनुसार घुड़दौर के विजेता को 500 रुपया या इससे अधिक का पुरस्कार देने के लिए चन्दा या दान देने का ठहराव वैधानिक होता है। किन्तु घुड़दौड़ से सम्बन्धित ऐसे व्यवहार वैध कहलाते हैं जिनका उल्लेख भारतीय दण्ड विधान की धारा 294(A) में किया गया है।

प्रभाव (Effect) :

चूँकि धारा 30 के अनुसार बाजी का ठहराव व्यर्थ होता है, अतः ठहराव के अन्तर्गत जीते गये धन या वस्तु को प्राप्त करने के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। यदि किसी तृतीय पक्षकार के यहाँ बाजी का परिणाम निकलने तक के लिए

कोई धन या वस्तु रखी गई है, तो भी उसे प्राप्त करने के लिए बाद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। किन्तु बाजी हारने वाले व्यक्ति तृतीय पक्ष के यहाँ रखे गये धन या वस्तु को प्राप्त कर सकता है, यदि वह धन या उस वस्तु को तृतीय पक्ष द्वारा बाजी जीतने वाले को न दे दिया गया हो।

बाजी ठहराव की परख :

इस बात का पता करना कि कोई भी ठहराव बाजी लगाने से सम्बन्धित है अथवा नहीं, इसके लिए ठहराव की प्रकृति एवं परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है। इसी प्रकार के कुछ महत्त्वपूर्ण ठहराव निम्नलिखित हैं-

(i) बीमा सम्बन्धी अनुबन्ध :

बीमें के अनुबन्ध को बाजी लगाने का अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि जिस वस्तु का बीमा करवाया जाता है उसमें बीमा करवाने वाले व्यक्ति का बीमा योग्यहित (Insurable interest) होता है। यदि बीमित दूकान में आग लग जाती है तो इसमें दूकानदार को हानि होती है जिसकी पूर्ति बीमा कम्पनी द्वारा की जायेगी। अतः बाजी का अनुबन्ध नहीं है।

(ii) सट्टे (Speculation) का व्यवहार :

सट्टे का व्यवहार इस प्रकार का होता है कि यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि कोई व्यवहार विशुद्ध व्यापारिक अनुबन्ध है या बाजी का ठहराव। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यदि पक्षकारों का उद्देश्य अनुबन्ध अथवा ठहराव के निष्पादन का है तो यह विशुद्ध व्यापारिक अनुबन्ध होगा और दूसरी ओर यदि पक्षकारों का उद्देश्य केवल अन्तर का लाभ कमाना है, तो इसे बाजी का ठहराव कहेंगे।

अनेक वाद-विवादों में इसी आधार पर यह निर्णय दिया जा चुका है कि प्रचलित सट्टे का ठहराव बाजी लगाने का व्यवहार नहीं है। इसमें सम्बन्धित पक्षकारों को किसी आगामी तिथि पर माल की सुपुर्दगी देने अथवा लेने के लिए बाध्य किया जा सकता है। अतः सट्टे का व्यवहार एक व्यापारिक अनुबन्ध के अन्तर्गत आता है और वैध समझा जाता है।

(iii) व्यापारिक व्यवहार या ठहराव :

इस प्रकार के ठहराव में वास्तविक रूप से पक्षकारों का उद्देश्य माल की सुपुर्दगी लेने व देने के लिए बाध्य कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में इसे व्यापारिक ठहराव कहेंगे। दूसरी ओर यदि सम्बन्धित पक्षकारों ने यह पहले ही निश्चित कर लिया है कि माल की वास्तविक सुपुर्दगी बदली नहीं जायेगी वरन् किसी आगामी तिथि पर मूल्यों की घटा-बढ़ी का अन्तर ही लिया और दिया जायेगा एवं पक्षकार एक-दूसरे की सुपुर्दगी लेने व देने के लिए बाध्य नहीं करेंगे, तो इसे बाजी लगाने का ठहराव कहेंगे।

(iv) लॉटरी (Lottery) :

भारतीय दण्ड विधान की धारा 215(A) में लॉटरी सम्बन्धी ठहराव व्यर्थ ही नहीं अपितु अवैध भी घोषित किया गया है, एवं इससे सम्बन्धित ठहराव भी अवैध समझते जाते हैं। किन्तु, यदि लॉटरी निकालने के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त कर ली गई है, तो लॉटरी निकालने वाले एवं खरीदने वाले को सजा नहीं दी जा सकती।

(v) चिट-फण्ड (Lottery) :

चिट-फण्ड के ठहराव को लॉटरी के अन्तर्गत नहीं लिया जाता है। अतः यह बाजी का ठहराव नहीं है।

(vi) वर्ग-पहेली प्रतियोगिता :

यह प्रतियोगिता बुद्धिमत्ता के मापदण्ड के रूप में ली जाती है। अतः इसे बाजी लगाने के ठहराव के अन्तर्गत नहीं रखा जाता है।

(vii) तेजी-मन्दी का ठहराव :

तेजी-मन्दी का ठहराव भी सट्टे के व्यवहारों की तरह होता है। अतः इस प्रकार के व्यवहार अथवा ठहराव व्यर्थ एवं अवैध तब तक नहीं हो सकते, जबतक कि सम्बन्धित पक्षकारों का उद्देश्य वास्तव में माल की सुपुर्दगी देना अथवा लेना न होकर केवल मूल्यों का अन्तर लाभ कमाना हो।

2.10 बाजी के ठहराव एवं साधारण ठहराव में अन्तर

(A) बाजी के ठहराव के अन्तर्गत सम्बन्धित पक्षकार यह निश्चित करते हैं कि किसी विशेष अनिश्चित घटना के घटित होने पर एक पक्षकार की दूसरे पक्षकार पर जीत होगी। किन्तु, साधारण अथवा व्यापारिक ठहराव में पक्षकारों के समक्ष हार या जीत का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ पर एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को प्रतिफल के बदले कुछ देने का वचन देता है।

(B) बाजी के ठहराव में हारे हुए पक्षकार द्वारा जीते हुए पक्षकार को धन या अन्य कोई निश्चित वस्तु दी जाती है। परन्तु साधारण ठहराव में दोनों ही पक्षकार अपने-अपने वचनों को पूरा करने के लिए बाध्य होते हैं।

(C) कुछ अपवादों के अतिरिक्त बाजी के ठहराव व्यर्थ और अवैध होते हैं, जिन्हें प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है। अधिकांश रूप में साधारण या व्यापारिक ठहराव वैध एवं प्रवर्तनीय होते हैं। केवल कुछ परिस्थितियों में ही इन्हें प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है।

(D) किसी अनिश्चित घटना के घटने पर ही बाजी के ठहराव को प्रवर्तनीय कराया जा सकता है। इससे पहले इसका प्रवर्तनीय होना सम्भव नहीं होता। किन्तु साधारण ठहराव में किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर ही ठहराव प्रवर्तनीय हो, ऐसा सदैव आवश्यक नहीं होता और जहाँ ऐसा होता है वहाँ ठहराव को सायोगिक अनुबन्ध कहा जाता है।

6. असंभव कार्य करने वाले ठहराव – अनुबन्ध अधिनियम की धारा 56 ऐसे ठहरावों को व्यर्थ घोषित करता है, जो असंभव कार्य करने से संबंधित हों। ऐसे ठहराव को पक्षकारों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है। जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है-

(क) राम, मोहन के साथ ठहराव करता है कि वह 5000 रुपया में मोहन को पानी पर चलना सिखा देगा। यह कार्य असंभव है अतः यह ठहराव भी व्यर्थ है।

(ख) रवि, रमेश से कहता है कि तुम मुझे 1000 रुपया दो, तो तुम्हारे मकान में गड़े हुए धन जादू से निकाल दूंगा। यह ठहराव भी व्यर्थ है, क्योंकि जादू से गड़े हुए धन का पता लगाना असंभव है।

2.11 सांयोगिम अनुबन्ध (Contingent Contract)

यह किसी कार्य को करने या न करने का ऐसा विशिष्ट अनुबंध है, जो ऐसी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है, जो अनुबंध के समपार्श्विक (Collateral) है। अनुबंध अधिनियम की धारा 31 के अनुसार, "सांयोगिक अनुबंध किसी कार्य को करने अथवा न करने का ऐसा अनुबंध है, जो कि उन अनुबंध के समपार्श्विक किसी घटना सा घटित होने या न होने पर निर्भर करता है।" (A Contingent Contract is a contract to do or not to do something, if some event collateral to such contract, does or does not happen)

इस अनुबंध में सम्बन्धित पक्षकार किसी कार्य को करना अथवा न करने के लिए पूर्ण रूप से बाध्य नहीं होतें।

अनुबंध की समपार्श्विक किसी घटना से घटित होने अथवा न होने पर पक्षकारों का उत्तरदायित्व निर्भर करता है। जैसे-रीतेश, रवि के साथ यह अनुबन्ध करता है कि यदि रवि का घर जल जायेगा तो वह 15,000 रुपया देगा। अब रवि का मकान जलने पर ही रीतेश का दायित्व होगा 15,000 रुपया देने का। यह एक सांयोगिक अनुबंध हुआ।

2.11.1 सांयोगिक अनुबंध के लक्षण (Elements of Contingent Contract) :

अधिनियम द्वारा दी गई 'सांयोगिक अनुबंध' की परिभाषा के आधार पर इसके निम्नलिखित लक्षण या तत्त्व परिलक्षित होते हैं-

(i) किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने पर ही सांयोगिक अनुबन्ध का निष्पादन पूर्ण होता है। इसे पहले अनुबन्ध का निष्पादन-पूर्ण नहीं समझा जाता। इस प्रकार सांयोगिक अनुबंध एक पूर्ण अनुबंध से बिल्कुल भिन्न होता है। उदाहरण के लिए 'A' अपनी साइकिल 'B' को 200 रुपया में बेचने का अनुबन्ध करता है, तो यह अनुबन्ध पूर्ण शर्तरहित होगा। दूसरी ओर सांयोगिक अनुबन्ध समपार्श्विक कोई घटना क्षति होने पर ही क्षतिपूर्ति का दायित्व उत्पन्न होता है, पहले नहीं।

(ii) सांयोगिक अनुबन्ध के अन्तर्गत घटना घटित होना अनिश्चित एवं अनुबंध के समपार्श्विक होना चाहिए। उदाहरण के लिए सामुद्रिक बीमे के अन्तर्गत बीमा कम्पनी द्वारा जैहाज के डूब जाने अथवा उसे क्षति पहुँचने पर ही निश्चित धनराशि देने का वचन दिया जाता है। जहाज का डूबना या क्षतिग्रस्त होना अनिश्चित घटना है, जो अनुबन्ध के बिल्कुल समपार्श्विक है।

(iii) सांयोगिक अनुबन्ध से सम्बन्धित घटना किसी एक अथवा दोनों पक्षकारों के वश में हो सकती है अथवा दोनों पक्षकारों की शक्ति से बाहर हो सकती है। घटना दोनों पक्षकारों की शक्ति से बाहर होने की स्थिति सम्बन्धित अधिकारी द्वारा बिल पास कर दिया जायेगा।

(iv) अनुबन्ध से सम्बन्धित घटना वचनदाता के कार्य पर निर्भर हो सकती है, वचनदाता की इच्छा पर नहीं। उदाहरण के लिए, यदि 'A' 'B' से यह अनुबन्ध करें कि यदि उसकी इच्छा हुई तो वह 'B' को 500 रुपया देगा, तो उसे सांयोगिक अनुबन्ध नहीं कहेंगे, क्योंकि यह अनुबन्ध वचनदाता की इच्छा पर निर्भर करता है।

2.11.2 सांयोगिक अनुबंध की प्रवर्त्तनीयता सम्बन्धी नियम (Rules as to the Enforcement of Contingent Contract) :

सांयोगिक अनुबन्धों के प्रवर्त्तनीय होने के संबंधित नियमों का वर्णन अधिनियम की धारा 32 से 36 के अन्तर्गत किया गया है जो निम्नलिखित हैं-

(i) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 32 के अनुसार सांयोगिक अनुबन्ध उस समय तक प्रवर्तित नहीं कराये जा सकते जब तक कि उस घटना का घटित होना संभव न हो जाये। यदि घटना का घटित होना असंभव हो जाये, तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा। उदाहरण के लिए- राम, मोहन से इस शर्त्त पर उसके घोड़ा क्रय करने का अनुबंध करता है कि राम सोहन के बाद जीवित रहेगा। इस प्रकार के अनुबंध को तब तक प्रवर्त्तनीय कराया जा सकता जबतक कि सोहन की मृत्यु राम के जीवन काल में नहीं हो जाती।

(ii) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 33 के अनुसार- "किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने अथवा न करने का सांयोगिक अनुबंध उस समय प्रवर्तित कराया जा सकता है, जबकि घटना का

घटित होना असंभव हो जाये और पहले नहीं।" जैसे- 'A', 'B' को 1000 रुपया इस शर्त पर देने का अनुबंध करता है, कि यदि एक निश्चित जहाज लौटकर न आवें। अब यदि जहाज मार्ग में डूब जाता है तो यह अनुबंध प्रवर्तनीय कराया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि जहाज वापस आ जाता है, तो यह अनुबंध व्यर्थ होगा।

(iii) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 34 इस बात पर प्रकाश डालती है कि- "यदि भावी घटना, जिस पर कोई अनुबन्ध सांयोगिक हो, किसी व्यक्ति के अनिर्दिष्ट समय में कार्य करे, जिससे उस निश्चित समय के अन्दर उसका कार्य करना असंभव हो जाये।" उदाहरण के लिए- 'A', 'B' को एक निश्चित धनराशि देने का अनुबन्ध इस शर्त्त पर करता है कि 'B', 'C' से शादी कर लें किन्तु 'C', 'D' से शादी कर लेती है। अब 'A' एवं 'B' की शादी होना असंभव है, अतः अनुबन्ध को प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है। यद्यपि यह संभव हो सकता है कि 'D' की मृत्यु हो जाये और फिर 'B' एवं 'C' आपस में शादी कर लें।

(iv) धारा 35 के अनुसार, "सांयोगिक अनुबन्ध के समाप्त होने पर घटना घटित न हुई हो अथवा निश्चित समय से पूर्व यह असंभव हो गयी हों। उदाहरण के लिए- 'A', 'B' को इस शर्त्त पर कुछ धन देने का वचन देता है कि एक विशेष जहाज एक वर्ष के भीतर वापस आ जाये। अब यदि वह विशेष जहाज एक वर्ष के भीतर वापस आ जाता है, यह अनुबन्ध प्रवर्तनीय होगा। इसके विपरीत यदि उक्त जहाज उक्त समय के भीतर वापस नहीं आता, अपितु डूब जाता है, तो यह सांयोगिक अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

(v) अधिनियम की धारा 36 के अनुसार, यदि कोई सांयोगिक अनुबन्ध असंभव घटना के घटित होने पर निर्भर हो, तो ऐसे अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं, चाहे घटना की असंभावना की जानकारी पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय रही हो अथवा नहीं।

उदाहरण के लिए 'A', 'B' को इस शर्त्त पर 10,000 रुपया देने का वचन देता है कि 'B' उसकी पुत्री 'C' से विवाह कर लें। मान लिया कि ठहराव के समय 'C' की मृत्यु हो चुकी है। अतः 'B' का 'C' से शादी करना असंभव है और इस प्रकार का अनुबन्ध व्यर्थ समझा जायेगा।

बाजी का अनुबन्ध एवं सांयोगिक अनुबन्ध दोनों ही अनुबन्ध की पूर्णता किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर, निर्भर होती है। फिर भी यदि ध्यान से देखा जाये तो दोनों में पर्याप्त अन्तर है, जो निम्नलिखित हैं-

2.12 सांयोगिक अनुबन्ध एवं बाजी के ठहराव में अन्तर (Differences between Contingent Contract and Wagering Agreement)

(i) सभी सांयोगिक अनुबन्ध को बाजी का ठहराव नहीं कहा जा सकता, जबकि बाजी के सभी ठहराव सांयोगिक अनुबन्ध होते हैं।

(ii) सांयोगिक अनुबन्ध समपार्श्विक घटना से सम्बन्धित है, किन्तु बाजी के अनुबन्ध में ठहराव का निर्णय भावी घटना पर आधारित है।

(iii) सांयोगिक अनुबन्ध में पक्षकारों का हित घटना के घटित होने अथवा नहीं होने में होता है, जबकि बाजी के ठहराव में पक्षकारों का हित राशि जीतने अथवा हारने से अधिक होता है।

(iv) सांयोगिक अनुबन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि दोनों पक्षकारों में से एक की जीत ही एवं दूसरे की हार, जबकि बाजी के ठहराव में ऐसा होना आवश्यक है।

(v) सांयोगिक अनुबन्ध मान्य अथवा वैध समझा जाता है, किन्तु बाजी के ठहराव जुए के समान होते हैं और उन्हें अवैध समझा जाता है।

(vi) सांयोगिक अनुबन्ध प्रवर्त्तनीय होते हैं, क्योंकि इन्हें वैधता की मान्यता है, किन्तु बाजी के ठहराव प्रवर्तनीय नहीं होते, क्योंकि व्यर्थ होते हैं।

(vii) सांयोगिक अनुबन्ध का निष्पादन किसी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है, जबकि बाजी के ठहराव का निष्पादन नहीं किया जाता, बल्कि पक्षकारों का उद्देश्य मूल्य के अन्तर को प्राप्त करने का रहता है।

(viii) सांयोगिक अनुबन्ध में केवल एक ही पक्षकार द्वारा वचन दिया जाता है, जबकि बाजी के ठहराव में दोनों पक्षकारों द्वारा वचन दिया जाता है।

2.5 सारांश (Summing up)

एक वैध अनुबन्ध के मुख्य लक्षणों में से पक्षों का होना, वैधानिक दायित्व का होना, स्वतंत्र सहमति का होना, अनुबन्ध करने की योग्यता का होना न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य का होना है।

2.6 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्वों का वर्णन कीजिये।
2. प्रतिफल क्या है ? इसकी आवश्यक विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. वैध अनुबन्ध तथा सांयोगिक अनुबन्ध में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. सहमति क्या है ? कब सहमति स्वतंत्र नहीं मानी जाती है ?
5. कपट एवं मिथ्यावर्णन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

2.7 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 3 पाठ-6

अनुबन्धों का निष्पादन, समाप्ति एवं अनुबन्ध-भंग

पाठ संरचना (Lesson Structure)

3.0 उद्देश्य (Objective)

3.1 परिचय (Introduction)

3.2 अनुबन्ध का निष्पादन

3.3 निष्पादन के सम्बन्ध में पक्षकारों का उत्तरदायित्व

3.4 निष्पादन की माँग का अधिकार

3.5 निष्पादन किसके द्वारा होना चाहिए

3.6 निष्पादन का समय और स्थान

3.7 अनुबन्ध के तत्त्व के रूप में समय

3.8 पारस्परिक वचनों का निष्पादन

3.8.1 पारस्परिक एवं स्वतंत्र वचन

3.8.2 सशर्त्त एवं आश्रित वचन

3.8.3 पारस्परिक एवं समवर्त्ती वचन

3.9 भुगतान का नियोजन

3.9.1 ऋणी द्वारा नियोजन

3.9.2 ऋणदाता द्वारा नियोजन

3.9.3 क्रमानुसार ऋण का नियोजन

3.9.4 ब्याज के भुगतान को प्राथमिकता

3.10 अनुबन्धों की समाप्ति

3.11 सारांश (Summuing up)

3.12 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

3.13 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

3.0 उद्देश्य (Objective)

एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्वों का विस्तार से अध्ययन करने के बाद अब इस पाठ के अन्तर्गत अनुबन्धों के निष्पादन, समाप्ति एवं अनुबन्ध-भंग से सम्बन्धित सन्नियमों का अध्ययन किया जायेगा।

1.1 परिचय (Introduction)

अनुबन्ध के निष्पादन से तात्पर्य अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचनों का निष्पादन करने से है। किसी एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध सम्बन्धी दायित्वों का निष्पादन नहीं करने से अनुबन्ध या तो समाप्त हो जाता है या अनुबन्ध भंग हो जाता है।

1.2 अनुबन्ध का निष्पादन

अनुबन्ध का निष्पादन से तात्पर्य अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अपने-अपने वचनों को पूरा करने से होता है। अनुबन्ध के अन्तर्गत पक्षकारों के उत्तरदायित्व उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जब प्रत्येक पक्षकार उस कार्य को पूरा कर देता है जिसको करने का दायित्व उसने अनुबन्ध के अधीन स्वीकार किया है, तो इसे अनुबन्ध का निष्पादन कहते हैं।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत 'अनुबन्धों के निष्पादन' से सम्बन्धित निम्नलिखित नियम महत्वपूर्ण है-

(1)	निष्पादन के सम्बन्ध में पक्षकारों के उत्तरदायित्व के निष्पादन की माँग कौन कर सकता है;	(धारा 37 से 38)
(2)	निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए;	(धारा 40 से 45)
(3)	निष्पादन का समय और स्थान;	(धारा 46 से 50)
(4)	पारस्परिक वचनों का निष्पादन;	(धारा 51 से 58)
(5)	भुगतान का नियोजन।	(धारा 59 से 61)

3.3 निष्पादन के सम्बन्ध में पक्षकारों का उत्तरदायित्व

अनुबन्ध के प्रत्येक पक्षकारों को अपना वचन पूरा करना चाहिए। किन्तु यदि किसी अधिनियम द्वारा उन्हें वचनों के निष्पादन से मुक्ति मिल गई हो, तो फिर निष्पादन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। किन्तु यदि वचन के निष्पादन से पूर्व किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो वचन का निष्पादन उसके प्रतिनिधियों को करना पड़ता है। लेकिन पक्षकारों के व्यक्तिगत कला और गुण पर आधारित होने वाले अनुबन्धों में यह नियम लागू नहीं होता है। जैसे 'A', 'B' को को एक निश्चित तिथि के अन्दर एक निश्चित चित्र बनाकर देने का वचन देता है, किन्तु उस निश्चित तिथि से पूर्व ही 'A' की मृत्यु हो जाती है। अतः यहाँ पर 'A' के प्रतिनिधि 'A' के वचन को पूरा करने के लिए बाध्य नहीं किये जा सकते हैं।

अनुबन्धों का निष्पादन दो प्रकार से किया जाता है-

(क) वास्तविक निष्पादन - जब अनुबन्ध के सभी पक्षकार अपने-अपने वचन अर्थात् उत्तरदायित्वों को पूरा कर देते हैं, तो वास्तविक निष्पादन कहते हैं।

(ख) निष्पादन के लिए प्रस्ताव - कभी-कभी अनुबन्ध के पक्षकार अपने वचन का निष्पादन नहीं करते हैं बल्कि वचन

को पूरा करने के लिए प्रस्ताव करते हैं। किन्तु यह तब तक निष्पादन नहीं बन सकता है जब तक वचनग्रहीता इसे स्वीकार न कर लें, और अगर वचनग्रहीता उसे अस्वीकार कर देता है तो वचनदाता अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्त हो जाता है। वचनदाता निम्नलिखित परिस्थितियों में निष्पादन से मुक्त हो जाता है-

(i) यदि ठहराव व्यर्थ हैं, तो वचनदाता अपने वचन के निष्पादन से मुक्ति पा लेता है।

(ii) व्यर्थनीय अनुबन्ध की स्थिति में यदि पीड़ित पक्षकार अपने अनुबन्ध का परित्याग कर देता है तो वचनदाता निष्पादन से मुक्त हो जायेगा।

(iii) यदि वचनदाता अपने वचन के निष्पादन से इन्कार कर देता है तो वचनग्रहीता अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।

(iv) पारस्परिक वचनों की अवस्था में वचनग्रहीता अपने वचन को पूरा करने के लिए तैयार न हो, तो वचनदाता अपने आप निष्पादन से मुक्ति पा लेता है।

(v) यदि वचनग्रहीता तीसरे पक्षकार से वचन का निष्पादन स्वीकार कर लेता है।

(vi) समय की प्रमुखता वाले अनुबन्ध में समय पर वचन का निष्पादन नहीं होते से दूसरा पक्षकार अपने वचन से मुक्त हो जाता है।

3.4 निष्पादन की माँग का अधिकार

साधारणतः अनुबन्ध के पक्षकारों को ही यह अधिकार होता है कि यह अनुवन्ध के निष्पादन की माँग करें, क्योंकि अनुबन्ध उन्हीं के मध्य होता है। किन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ है, जिनमें तीसरा पक्षकार भी अनुबन्ध के निष्पादन की माँग कर सकता है जो निम्नलिखित हैं-

(i) पारिवारिक समझौते की स्थिति में उन सदस्यों द्वारा भी अनुबन्ध के निष्पादन की माँग हो सकती है, जो अनुबन्ध के पक्षकार नहीं हैं।

(ii) ट्रस्ट का लाभकारी (Beneficiary) ट्रस्ट अनुबन्ध के पक्षकार न होते हुए भी निष्पादन की माँग कर सकता है।

(iii) यदि तीसरे पक्षकार को अनुबन्ध के किसी पक्षकार ने अपने आचरण या शब्दों द्वारा यह विश्वास प्रदान करता है कि उसे अनुबन्ध के निष्पादन का अधिकार है, तब उसे निष्पादन की माँग का अधिकार मिल जाता है।

3.5 निष्पादन किसके द्वारा होना चाहिए ?

अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार वचनदाता ही अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य होता है। यही कारण है कि वचनदाता द्वारा अनुबन्ध पूरा करने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किये जाने पर भी निष्पादन के समान ही माना जाता है। इसके साथ-साथ जिन अनुबन्धों को पूरा करने के लिए व्यक्तिगत कुशलता की आवश्यकता नहीं हो, उनका निष्पादन वचनदाताओं के अभिकर्त्ताओं द्वारा भी किया जा सकता है।

कभी-कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर कोई वचन देते हैं। ऐसी स्थिति में उन सभी वचन देनेवाले पक्षकारों को संयुक्त वचनदाता एवं वचनों के पालन के लिए प्रत्येक वचनदाता संयुक्त रूप से उत्तरदायी होता है। उन वचनदाताओं में से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर मृतक वचनदाता का उत्तराधिकारी अन्य वचनदाताओं के साथ मिलकर वचन को पूरा करने

के लिए उत्तरदायी होता है। संयुक्त वचन की अवस्था में, यदि विपरीत अर्थ का अनुबंध न हो, तो प्रतयेक वचनदाता का उत्तरदायित्व व्यक्तिगत भी होता है, अर्थात् संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को भी पूरे वचन का पालन करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, और ऐसी स्थिति में पूरे वचन का पालन करनेवाला बचनदाता अपने सह-वचनदाताओं से उनके अंश प्राप्त करने का अधिकार होगा। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में यदि A, D को पूरा (9,000 रुपया) चुकाता ह तो वह A एवं B से अलग-अलग तीन-तीन हजार रुपये पाने का अधिकारी होगा।

अंग्रेजी राजनियम के अनुसार संयुक्त वचन की स्थिति में निष्पादन का दायित्व केवल जीवित वचनदाताओं का होता है, मृतक वचनदाताओं के वैधानिक प्रतिनिधि उत्तरदायी नहीं होते हैं।

भारतीय सन्नियम में संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को निष्पादन के दायित्व से मुक्त कर देने से अन्य संयुक्त वचनदाता भी मुक्त नहीं हो जायेंगे, बल्कि मुक्त वचनदाता को अपने सहवचनदाताओं में से किसी एक को मुक्त करने से सभी वचनदाता मुक्त हो जाते हैं।

3.6 निष्पादन का समय और स्थान

वचन के निष्पादन का समय और स्थान निर्धारित करना वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इससे सम्बन्धित सामान्य नियम यह है कि पक्षकारों को अनुबन्ध को पूर्व निर्धारित स्थान एवं समय पर निष्पादन करना चाहिएँ। कभी-कभी अनुबन्ध में इस बात का उल्लेख नहीं होता। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं-

(i) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 46 के अनुसार, जहाँ वचनदाता अपने नियम का निष्पादन बिना वचनग्रहीता के आवेदन पर ही करने का वचन देता हे और अनुबन्ध में कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया है, वहाँ वचनदाता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उचित समय में वचन का निष्पादन करें। उचित समय का निर्धारण प्रत्येक अनुबन्ध की परिस्थिति पर निर्भर करता है। जैसे- जुलाई महीने में भारत बुक डीपो, पटना साहित्य भवन, आगरा को 25 पुस्तक क्रय करने का आदेश देता है। आदेश में समय का उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसी अवस्था में साहित्य भवन आगरा को चाहिए कि वह 4 या 5 दिन में ही पुस्तक भेज दें। यदि आदेश मई में भेजा गया होता तो 10–15 दिन का समय भी उचित माना जा सकता है।

(ii) धारा 47 के अनुसार, जब वचनदाता को अपने वचन का निष्पादन, बिना वचनग्रहीता के आवेदन पर, किसी नियत दिन या तिथि को करना हो, तो वचनदाता को चाहिए कि वह अपने वचन का निष्पादन नियत दिन व स्थान पर कारोबार के कार्यकाल में करें।

(iii) वचन का निष्पादन नियत दिन पर किये जाने की स्थिति में और वचनग्रहीता के आवेदन के बिना वचनदाता द्वारा उसके निष्पादन का निर्वाह न किये जाने की स्थिति में, वचनग्रहीता को उचित स्थान एवं कारोबार के घण्टों में निष्पादन की माँग करनी चाहिए। उचित समय और स्थान का निर्धारण मामले की स्थितियाँ पर निर्भर करता है। (धारा 48)

(iv) यदि वचनग्रहीता द्वारा वचन के निष्पादन के लिए कोई स्थान निर्धारित न किया गया हो तो वचनदाता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उचित समय नियत करने के लिए वचनग्रहीता से आवेदन करें एवं उसी स्थान पर वचन निष्पादन करें।

जैसे- रवि रमेश को एक निर्धारित दिन कपड़े की 50 गाँठ देने का वचन देता है। यहाँ पर रवि

का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस वचन के निष्पादन के लिए रमेश से उचित स्थान की माँग करें और वहीं पर सुपुर्दगी दें।

(v) उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य परिस्थितियों में वचन का निष्पादन किसी भी ऐसी रीति अथवा समय पर किया जा सकता है जिसका कि वचनग्रहीता आदेश अथवा अनुमोदन करें। (धारा 50)

3.7 अनुबन्ध के तत्त्व के रूप में समय

समय अनुबन्ध का आवश्यक तत्त्व तभी बन सकता है जब वह समझौता का एक आवश्यक अंग हो। अनुबन्ध के निष्पादन के लिए सिर्फ निर्धारित कर देने से ही समय को अनुबन्ध का आवश्यक तत्त्व नहीं माना जा सकता। यह अनुबन्ध की प्रकृति एवं निष्पादन के लिए नियम समय को अनुबन्ध का आवश्यक तत्त्व मानने के सम्बन्ध में पक्षकारों के अभिप्राय पर निर्भर करेगा। पक्षकारों से अभिप्राय का वास्तविक निर्णय करने का अधिकार केवल न्यायालय को ही है।

समय को अनुबन्ध का तत्त्व मानने का अर्थ होता है- अनुबन्ध की वैधता को निष्पादन के निर्धारित समय पर आधारित करना। जिन परिस्थितियों में समय को अनुबन्ध का आवश्यक तत्त्व माना जाता है, उसमें वचनदाता का निर्धारित समय से भीतर अपने दायित्वों का पालन करने में सफल होने पर, अनुबन्ध वचनग्राही की इच्छा पर व्यर्थ हो जाता है। किन्तु अन्य परिस्थितियों में वचनग्राही वचनदाता से उसकी असफलता के कारण होने वाली अपनी हानियों की क्षतिपूर्ति का सिर्फ दावा कर सकता है। (धारा 55)

3.8 पारस्परिक वचनों का निष्पादन

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(F) के अनुसार ''वचन जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल अथवा आंशिक प्रतिफल होते हैं, 'पारस्परिक वचन' कहलाते हैं।'' ऐसे वचनों के अन्तर्गत अधिकार और उत्तरदायित्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए A, B को अपनी घड़ी देने का वचन देता है एवं B बदले में 500 रुपये देने का वचन देता है। ऐसे अनुबन्ध में प्रत्येक पक्षकार दूसरे पक्षकार द्वारा दिये गये वचन के बदले वचन देता है। पक्षकारों द्वारा दिये गये इस प्रकार के वचन 'पारस्परिक वचन' कहलाते हैं।

'पारस्परिक वचन' के सम्बन्ध में वर्णन भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धाराएँ 51 से 65 तक में किया गया है। इसके अनुसार, कोई भी संविदा एकपक्षीय या द्विपक्षीय हो सकती है।

(क) जब पक्षकार अपने वचन को पूरा कर चुकता है, तो दूसरे पक्षकार को अपने वचन का निष्पादन करना शेष रह जाता है। ऐसे अनुबन्ध को एक पक्षीय अनुबन्ध कहते हैं।

(ख) किन्तु वह अनुबन्ध जिसमें दोनों पक्षकारों का अपने-अपने वचनों का निष्पादन करना शेष रहता है, तो उसे द्विपक्षीय अनुबन्ध कहते हैं। इस स्थिति में यह समस्या हो जाती है, कि पक्षकार अपने-अपने वचन का निष्पादन किस क्रम से करें। इसका निराकरण अनुबन्ध अधिनियम की धारा 51 से 58 में किया गया है।

3.8.1 पारस्परिक एवं स्वतंत्र वचन :

जब अनुबन्ध के दोनों ही पक्षकारों को अपने-अपने वचनों का निष्पादन स्वतंत्र रूप से करना है एवं एक भी पक्षकार को दूसरे पक्षकार के द्वारा उसके वचन के निष्पादित होने तथा उसकी ओर से निष्पादन का प्रस्ताव करने की प्रतीक्षा नहीं करनी

है, तो वचन पारस्परिक एवं स्वतन्त्र कहलाते हैं।

3.8.2 सशर्त्त एवं आश्रित वचन :

यदि एक पक्ष द्वारा अपने वचन का निष्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि दूसरा अपने वचन का निष्पादन करेगा, तो ऐसे वचन को सशर्त्त एवं आश्रित वचन कहते हैं।

3.8.3 पारस्परिक एवं समवर्त्ती वचन :

यदि वचनों का निष्पादन एक ही समय में होना है, तो ऐसे वचनों को पारस्परिक एवं समवर्ती वचन कहते हैं। माल की नगद बिक्री के सौदे इसी प्रकार के वचन कहलाते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के पारस्परिक वचनों के निष्पादन के क्रम के सम्बन्ध में अलग-अलग नियम है, जो निम्नलिखित है-

(i) जब पारस्परिक वचन को पक्षकारों द्वारा एक साथ पूरा किया जाता है, तो वचनदाता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने वचन का निष्पादन करें, जब तक वचनग्रहीता भी अपने वचन के निष्पादन के लिए इच्छुक एवं तत्पर न हो। (धारा 51)

जैसे-रवि अपना माल रमेश को नगद बेचने का समझौता करता है। यहाँ रवि तब तक माल की सुपुर्दगी नहीं दे सकता है जब तक रमेश कीमत चुकाने के लिए तैयार एवं तत्पर नहीं हों। इसी प्रकार रमेश को तब तक वस्तुओं की कीमत चुकाने की आवश्यकता नहीं है, जबतक रवि वस्तुओं की सुपुर्दगी भुगतान मिलने पर देने की इच्छुक एवं तत्पर नहीं हो।

(ii) जहाँ पर वचनों का निष्पादन करने के लिए स्पष्ट रूप से क्रम निर्धारित कर दिये जाते हैं, वहाँ पर उनका निष्पादन भी उसी क्रम में होना चाहिए। जब क्रम निश्चित नहीं होता, तो निष्पादन करने से रोकता है, तो रोके हुए पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है, किन्तु निष्पादन न करने से रोके हुए पक्षकार की हानि होती है तो वह उस हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है। (धारा 52)

(iii) यदि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को वचन का निष्पादन करने से रोकता है, तो रोके हुए पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है, किन्तु निष्पादन न करने से रोके हुए पक्षकार को हानि होती है तो वह उस हानि की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है। (धारा 53)

(iv) यदि पारस्परिक वचनों में एक पक्ष के वचनों का पालन दूसरे पक्ष के वचन के पालन पर निर्भर हो तो दूसरे के वचन का पालन होना चाहिए। (धारा 54)

उदाहरण के लिए अग्रिम भुगतान के विरूद्ध माल बेचने के समझौता की दशा में विक्रेता जब तक माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है, जब तक वह अग्रिम भुगतान पा नहीं जाता है।

(v) ऐसा कार्य करने का अनुबन्ध जो अनुबन्ध करने के पश्चात् असम्भव हो गया हो, अथवा किसी घटना के घटित होने पर अवैधानिक हो गया हो, उस समय व्यर्थ हो जाता है, जबकि कार्य असम्भव अथवा अवैधानिक हो गया हो। (धारा 56)

(vi) कभी-कभी तो पक्षकार कुछ वैध कार्य और बाद में अवैध कार्य करने के लिए पारस्परिक वचन देते हैं। ऐसे स्थिति में पहले वैध वचनों का भाग अनुबन्ध समझा जाता है एवं दूसरे अवैध वचनों का भाग व्यर्थ समझौता माना जाता है। (धारा 57)

(vii) वैकल्पिक वचन की दशा में, जिसकी एक शाखा वैध है एवं दूसरी शाखा अवैध है, केवल वैध शाखा को ही प्रवर्तित कराया जाता है। (धारा 58)

3.9 भुगतान का नियोजन (Appropriation of Payment)

भुगतान के नियोजन का अर्थ ऋणों द्वारा किए जानेवाले भुगतान को किसी विशेष ऋण के लिए समायोजित करने से होता है। कभी-कभी एक पक्षकार द्वारा जो भी भुगतान किये जाते हैं, वे सभी ऋणों से निवृति के लिए पर्याप्त नहीं होते। ऐसी स्थिति में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 55 से 61 के अन्तर्गत व्यवस्थाएँ की गई है जो निम्नलिखित हैं-

3.9.1 ऋणी द्वारा नियोजन (Appropriation by creditors) :

जब किसी ऋणी पर एक ही व्यक्ति के कई ऋणों का भुगतान शेष हो और वह ऋणी स्पष्ट निर्देश के साथ अथवा ऐसी परिस्थिति में भुगतान करता हो, जिसमें यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह किसी विशेष ऋण के भुगतान के लिए है, तो भुगतान स्वीकार किये जाने पर उसका उसी अनुसार नियोजन होना आवश्यक है।

किन्तु इस नियम के सम्बन्ध में इस बात का निर्णय करने के अधिकार ऋणी को है कि वह किस ऋण का भुगतान पहले करना चाहता है। ऋणदाता द्वारा ऋणी के इच्छानुसार भुगतान का नियोजन न करने की स्थिति में ऋणी द्वारा भेजे गए धन को वापस भेज देना चाहिए। किन्तु धन को स्वीकार करने पर ऋणी के इच्छानुसार ही उसका नियोजन किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए A, B का कई ऋणों के प्रति देनदार है जिसमें ऋण 5,000 रुपये का भी है, जो प्रतिज्ञा पत्र के अनुसार 1 जून 1990 को देय है। A द्वारा B को इस धनराशि को अन्य कोई ऋण नहीं देता है। 1 जून 1991 को इस ऋण का भुगतान करने पर इसका प्रयोग उक्त प्रतिज्ञा-पत्र के लिए किया जाना चाहिए। (Vasudeo Vs. Namdev, 1990) का विवाद।

3.9.2 ऋणदाता द्वारा नियोजन (Appropriation by Debtor) :

कभी-कभी ऋणी न तो कोई निर्देश देता है और न कोई इस प्रकार की परिस्थितियाँ ही हैं जिससे अनुमान न लगाया जा सके कि ऋण द्वारा दिया गया भुगतान किस ऋण के सम्बन्ध में है। ऐसी स्थिति में ऋणदाता अपने इच्छानुसार उस भुगतान का नियोजन किसी भी वैध ऋण के सम्बन्ध में कर सकता है।

3.9.3 क्रमानुसार ऋण का नियोजन (Payments applied in discharge of debts in order of time) :

पक्षकारों द्वारा भुगतान का नियोजन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करने की स्थिति में भुगतान का प्रयोग समय क्रमानुसार किया जाता है, चाहे वह प्रचलित सन्नियम के अन्तर्गत समय वर्णित हो यह नहीं। धारा 61 के अनुसार यदि ऋण समकालीन है तो भुगतान का प्रयोग प्रत्येक ऋण के आनुपतिक भुगतान के रूप में माना जायेगा।

3.9.4 ब्याज के भुगतान को प्राथमिकता (Priority of the payment of Interest) :

यदि किसी ऋण पर ऋण के साथ-सथ ब्याज भी देय है एवं देनदार द्वारा कोई भुगतान नहीं किया जाता है, जिससे देनदार कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देता है, तो लेनदार भुगतान को पहले ब्याज के लिए तथा शेष को मूल ऋण के भुगतान में मान सकता है।

3.10 अनुबन्धों की समाप्ति (Discharge of Contracts)

किसी भी अनुबन्ध में दो पक्षकार होते हैं- वचनदाता और वचनग्रहीता। ये दोनों ही पक्षकार अनुबन्ध से सम्बन्धित अपने दायित्वों का पूर्ण करने के लिए बाध्य होते हैं। जब पक्षकारों के दायित्वों की समाप्ति हो जाती है तो कहा जाता है कि अनुबन्ध समाप्त हो गया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अनुबन्ध के द्वारा पक्षकारकों के बीच उत्पन्न उत्तरदायित्वों की समाप्ति ही अनुबन्धों की समाप्ति है। किन्तु अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित तरीकों से भी अनुबन्ध को समाप्त किया जा सकता है।

(1)	निष्पादन द्वारा	(धारायें 37–61)
(2)	पारस्परिक सहमति द्वारा	(धारायें 62–63)
(3)	निष्पादन की असम्भवता से	(धारायें 37)
(4)	समयावधि की समाप्ति से	(समय सीमा नियम के प्रभाव से)
(5)	सन्नियम के लागू होने से	(धारा 37 के प्रभाव से)
(6)	अनुबन्ध के खण्डन द्वारा	(धारा 35 के प्रभाव से)
(7)	निवेदन द्वारा	(धारा 38)

(1) निष्पादन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of Contract by Performance) - प्रत्येक पक्ष ने अनुबन्ध के अधीन अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का पालन कर दिया हो तो कहा जायेगा कि अनुबन्ध की समाप्ति निष्पादन द्वारा हुई। अनुबन्ध की समाप्ति का सरल एवं सामान्य तरीका है- निष्पादन अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार होना चाहिए। वह शर्त्तरहित होना चाहिए। निष्पादन के सम्बन्ध में पूर्व-निश्चित समय और स्थान शर्तों का पालन भी आवश्यक होता है।

(2) पारस्परिक सहमति अथवा समझौते द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge by mutual consent or Agreement) - अनुबन्ध के पक्षकार धारा 62 के अनुसार पारस्परिक समझौते द्वारा अनुबन्ध का नवीकरण या उनमें परिवर्तन इत्यादि कर देते हैं, तो सरल अनुवन्ध के अनुबन्ध के अन्तर्गत उनके दायित्वों की समाप्ति हो जाती है। दायित्व से मुक्ति निम्नलिखित तरीकों से हो सकती है-

(i) नवीकरण द्वारा (By Alteration) - नवीकरण का अर्थ है - पुराने अनुबन्ध के पक्षकार का अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने दायित्वों से मुक्त होना और उसके स्थान पर नये पक्षकार का दायित्व स्वीकार करना। मोहन 500 रुपये के लिए सोहन का ऋणी है। एक मूल अनुबन्ध द्वारा मोहन के स्थान पर महेश इस ऋण का भुगतान करना स्वीकार करता है इसे अनुबन्ध का नवीकरण कहेंगे।

(ii) परिवर्तन द्वारा (By Alteration) - यदि पुराने अनुबन्ध के स्थान पर ऐसे अनुबन्ध की प्रतिस्थापना होती है, जिसकी कुछ शर्तें परिवर्तित होती है, तो इस परिवर्तन द्वारा पुराने अनुबन्ध की समाप्ति माना जायेगा।

(iii) त्याग अथवा छुटकारा द्वारा (By Rescession of waiver) - किसी अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक समझौते द्वारा उस अनुबन्ध को निरस्त कर सकते हैं या एक पक्षकार दूसरे को उसके दायित्वों से मुक्त कर सकता है अथवा अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने अधिकारों का त्याग कर सकता है। इससे मूल अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा।

(iv) नवीन ठहराव एवं संतुष्टि द्वारा (Accord and Satisfaction) - यदि कोई पक्षकार मूल अनुबन्ध के आधारित प्रतिफल के स्थान पर दूसरे पर उसमें एक प्रतिबन्ध स्वीकार करके दूसरे पक्षकार को दायित्व से मुक्त कर देता है, तो यह स्थिति नवीन ठहराव या सन्तुष्टि द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति कर देती है।

(3) निष्पादन असम्भव हो जाने से अनुबन्ध का अन्त (Discharge by impossibility of performance) - कभी-कभी किसी अनुबन्ध के अधीन वचनों का निष्पादन किसी ऐसी घटना के कारण वैधानिक या असम्भव हो जाता है। यह तो हम जानते हैं कि असम्भव कार्य सम्बन्धी अनुबन्ध व्यर्थ होता है। किन्तु कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो अनुबन्ध करते समय असम्भव नहीं थे, परन्तु निम्नलिखित में से किसी घटना में असम्भव हो जाते हैं-

(i) सन्नियम में परिवर्तन से उस कार्य विशेष का अवैधानिक हो जाना।

(ii) अनुबन्ध की विषय-वस्तु, जिसके आधार पर अनुबन्ध किया गया था, उसका नष्ट हो जाना।

(iii) व्यक्तिगत सेवाओं के अनुबन्धों में वचनदाताओं की मृत्यु या कार्यक्षमता का नष्ट हो जाना।

(iv) किसी ऐसी घटना का न होना जिस पर अनुबन्ध का निष्पादन आश्रित था।

इस प्रकार उपर्युक्त सारी अवस्थाओं में अनुबन्ध की समाप्ति हो जाती है।

(4) समयावधि की समाप्ति से अनुबन्ध का अन्त (Discharge by Lapse of time) - भारतीय सीमा अधिनियम, उन अवधियों का निर्धारण करता है, जिसमें किसी अनुबन्ध के अधीन पक्षकारों के दायित्व प्रवर्त्तनीय कराये जा सकते है। यदि यह अवधि समाप्त हो जाती है, तो अनुबन्ध का प्रवर्तनीय समय वर्जित हो जाता है, एवं अनुबन्ध का अन्त हो जाता है। भारत में यह समय तीन वर्ष का है। उसके बाद ऋणी अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। किन्तु इंगलैण्ड में यह अवधि छः वर्षों और विशिष्ट अनुबन्धों के लिए बारह वर्षों की है।

(5) राजनियम के लागू होने से अनुबन्ध का अन्त (Discharge by operation of Law) - अनुबन्ध अधिनियम की धारा 37 के अनुसार कतिपय कानूनों की व्यवस्थाओं के लागू होने से कुछ अनुबन्धों के अन्तर्गत पक्षकारों को उनके दायित्वों से मुक्ति मिल जाती है। उदाहरण के लिए 'दिवाला अधिनियम' के अन्तर्गत दिवालिया घोषित किया हुआ व्यक्ति उन समस्त अनुबन्धों के दायित्वों से मुक्ति पा जाता है जो उसने उस समय कर रखे हैं।

(6) खण्डन द्वारा अनुबन्ध का अन्त (Discharge by Breach) - खण्डन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति निम्नलिखित दो प्रकार से हो सकती है-

(i) **वास्तविक खण्डन (Actual Breach) -** जब कोई पक्षकार निर्धारित अवधि या नियम प्रकार से अपने वचन को पूरा करने से असफल रहता है अथवा अपने दायित्व को निभाने से विमुख हो जाता है, तो उसका यह वचन भंग अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन कहलायेगा। जैसे- राम रीतेश को 50 बोरा चावल सुपुर्दगी 15 अप्रैल को देने का अनुबन्ध करता है। निर्धारित तिथि पर यदि वह सुपुर्दगी देने में असमर्थ रहता हैं या वचन

पूरा करने से इनकार कर देता है, तो यह अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन माना जायेगा।

(ii) **रचनात्मक खण्डन (Constructive Breach)** - जब कोई पक्षकार अनुबन्ध निष्पादन की निर्धारित तिथि से पूर्व ही उसे निष्पादन न करने का अपना मन्तव्य प्रकट कर देता है, तो यह रचनात्मक खण्डन कहा जायेगा। यह मन्तव्य स्पष्ट शब्दों में या व्यवहार द्वारा प्रकट किया जा सकता है। जैसे- मोहन अपना मकान तीन साल बाद सोहन को किराये पर देने का अनुबन्ध करता है। यदि वह तीन माह बीतने के पूर्व ही सोहन का किराये पर देने से इन्कार कर देता है या मकान किसी अन्य व्यक्ति को किराये पर दे देता है, तो यह रचनात्मक खण्डन होगा।

3.11 सारांश (Summing up)

अनुबन्ध का निष्पादन उद्देश्य के पूरा होने समय पूरा हो जाने अनुबन्ध के खण्डण द्वारा अथवा पारस्परिक सहमति द्वारा हो जाता है।

3.12 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1 अनुबन्ध समाप्त होने के विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।

2. अनुबन्ध भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार को उपलब्ध आधारों का वर्णन कीजिये।

3.13 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण

2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर

3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 4 गर्भित अथवा अर्द्ध-गर्भित अनुबन्ध

(Implied or Quasi Contracts)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

4.0 उद्देश्य (Objective)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 गर्भित अथवा अर्द्ध-गर्भित अनुबन्ध के प्रकार

4.2.1 धारा 68 के अनुसार

4.2.2 धारा 69 के अनुसार

4.2.3 धारा 71 के अनुसार

4.2.4 धारा 72 के अनुसार

4.3 अनुबन्ध-खण्डन के उपचार

4.4 क्षतिपूर्ति की माप

4.5 क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध

4.6 हानि रक्षाधारी के अधिकार

4.6.1 हानिरक्षक के अधिकारी

4.7 प्रत्याभूति अनुबन्ध

4.7.1 प्रत्याभूति अनुबन्ध के लक्षण

4.8 क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध में अन्तर

4.9 प्रत्याभूति के प्रकार

4.9.1 विशिष्ट प्रत्याभूति

4.9.2 चालू प्रत्याभूति

4.9.3 चालू प्रत्याभूति का खण्डन

4.10 प्रतिभू का दायित्व

4.10.1 प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति

4.10.2 प्रतिभू के अधिकार

4.11 सारांश (Summuing up)

4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

4.13 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

4.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य छात्रों को गर्भित अथवा अर्द्धगर्भित अनुबन्ध के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराना है।

4.1 परिचय (Introduction)

साधारणतया एक वैध अनुबन्ध का निर्माण प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति से ही होता है, किन्तु कुछ ऐसे भी अनुबन्ध होते हैं जो पक्षकारों के मध्य बिना किसी प्रस्ताव या स्वीकृति के ही हो जाते हैं। ये अनुबन्ध भी वैधानिक अनुबन्धों की तरह दायित्व उत्पन्न करते हैं। राजनियम भी इन्हें अनुबन्ध मानता है। इनके निर्माण का आधार समझौता न होकर राजनियम होता है। ऐसे अनुबन्ध को अंग्रेजी राजनियम के अनुसार 'अर्द्धअनुबन्ध' और भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार 'राजनियम द्वारा गर्भित अनुबन्ध कहते हैं।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 के अनुसार, ''गर्भित अनुबन्ध एक ऐसा व्यवहार है, जिसमें यद्यपि पक्षकारों के मध्य किसी प्रकार की संविदा नहीं होती है, किन्तु अधिनियम के अनुसार उनके बीच सामान्य रूप से कुछ अधिकारी एवं दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि गर्भित अनुबन्ध की तरह मान्य एवं राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं।

4.2 गर्भित अथवा अर्द्धगर्भित अनुबन्ध के प्रकार (Kinds of Implied or Quasi Contracts)

गर्भित अनुबन्ध के प्रकारों का वर्णन भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 से 72 के अन्तर्गत की गयी है जो निम्नलिखित है-

4.2.1 धारा 68 के के अनुसार -

''यदि कोई व्यक्ति अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य व्यक्ति को अथवा उस पर आश्रित व्यक्तियों के जीवन स्तर के अनुरूप अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह व्यक्ति अयोग्य व्यक्ति की सम्पत्ति से उन वसतुओं का मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी होता है।''

उदाहरण के लिए- A जो अयस्क है, B से गेहूँ क्रय करता है। तो B, A की सम्पत्ति से गेहूँ का मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है।

किन्तु धारा 68 की निम्नलिखित शर्त भी है-

(i) पूर्ति की गई वस्तुयें अनिवार्य आवश्यकताओं को होनी चाहिए।

(ii) उपहार अथवा दान के रूप में आवश्यकता की वस्तु प्रदान की गयी नहीं होना चाहिए।

(iii) अयोग्य व्यक्ति केवल उचित मूल्य देने को बाध्य है, अनुबन्धित मूल्य नहीं।

(iv) पूर्ति वस्तु के मूल्य प्राप्त करने के उद्देश्य से होना चाहिए।

7.2.2 धारा 69 के अनुसार -

''यदि कोई व्यक्ति अपने हित के लिए कोई ऐसा भुगतान कर देता है, जिसका भुगता करने के लिए अन्य कोई व्यक्ति दायी है, तो वह दूसरें व्यक्ति से भुगतान की हुई रकम प्राप्त करने का अधिकारी है।

उदाहरण के लिए, रवि, रमेश का मकान किराये पर लेता है। रमेश ने पानी कर का भुगतान एक वर्ष से नहीं किया है। अतः कर न अदा करने के कारण पाइप लाइन काटने की नोटिस आ जाती है। रवि बकाया कर का भुगतान कर देता है ताकि पाइप लाइन न काटी जा सके। यहाँ पर रवि, रमेश से इस कर की रकम का भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी है।

(i) भुगतान कर्त्ता का भुगतान में हित निहित होना चाहिए।

(ii) जिसकी ओर से भुगतान किया जाय वह व्यक्ति वैधानिक रूप से भुगतान करने के लिए बाध्य हो।

(iii) भुगतान किसी अन्य व्यक्ति की ओर से ही किया गया हो।

(iv) भुगतान सद्भावना से किया गया है।

(3) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 70 के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति शुल्क लेने की भावना से परन्तु स्वेच्छा से दूसरे व्यक्ति-के लिए ऐसा कार्य करता है तो वैधानिक है अथवा उस व्यक्ति को कोई वस्तु देना है और दूसरा व्यक्ति उससे लाभ उठाता है तो दूसरा व्यक्ति प्रथम व्यक्ति के लिए क्षतिपूर्ति करने अथवा वस्तु लौटाने के लिए बाध्य है।"

उदाहरण के लिए-A मूल से कुछ माल B के घर छोड़ जाता है। B उस माल को निजी माल समझकर उपयोग कर लेता है। B, A को माल का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

किन्तु दूसरी ओर A, B की सम्पत्ति को आग से बचाता है। यदि A ने ऐसा कार्य सेवा भाव से किया है तो A क्षतिपूर्ति का अधिकारी नहीं है।

धारा 70 की निम्नलिखित शर्त्तें हैं-

(i) कार्य करने वाले की भावना पारिश्रमिक पाने की होनी चाहिए।

(ii) दूसरे पक्षकार को ऐसे कार्य से लाभ प्राप्त होना चाहिए।

(iii) कार्य दूसरे पक्षकार की इच्छा के विरूद्ध नहीं होना चाहिए।

(iv) कार्य वैधानिक रूप से किया हुआ होना चाहिए।

4.2.3 अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार -

"जब एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का पड़ा हुआ माल मिल जाता है और वह व्यक्ति उस माल को अपने पास रख लेता है तो उसका उत्तरदायित्व एक निक्षेपागृहीता के समान हो जाता है।" उसके लिए निम्नलिखित कार्य आवश्यक हो जाता है

(i) वस्तु पाने वाले को वस्तु की उचित देख-भाल करनी चाहिए।

(ii) वस्तु के मालिक के पास वस्तु को पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

(iii) पाये माल को अपने माल के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

(iv) मालिक मिल जाने पर उसे माल लौटा देना चाहिए।

किन्तु यदि माल की रखवाली में वह कुछ व्यय करता है तो वह वैधानिक रूप से उसे पाने का अधिकारी है और अगर उसे क्षतिपूर्ति नहीं हो जाती, तब तक वह उस माल को अपने अधिकार में रख सकता है।

4.2.4 अनुबन्ध अधिनियम की धारा 72 के अनुसार -

"उस व्यक्ति को जिसे, भूल से या उत्पीड़न द्वारा किसी वस्तु की सुपुर्दगी प्राप्त हो गयी है अथवा धन का भुगतान किया है, वस्तु को वापस लौटा देना चाहिए अथवा उसका उचित मूल्य देना चाहिए।

उदाहरण के लिए A एवं B संयुक्त रूप से C से 1000 रुपया ऋण प्राप्त करता है। A, C को कुल रकम का भुगतान कर देता है और इस बात को जानते हुए B पुनः 1000 रुपया C को दे देता है। अतः यहाँ C, B को 1000 रुपया लौटाने के लिए बाध्य है।

4.3 अनुबन्ध-खण्डन के उपचार (Remedies for Breach of Contracts)

जब अनुबन्ध का कोई पक्षकार, जो परस्पर सहमति से अथवा किसी अन्य परिस्थिति के कारण दायित्व-मुक्त नहीं हुआ है, अनुबन्ध का निष्पादन करने से मना कर देता है अथवा अपने वचन का समुचित पालन नहीं करता, तो अनुबन्ध भंग हुआ माना जाता है। ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्ष को निम्नलिखित उपचार प्राप्त है-

(1) **अनुबन्ध निरस्त करने का अधिकार (Right to rescind the contract)** - जब कोई पक्षकार अनुबन्ध भंग कर देता है, तब पीड़ित पक्ष अनुबन्ध को समाप्त मान सकता है एवं वह अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने सारे दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

उदाहरण, राम ने सोहन को 5 बोरी चीनी 1 मई को देने का वचन दिया। सोहन ने माल मिलने पर भुगतान का वचन दिया। निश्चित तिथि पर राम 5 बोरी चीनी नहीं दे पाया। ऐसी स्थिति में सोहन अनुबन्ध को समाप्त मान सकता है, एवं इससे वह भुगतान करने के अपने वचन से मुक्त माना जायेगा।

(2) **हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार (Right to claim damages)** - पीड़ित पक्षकार उस राशि के लिए क्षतिपूर्ति का दावा भी कर सकता है, जिसकी हानि अनुबन्ध खण्डन के कारण उठाई है। किन्तु यह हर्जाना उसे हुई हानि के लिए उचित क्षति-पूर्ति स्वरूप ही होगा, अनुबन्ध करने वाले पक्षकार के लिए खण्ड स्वरूप नहीं।

(3) **उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार (Right to Claim for Quantum Meriut)** - जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी प्रार्थना पर कोई वस्तु देता है अथवा उसके लिए कोई काम करता है और यदि उसके लिए पहले से कोई पारिश्रमिक तय नहीं होता, तो उसे न्यायालय की दृष्टि में उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए। उचित पारिश्रमिक की गणना मामले की परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती है।

उदाहरण के लिए A, 20,000 रुपया में B का मकान बनवाने का अनुबन्ध करता है। B मकान का काम पूरा होने से पहले ही A को काम करने से रोक देता है। ऐसी परिस्थितियों में A अपने कार्य के लिए 'उचित पारिश्रमिक' पाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

लेकिन 'उचित पारिश्रमिक सिद्धान्त' निम्नलिखित परिस्थितियों में लागू नहीं होता है-

(i) यदि कोई अनुबन्ध विभाजन योग्य न हो और सम्पूर्ण कार्य के निष्पादन के आधार पर किसी पक्षकार को पारिश्रमिक माँगने का कोई अधिकार नहीं होगा। जैसे- एक चित्रकार द्वारा किसी चित्र बनाने के क्रम में मृत्यु हो जाती है तो उसके उत्तराधिकारी इस अधूरे चित्र के लिए कोई पारिश्रमिक पाने का दावा नहीं कर सकता है।

(ii) यदि कोई अनुबन्ध आंशिक कार्य के भुगतान के लिए स्पष्ट या गर्भित रूप से न किया गया हो तो उचित पारिश्रमिक सिद्धान्त के आधार पर उसे कुछ भी पारिश्रमिक प्राप्त नहीं हो सकता है।

(iii) यदि कोई पक्षकार अनुबन्ध खण्डन के लिए दोषी है तो उसे 'उचित पारिश्रमिक सिद्धान्त' के अनुसार कोई प्रतिफल या क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं मिल सकता है।

लेकिन क्षतिपूर्ति नहीं प्राप्त करने के उपर्युक्त नियम के निम्नलिखित दो अपवाद भी है, जिसमें दोषी पक्षकार भी क्षतिपूर्ति का अधिकारी होता है-

(क) जब कोई अनुबन्ध विभाजित किया जा सकता है और पीड़ित पक्षकार ने दोषी पक्षकार द्वारा किये गये कार्य से लाभ उठाया है तो दोषी पक्षकार 'उचित पारिश्रमिक सिद्धान्त' के आधार पर किये गये कार्य के लिए पारिश्रमिक की मांग कर सकता है।

(ख) जब किसी अनुबन्ध के अधीन किसी कार्य के पूरा करने पर ही एक साथ पारिश्रमिक दिया जाना हो एवं कार्य पूरा कर दिया गया हो लेकिन त्रुटिपूर्ण ढंग से, तो दोषी पक्षकार को देय रकम में से त्रुटिपूर्ण कार्य के लिए रकम काट कर ही शेष रकम प्राप्त हो सकती है।

(4) विशिष्ट निष्पादन की मांग का अधिकार (Claim for Specific Performance) - जब किसी अनुबन्ध के खण्डन की दशा में केवल हर्जाना पा लेना ही समुचित उपचार नहीं हो सकता तो वैसी परिस्थिति में विशिष्ट उपचार अधिनियम के अन्तर्गत पीड़ित पक्षकार दूसरे पक्षकार को उसके वचन का निष्पादन करने को विवश करने के लिए न्यायालय में में दावा प्रस्तुत करने का अधिकार रखता है।

लेकिन निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय निर्दिष्ट निष्पादन की आज्ञा नहीं दे सकता।

(i) व्यक्तिगत सेवा संबंधी अनुबन्ध की स्थिति में,

(ii) प्रतिफल विहीन अनुबन्ध की स्थिति में,

(iii) यदि अनुबन्ध के निष्पादन का निरीक्षण करना संभव न हों,

(iv) यदि निर्दिष्ट निष्पादन के लिए आज्ञा प्रदान करना उचित एवं न्यायपूर्ण न हो

(v) द्रव्य के रूप में क्षतिपूर्ति संभव की स्थिति में।

(5) निषेधाज्ञा जारी करने की मांग का अधिकार (Claim of Injunction) - एक पक्षकार अपने अनुबन्ध में दिये गये वचन से मुकरने का मन्तव्य प्रेट करता है तो दूसरे पक्षकार उससे विशिष्ट निष्पादन कराने के उद्देश्य से न्यायालय का ऐसी निषेधाज्ञा जारी करने के लिए आवेदन कर सकता है, जिससे अनुबन्ध भंग करने वाला पक्षकार ऐसा करने में सफल न हो।

उदाहरण के लिए A, B से एक हॉल नाटक करने के लिए एक निश्चित अवधि के लिए लेने का अनुबन्ध करता है किन्तु B उस हॉल के उसी अवधि के लिए C को देने के लिए प्रवृत्त है तो A उसके इस कार्य पर निषेधाज्ञा जारी करने का आवेदन दे सकता है।

किन्तु यह न्यायालय का स्वाधीन अधिकार (Discretionary Power) है, जिसका प्रयोग साधारणतः निम्नलिखित परिस्थितियों में ही किया जाता है-

(क) यदि क्षतिपूर्ति का उपचार मुद्रा में पर्याप्त न हो, एवं

(ख) न्यायालय द्वारा विशिष्ट निष्पादन लाना सम्भव न हो।

4.4 क्षतिपूर्ति की माप (Measure of Damages)

यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि अनुबन्ध भंग किए जाने पर पीड़ित पक्षकार को हर्जाना वसूल करने का अधिकार है। किन्तु हर्जाने की राशि कितनी हो, यह निश्चित करना कठिन होता है। इस बात पर पक्षकारों में अक्सर झगड़ा हो जाता है एवं

स्थिति न्यायालय तक जाने की हो जाती है। इस सम्बन्ध में अंग्रेजी राजनियम में हेडले बनाम बेक्सेन्डेबेल (Headey Vs Baxendable) का विवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस विवाद में किसी मिल मालिक ने एक टूटी हुई मशीन किसी सार्वजनिक वाहक कम्पनी की इस उद्देश्य से भेजी कि वह उसे मशीन बनाने वाली फर्म के पास पहुँचा दें, जिससे वह फर्म उस नमूने के आधार पर नई मशीन तैयार कर दें। किन्तु सार्वजनिक वाहक कम्पनी की लापरवाही से मशीन को उस फर्म तक पहुँचने में देर हो गयी, इस बीच मशीन नहीं आने के कारण मिल को बन्द कर देना पड़ा। इस पर मिल मालिक ने वाहक कंपनी पर उस लाभ को प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत किया जो कि उसको मिल बन्द न करने से होता। न्यायालय ने मिल बन्द होने से अन्य व्यय एवं हानियों की मांग स्वीकार कर ली किन्तु लाभ की क्षति की मांग अस्वीकार कर दी, क्योंकि मिल मालिक ने वाहक कम्पनी की इस क्षति को जानकारी नहीं करायी थी।

उपर्युक्त वर्णित विवाद के अनुसार हर्जाना दिलाने का मुख्य पीड़ित पक्ष को, जहाँ तक सम्भव हो, आर्थिक दृष्टि से ऐसी स्थिति में लाना है जिसमें कि वह अनुबन्ध निष्पादन किये जाने पर होता।

इसी को ध्यान में रखते हुए अनुबन्ध अधिनियम की धारा 73d एवं 74 एवं विभिन्न विवादों में दिये गये निर्णय के आधार पर हर्जाने की राशि निश्चित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं-

(1) सामान्यतः पीड़ित पक्ष अनुबन्ध भंग से हुई वास्तविक हानि (Actual loss) के लिये ही हर्जाने की मांग कर सकता है। यदि वास्तव में उसे कोई हानि नहीं हुई है तो न्यायालय केवल नाम मात्र हर्जाना देने की आज्ञा देगा।

(2) वास्तव हानि की राशि निश्चित करते समय न्यायालय आमतौर पर केवल उन्हीं हानियों का हिसाब लगाता है जो सामान्य परिस्थितियों में स्वाभाविक रूपरेखा से उत्पन्न होती है, अप्रत्यक्ष अथवा दूरवर्ती हानियाँ का नहीं।

(3) हर्जाने की राशि निश्चित करते समय उन उपलब्ध साधना को ध्यान में रखा जाता है जिनके द्वारा भंग से उत्पन्न हुई असुविधा को दूर किया जा सकता है। उन साधनों का उपयोग करने में पीड़ित पक्ष को जो असुविधा होती है एवं जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है, उसका उचित मुआवजा मांगा जा सकता है। किन्तु अगर वह उपलब्ध साधनों का उपयोग नहीं करता, जिस कारण उसे अधिक हानि उठानी पड़ती है, तो इसके लिए दोषी पक्ष जिम्मेदार नहीं होगा। अर्थात् पीड़ित पक्षकार से यह आशा की जाती है कि वह हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

(4) साधारणतया, हर्जाना पीड़ित पक्ष हुई हानि की पूर्ति के लिए दिया जाता है, दोषी पक्ष को दण्डित करने के लिए नहीं लेकिन दो विशिष्ट परिस्थितियों में न्यायालय दण्ड के रूप में अधिक हर्जाने की आज्ञा दे सकता हैं :-

(क) विवाह का वचन भंग करने पर, एवं

(ख) बैंक द्वारा, बिना किसी उचित कारण के, ग्राहक का चेक अनादर करने पर।

इन दोनों ही परिस्थितियों में पीड़ित पक्ष की भावनाओं एवं प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाती है जिसके प्रतिकार के लिए वास्तविक हानि से अधिक मुआवजा दिए जाने की व्यवस्था की गयी है।

(5) यदि किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत पक्षकार को कुछ भुगतान करना है तो अनुबन्ध भंग की दशा में लेनदार केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में ही, ब्याज पाने का अधिकारी होगा-

(क) जहाँ स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से ब्याज देने का समझौता है,

(ख) जहाँ व्यापार की परम्पराओं के अनुसार ब्याज देने का रिवाज है,

(ग) ब्याज अधिनियम के अनुसार-

(i) जहाँ कोई रकम एक-लिखित प्रपत्र के अन्तर्गत निश्चित तिथि पर देय हैं, उस निश्वित तिथि से, तथा

(ii) जहाँ भुगतान की कोई निश्चित तिथि नहीं है, उस तिथि से जब लिखित रूप से रकम मांगी जाती है और कहा जाता है कि उस दिन से ब्याज लगाया जायेगा अथवा,

(घ) वस्तु विक्रय अधिनियम के अ नुसार जब अनुबन्ध भंग होने पर-

(i) विक्रेता मूल्य के लिए दावा करता है, अथवा

(ii) क्रेता अन्तिम राशि वापस पाने के लिए दावा करता है।

(6) यदि अनुबन्ध के कारण पीड़ित पक्ष को कुछ व्यक्तिगत असुविधा सहन करनी पड़ती है, तो उसके लिए भी हर्जाने की माँग की जा सकती है। (Hobbs Vs. London and South Western Rly Co (1875))

(7) हर्जाने का आदेश प्राप्त करने के लिए जो व्यय किया गया है वह भी हर्जाने की रकम में शामिल किया जा सकता है।

(8) यदि हर्जाने की राशि निश्चित करना है, तो इसका अर्थ यह है कि हर्जाना का वसूल नहीं किया जा सकता। ऐसी दशा में न्यायालय जो भी रकम उचित समझे, हर्जाने के रूप में दी जा सकती है।

(9) यदि अनुबन्ध करते समय पक्षकारों ने हर्जाने की रकम तय कर ली है (चाहे व निर्धारित हर्जाना हो अथवा दण्ड) और उसका उल्लेख अनुबन्ध में कर दिया गया है, तो ऐसी स्थिति में पीड़ित में पीडित पक्ष केवल उचित हर्जाना वसूल करनें का ही अधिकारी होगा, निर्धारित रकम नहीं। लेकिन किसी भी हालत में हर्जाने की रकम उल्लिखित रकम से अधिक नहीं होगी।

4.5 क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध (Contracts of Indemnity and Guarantee)

क्षतिपूर्ति अनुबन्ध (Contracts of Indemnity) - भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार, "क्षतिपूर्ति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है, जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को स्वयं अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण द्वारा होने वाली हानि से बचाने का वचन देता है।" (Contract of indemnity is a contract whereby one party promises to save the other from loss caused to him by the conduct of the premiser himself or by the conduct of any other person.)

इसे 'हानि-रक्षा अनुबन्ध' भी कहा जाता है, इस प्रकार के अनुबन्ध में जो पक्षकार हानि की पूर्ति करने का वचन देता है उसे 'हानि-रक्षाधारी' (Indemnify holder) कहते हैं।

उदाहरण- A, B को वचन देता है कि C द्वारा 2000 रुपये की वसूली के सम्बन्ध में की जानेवाली कार्यवाही के फलस्वरूप उसे जो भी हानि होगी वह (A) उसकी पूर्ति करेगा। यह एक क्षतिपूर्ति अनुबन्ध है। इसका A हानि रक्षक एवं B हानि-रक्षाधारी है।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार केवल वे ही अनुबन्ध क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध कहे जायेंगे जिनमें किसी ऐसी हानि की पूर्ति किये जाने का वचन हो जो हानि रक्षक अथवा किसी व्यक्ति के आचरण के कारण उत्पन्न होती है, वह अनुबन्ध, जो किसी दुर्घटना के कारण हुई हानि की पूर्ति के लिए किया जाता है (जैसे- अग्नि बीमा अनुबन्ध) क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध नहीं कहलाता।

किन्तु यह बात सही प्रतीत नहीं होती, क्योकि बीमा अनुबन्ध (जीवन बीमा को छोड़कर) मूलतः क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध कहे जाते हैं। अतः भारतीय न्यायालय इस परिभाषा को पूर्ण न मानते हुए इस सम्बन्ध में अंग्रेजी कानून का सहारा लेते हैं, जिसके अनुसार क्षतिपूर्ति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत, ''किसी निर्दोषा व्यक्ति को एक ऐसे लेन-देन के कारण हुई हानि से बचाने का वचन दिया जाता है जो वचनदारी के अनुरोध पर किया गया हो'' क्षतिपूर्ति अनुबन्ध की यह एक व्यापक परिभाषा है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के आचरण द्वारा हुई हानि ही नहीं वरन् किसी घटना के फलस्वरूप हुई हानि की की पूर्ति के वचन को भी क्षतिपूर्ति अनुबन्ध माना जाता है।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार हानि रक्षा या क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में निम्नलिखित विशेषताएँ या लक्षण पाये जाते हैं।

(i) क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध के द्वारा क्षतिपूर्ति का स्पष्ट वचन दिया जाता है अर्थात् कोई गर्भित वचन क्षतिपूर्ति का वचन नहीं होता।

(ii) ऐसे अनुबन्ध में ऐसी हानि को क्षतिपूर्ति करने के लिए हानि रक्षक द्वारा हानिरक्षाधारी को वचन दिया जाता है जो हानिरक्षाधारी के स्वयं के व्यवहार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचे अर्थात् क्षतिपूर्ति करने का वचन किसी घटना के कारण हुई हानि के लिए नहीं होता।

4.6 हानिरक्षाधारी के अधिकार (Right of Indemnity-holder)

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 125 के अनुसार, यदि क्षतिपूर्तिधारी ने अपने प्रदत्त अधिकार के अनुसार ही कार्य किया है एवं वचनदाता के निर्देश को नहीं बदलता है तो उसे क्षतिपूर्ति करने वाले पक्षकार के विरूद्ध निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं-

(1) वह हर्जाना की राशि जो उसे ऐसे बाद के सम्बन्ध में देना पड़े जिस पर क्षतिपूर्ति का वचन लागू होता है।

(2) वे सारे व्यय जो उसने इस प्रकार के बाद को प्रस्तुत करने या उसका प्रतिवाद करने में किये हों, अथवा ऐसी रकम जो ऐसे वाद की शर्तों के अनुसार चुकानी पड़े।

(3) वह रकम प्राप्त करने का अधिकार जो उसने इस प्रकार के बाद सम्बन्ध में हुई समझौता की शर्तों के अन्तर्गत चुकायी हो, बशर्ते की समझौता हानि रक्षक के आदेशों के प्रतिकूल नहीं है तथा ऐसा है जो कि हानि-रक्षाधारी क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के अभाव में विवेकपूर्ण काम करते हुए अपने लिए करता।

4.6.1 हानिरक्षक के अधिकार (Right of Indemnifier) -

हानिकारक अनुबन्ध के अन्तर्गत जब हानि रक्षाधारी की क्षतिपूर्ति कर देता है तो उसे उन सभी उपायों एवं साधनों (Means) को पाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, जिनसे हानि रक्षाधारी अपनी हानि को बचा सकता था।

4.7 प्रत्याभूति अनुबन्ध (Contract of Guarantee)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 के अनुसार, ''प्रतिभूति का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी तीसरे व्यक्ति की क्षति की दशा में उसके (तीसरे व्यक्ति) वचन का निष्पादन करने तथा उसके दायित्वों को पूरा करने का वचन देता है।'' (A contract Guarantee is a contract to perform the promise of discharge the liability of a third party in case of his default.)

वह व्यक्ति जो प्रतिभूति देता है 'प्रतिभूति' (Surety) कहलाता है। यह व्यक्ति जिसकी त्रुटि के लिए प्रतिभूति दी जाती है, 'मूल ऋणी' (Principal Debtor) कहलाता है। वह व्यक्ति जिसे प्रतिभूति दी जाती है, 'ऋणदाता' (Creditor) कहलाता है।

उदाहरण- A, B से कहता है कि वह C को तीन माह के लिए 5000 रुपये का ऋण दे दें और यह वचन देता है कि अगर C समय पर ऋण का भुगतान नहीं करेगा तो वह स्वयं उसका भुगतान कर देगा। A, B के मध्य यह एक प्रत्याभूति अनुबन्ध है। इसमें A प्रतिभूति है। C मूल ऋणी एवं B ऋणदाता।

प्रत्याभूति किसी ऋण के भुगतान, उधार बेचे गए माल का मूल्य चुकाने अथवा किसी कर्मचारी की ईमानदारी या अच्छे आचरण के सम्बन्ध में दी जाती है। वैसे यह किसी वैध वचन के निष्पादन के लिए दी जा सकती है। भारत में इसे लिखित होना अनिवार्य नहीं है। यह मौखिक भी हो सकती है।

4.7.1 प्रत्याभूति अनुबन्ध के लक्षण (Characteristics of Contract of Guarantee) -

सामान्य अनुबन्धों की तरह प्रत्याभूति अनुबन्ध में भी एक वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान होना चाहिए, किन्तु निम्नलिखित लक्षणों पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

(i) प्रत्याभूति अनुबन्ध के लिए तीनों पक्षों प्रतिभू, मूलऋणी एवं ऋणदाता की सहमति होना आवश्यक है।

(ii) यदि मूल ऋणी अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं भी रखता है, तब भी उसके लिए दी गयी प्रत्याभूति वैध होती है। ऐसी स्थिति में प्रत्याभू को ही मूल ऋणी माना जाता है और भुगतान के लिए वह व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होता है।

(iii) प्रत्याभूति अनुबन्ध के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह प्रतिफल प्रत्याभू के लिए किसी लाभ के रूप में ही हों। मूल ऋणी के लिए किया गया कोई कार्य या उसके या उसके लाभ के लिए दिया गया कोई वचन ही प्रत्याभू के लिए पर्याप्त प्रतिफल है।

(iv) जिस दायित्व के सम्बन्ध में प्रत्याभूति दी गई है वह कानून द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहिए। यदि किसी दायित्व को कोई अस्तित्व ही नहीं है तो उसके लिए दी गई प्रत्याभूति वैध नहीं मानी जायेगी।

4.8 क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध में अन्तर (Difference between Contract of Indemnity and Guarantee)

(i) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में वचनदाता द्वारा वचनगृहीता को ऐसी हानियों से बचने का वचन दिया जाता है जो वचन-गृहीता वचनदाता से स्वयं अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुँचती है। प्रत्याभूति अनुबन्ध में प्रतिभू (Surety) ऋणदाता को वचन देता है कि यदि मूल ऋणी अपने वचन का निष्पादन नहीं करेगा, तो वह स्वयं उसकी ओर से ऐसा कर देगा।

(ii) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में केवल दो पक्ष होते हैं, हानि रक्षक एवं हानि रक्षाधारी। किन्तु प्रत्याभूति अनुबन्ध में तीन पक्ष होते हैं, मूल ऋणदाता, ऋणी तथा प्रतिभू।

(iii) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में हानि-रक्षक तथा हानि-रक्षाधारी के बीच केवल एक मौलिक अनुबन्ध होता है। किन्तु प्रत्याभूति अनुबन्ध होते हैं- मुख्य ऋणी एवं ऋणदाता के मध्य, (ii) ऋणदाता एवं प्रतिभू के मध्य और (iii) प्रतिभू एवं मुख्य ऋणी के मध्य एक गर्भित अनुबन्ध।

(iv) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में किसी सम्भाव्य घटना के घटित होने पर ही हानि रक्षक का दायित्व निश्चित होता है। किन्तु प्रत्याभूति अनुबन्ध में एक निश्चित ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन की प्रत्याभूति दी जाती है जो विद्यमान है।

(v) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का उद्देश्य हानि-रक्षाधारी को सम्भाव्य हानि से बचाना होता है। किन्तु प्रत्याभूति अनुबन्ध का उद्देश्य मूल ऋणों के वचन के निष्पादन की जमानत देना होता है।

(vi) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध के अन्तर्गत हानि-रक्षक का दायित्व प्रथम (Primary) एवं स्वतंत्र होता है। लेकिन प्रत्याभूति अनुबन्ध के अन्तर्गत प्रतिभूति का दायित्व गौण एवं दूसरा (Secondary) होता है, जो मूल ऋणी द्वारा अपने दायित्व को पूरा न करने की स्थिति में ही उत्पन्न होता है।

(vii) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में हानि-रक्षक हानि की रकम का भुगतान कर देने के बाद किसी अन्य व्यक्ति पर अपने नाम से कोई दावा नहीं कर सकता, जबतक कि यह अधिकार उसे स्पष्ट रूप से हस्तांतरित न कर दिया गया हो। जबकि, प्रत्याभूति अनुबन्ध में प्रत्याभू, ऋणदाता को भुगतान करने के बाद स्वयं ऋणदाता की स्थिति में आजाता है और उसे मूल ऋणों के विरूद्ध अपने नाम से दावा करने का पूर्ण अधिकार मिल जाता है।

(viii) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध में हानि-रक्षक का प्रायः कोई व्यक्तिगत हित (जैसे प्रीमियम मिलना) होता है। किन्तु प्रत्याभूति अनुबन्ध में साधारणतया कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता। उसका मुख्य अभिप्राय मूल ऋणों की सहायता करना है।

(ix) क्षतिपूर्ति अनुबन्ध का क्षेत्र सीमित है क्योंकि इसमें प्रत्याभूति अनुबन्ध सम्मिलित नहीं होता। दूसरी ओर प्रत्याभूति अनुबन्ध का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक है क्योंकि इसमें हानि-रक्षा का अनुबन्ध भी सम्मिलित होता है।

4.9 प्रत्याभूति के प्रकार (Kinds of Guarantee)

प्रत्याभूति दो प्रकार की हो सकती है

4.9.1 विशिष्ट प्रत्याभूति (Specific Guarantee) -

जब किसी विशेष ऋण या वचन के लिए प्रत्याभूति दी जाती है तो उसे 'विशिष्ट प्रत्याभूति' कहते हैं। इसमें प्रत्याभू का दायित्व केवल एक लेन-देन तक ही सीमित रहता है और जब वह लेन-देन पूरी हो जाती है तो प्रत्याभूति अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

4.9.2 चालू प्रत्याभूति (Continuing Guarantee) -

जब कोई प्रत्याभूति लेन-देनों की एक शृंखला के सम्बन्ध में दी जाती है तो उसे चालू प्रत्याभूति कहते हैं। उदाहरण के लिए A, चाय के एक व्यापारी B को, उसके द्वारा C को समय-समय पर बेची जाने वाली चाय के भुगतान के लिए 200 रुपये तक की प्रत्याभूति देता है। B ने C को 2500 रुपये की चाय बेची जिसका भुगतान C ने कर दिया। बाद में फिर उसने (B) 3000 रुपये की चाय सप्लाई की जिसका C ने भुगतान नहीं किया। चूँकि एक चालू प्रत्याभूति थी, अतः A 2500 रुपये का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

कोई प्रत्याभूति चालू प्रत्याभूति है या नहीं, यह पक्षकारों के इरादे एवं सम्बद्ध परिस्थितियों पर निर्भर करता है। चालू प्रत्याभूति का मुख्य लक्षण यह है कि वह दो पक्षकारों के मध्य होने वाले अनेक लेन-देनों पर लागू होती है; न कि कुछ विशिष्ट लेन देनों पर और प्रत्याभू अन्त में रकम के लिए ही दायी होता है। जैसे किराया वसूल करने के लिए नियुक्त कर्मचारी के आचरण की प्रत्याभूति चालू प्रत्याभूति है लेकिन किस्तों के किए जाने वाले भुगतान की प्रत्याभूति को चालू प्रत्याभूति नहीं कहा जा सकता है। चालू प्रत्याभूति में समय या राशि की सीमा निर्धारित की जा सकती है।

4.9.3 चालू प्रत्याभूति का खण्डन (Revocation to Continuing Guarantee) -

इसका खंडन निम्नलिखित दो ढंग से किया जा सकता है।

(क) **सूचना द्वारा (By Notice)** - ऋणदाता को सूचना देकर, भावी लेन-देनों के सम्बन्ध में, चालू प्रत्याभूति को किसी भी समय समाप्त किया जा सकता है। जब प्रतिभू खण्डन की सूचना देदेता है तब वह बाद की लेन-देनों के लिए उत्तरदायी नहीं होता, लेकिन सूचना से पहले के लेन-देनों के लिए उसकी जिम्मेदारी बनी रहती है।

(ख) **प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Surety's Death)** - यदि कोई विपरीत अनुबन्ध न हो तो प्रतिभू की मृत्यु हो जाने पर भावी लेन-देनों के सम्बन्ध में, चालू प्रत्याभूति समाप्त हो जाती है। इस दशा में ऋणदाता को प्रतिभू की मृत्यु की जानकारी होना आवश्यक नहीं है।

उपर्युक्त दो परिस्थितियों के अलावा चालू प्रत्याभूति उन सब दशाओं में भी समाप्त हो जाती है जिनमें साधारणतया प्रतिभू दायित्व-मुक्त हो जाता है; जैसे मूल अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन किए जाने पर, मूल ऋणी के मुक्त होने पर कमी आने अथवा ऋणदाता द्वारा जमानत खो देने पर।

4.10 प्रतिभू का दायित्व (Liability of Surety)

प्रतिभू सामान्यतया उस समस्त राशि व कार्य के लिए उत्तरदायी होता है जिसके लिए मूल ऋणी को स्वयं दोषी ठहराया जा सकता है। धारा 128 के अनुसार यदि अनुबन्ध में इसके विपरीत कुछ न दिया गया हो, तो प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के साथ सह-विस्तृत होता है।

उपर्युक्त नियम के अनुसा, ऋणदाता मूल अनुबन्ध के अन्तर्गत जो कुछ मूल ऋणी से वसूल कर सकता था, वही सब वह प्रतिभू में प्राप्त करने का अधिकारी है। किन्तु अनुबन्ध करते समय प्रतिभू ने अपने दायित्व की कोई सीमा निर्धारित क दी है, तब उससे अधिक रकम प्रतिभू से वसूल नहीं की जा सकती है।

यह सही है कि प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के दायित्व के समान ही होता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अगर किसी कारण से मूल ऋणी को दायी नहीं ठहराया जा सकता, तो प्रतिभू भी दायी नहीं होगा।

वास्तव में जिस वचन या ऋण के लिए प्रत्याभूति दी जाती है, उसके निष्पादन या भुगतान की प्रथम जिम्मेदारी मूल ऋणी की होती है। अगर निश्चित तिथि पर वह अपने वचन का पालन नहीं करता, तभी प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं। किन्तु यदि देय तिथि पर मूल ऋणी भुगतान नहीं कर पाता है तो प्रतिभू का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह तुरन्त उस दायित्व को पूरा करें।

4.10.1 प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति (Discharge of Surety) -

यदि मूल-ऋणी अपने वचन का निष्पादन कर देता है, तो साधारणतया प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। किन्तु इसके अतिरिक्त निम्नलिखित परिस्थितियों में भी प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है-

(1) **मूल अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन किये जाने पर** - यदि प्रतिभू की सहमति के बिना मूल ऋणी एवं ऋगदाता के बीच हुए मूल अनुबन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जाता है, तो परिवर्तन के बाद उत्पन्न होने वाले दायित्वों के लिए प्रतिभू मुक्त हुआ समझा जाता है।

(2) **मूल ऋणी के मुक्त होने पर - यदि मूल ऋणदाता आपस में कोई ऐसा समझौता करते हैं अथवा ऋणदाता कोई ऐसा कार्य या भूल करता है जिसके फलस्वरूप मूल ऋणी अपने-अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू भी दायित्व मुक्त हो जाता है।**

किन्तु एक ही ऋण के लिए एक से अधिक व्यक्तियों ने प्रत्याभूति दी है, तो ऋणदाता द्वारा किसी एक सह-प्रतिभू (Co-surety) को उसके दायित्व से मुक्त किए जाने पर अन्य प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते। (धारा 138)

(3) मूल ऋणी व ऋणदाता में कोई समझौता होने पर - यदि प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणदाता मूल ऋणी के साथ कोई समझौता संयोजित करता है अथवा अवधि बढ़ाने या मूल ऋणों पर मुकदमा चलाने का वचन देता है तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(4) ऋणदाता के किसी कार्य या भूल से प्रतिभू के अधिकार में कमी आने पर - यदि ऋणदाता कोई ऐसा कार्य करता है जो प्रतिभू के हित के विपरीत है अथवा कोई ऐसा कार्य करना भूल जाता है जिसे पूरा करने का उसका कर्त्तव्य था, जिससे मूल ऋणी के विरूद्ध उपलब्ध प्रतिभू के अधिकार में कुछ रूकावट या कमी हो जाती है, तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त पाता है। (धारा 139)

(5) ऋणदाता द्वारा जमानत खो देने पर - जब प्रतिभू अपने दायित्व को पूरा कर देता है तो वह ऋणदाता से उस प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने का अधिकार होता है जो उसके पास जमानत के रूप में रखी थी। अतः यदि ऋणदाता जमानत की वस्तु खो देता है अथवा बिना प्रतिभू की अनुमति के उसे दूसरे को देता है तो प्रतिभू का दायित्व उस वस्तु के मूल्य के अनुपात में कम हो जायेगा। (Sec. 14)

किन्तु यह नियम जमानत की उन वस्तुओं के बारे में लागू नहीं होता जो ऋणदाता को प्रत्याभूति अनुबन्ध होने के बाद प्राप्त हुई हो।

(6) सूचना द्वारा खण्डन किए जाने पर - चालू प्रतिभू अनुबन्ध की दशा में प्रतिभू किसी भी समय ऋणदाता को प्रतिभूति की समाप्ति की सूचना देकर भविष्य के दायित्वों से अपने को मुक्त कर सकता है।

(7) प्रतिभू की मृत्यु हो जाने पर - प्रतिभू की मृत्यु हो जाने पर प्रतिभू के उत्तराधिकारी प्रतिभू की मृत्यु के उपरान्त किये गये सभी व्यवहारों से उत्पन्न सभी दायित्वों से मुक्त हो जायेंगे, बशर्ते कि इसके विपरीत अनुबन्ध में कोई अन्य व्यवस्था न हो।

(a) प्रत्याभूति अनुबन्ध के अमान्य हो जाने पर - जब कोई प्रतिभू कपट, मिथ्या वर्णन या महत्त्वपूर्ण तथ्यों को छिपा कर ली गई हो, तो प्रत्याभूति अनुबन्ध अमान्य होता है। अतः प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रतिभूति अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता है-

(i) जब ऋणदाता मूल-ऋणों को समय देने का ठहराव किसी तीसरे व्यक्ति के साथ करता है, मूल ऋणी के साथ नहीं तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। (धारा 136)

(ii) जब ऋणदाता ऋण के देय हो जाने पर भी मूल-ऋणी के विरूद्ध समय-सीमा अवधि के अन्तर्गत वाद प्रस्तुत नहीं करता या कोई अन्य उपचार का प्रयोग नहीं करता तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा।

(iii) जब ऋणदाता एक सह-प्रतिभू को मुक्त कर दे तो ऐसी दशा में सह-प्रतिभू अपने-अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकते।

4.10.2 प्रतिभू के अधिकार (Rights of Surety) -

प्रतिभू के निम्नलिखित अधिकार हैं-

(क) मूल ऋणी के विरूद्ध अधिकार (Right as against th e principal debtor) - इसके अन्तर्गत प्रतिभू का निम्नलिखित दो अधिकार प्राप्त है-

(i) प्रत्यासन का अधिकार (Rights of Subrogation) - धारा 140 के अनुसार, मूल ऋणी द्वारा चूक किए जाने पर जब प्रतिभू उनके ऋण का भुगतान कर देता है या वचन का निष्पादन कर देता है तो उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो ऋणदाता को मूल ऋणी के विरूद्ध प्राप्त था।

(ii) क्षतिपूर्ति का अधिकार (Right of Indemnity) - धारा 145 के अनुसार प्रत्येक प्रत्याभूति अनुबन्ध में मूल ऋणी द्वारा यह गर्भित वचन होता है कि वह प्रतिभू की क्षतिपूर्ति करेगा और प्रतिभू उन सभी राशियों को प्राप्त करने का अधिकार रखता है जो उसने वैधानिक रूप से चुकाया है।

(ख) ऋण दाता के विरूद्ध अधिकार (Right as against the creditor) - धारा 141 के अनुसार प्रतिभूति के अनुबन्ध के समय लेनदार द्वारा प्राप्त प्रतिभूतियाँ जो कि देनदार से उसने प्राप्त की है कि लाभ को लेने का अधिकारी है प्रतिभू है, चाहे प्रतिभू इन प्रतिभूतियों के विषय में जानकारी रखता है अथवा नहीं एवं लेनदार प्रतिभू की सहमति के बिना प्रतिभूतियों को वापस करता है या उसके किसी भाग को लौटा देता है तो प्रतिभू लौटायी गयी प्रतिभूतियों के मूल्य के बराबर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(ग) सह-प्रतिभू के विरूद्ध अधिकार (Right as against the co-surety) - जब किसी एक ऋण अथवा वचन के निष्पादन के लिए दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा प्रत्याभूतियाँ प्रदान की गई है तो वे सह-प्रतिभू कहलाते हैं। सह-प्रतिभू के विरूद्ध किसी विशिष्ट प्रतिभू को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं-

(i) समान भाग के लिए दायित्व (Liability to contribute equally) - धारा 146 के अनुसार जब दो या दो से अधिक व्यक्ति समान ऋण या दायित्व के लिए या पृथक-पृथक या संयुक्त रूप से सह-प्रतिभू है तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, प्रत्येक पारस्परिक रूप से सम्पूर्ण ऋण के लिए अथवा मूल देनदार द्वारा भुगतान किये गये अंश में उत्तरदायी होगा।

(ii) भिन्न-भिन्न राशियों के लिए सह-प्रतिभूतियों का दायित्व (Liabilities of co-sureties bound in different sums) - धारा 147 के अनुसार यदि सह-प्रतिभू भिन्न-भिन्न राशियों के लिए उत्तरदायी है तो वे अपने क्रमागत दायित्वों की सीमा तक बराबर भुगतान के लिए उत्तरदायी होंगे। यदि किसी प्रतिभू द्वारा सम्पूर्ण ऋण का भुगतान कर दिया जाता है तो वह अन्य प्रतिभूगण से उनके दायित्व की सीमा तक बराबर-बराबर भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी है।

4.11 सारांश (Summing up)

1. गर्भित तथा अर्द्धगर्भित अनुबन्ध में अन्तर।
2. अनुबन्ध खण्डन के उपचार।
3. क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध में अन्तर।
4. प्रत्याभूति के प्रकार।

4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. क्षतिपूर्ति एवं प्रत्याभूति अनुबन्ध में अन्तर बतायें।
2. अनुबन्ध खण्डन के विभिन्न उपचारों का वर्णन कीजिये।

4.13 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 5 **निक्षेप एवं गिरवी के अनुबन्ध** पाठ-1

पाठ संरचना (Lesson Structure)

5.0 उद्देश्य (Objective)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 निक्षेप अनुबन्ध के अर्थ एवं परिभाषायें

5.3 निक्षेप के प्रकार

5.4 निक्षेप के कर्त्तव्य एवं दायित्व

5.5 निक्षेप के अधिकार

5.6 निक्षेपगृहीता के कर्त्तव्य एवं दायित्व

5.7 निक्षेपगृहीता के अधिकार

5.8 निक्षेप एवं निक्षेपगृहीता के तीसरे पक्ष के विरूद्ध अधिकार

5.9 खोई हुई परन्तु पाने वाले की स्थिति

5.10 निक्षेप की समाप्ति

5.11 ग्रहणाधिकार अथवा पूर्वाधिकार

5.12 पूर्वाधिकार के प्रकार

5.13 गिरवी का अनुबन्ध

5.14 गिरवी एवं निक्षेप में अन्तर

5.15 गिरवी रखने वाले का अधिकार

5.16 गिरवी रखने दाले का कर्त्तव्य

5.17 गिरवी रखने वाले का अधिकार

5.18 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य

5.19 अ-स्वामी द्वारा गिरवी

5.20 सारांश (Summuing up)

5.21 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

5.22 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

5.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य छात्रों को निक्षेप एवं गिरवी के अनुबन्ध के बारे में जानकारी उपलब्ध कराना है।

5.1 परिचय (Introduction)

नित्यप्रति हम ऐसे अनेक व्यवहार करते एवं देखते हैं जिनके अन्तर्गत एक व्यक्ति अपनी कोई वस्तु किसी विशेष प्रयोजन के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को देता है और प्रयोजन पूरा हो जाने के बाद उसे वापस कर दी जाती है, जैसे पढ़ने के लिए पुस्तक देना, मरम्मत के लिए स्कूटर देना इत्यादि। इन सभी व्यवहारों में एक विशेष बात यह देखने में आती है कि कुछ समय के लिए जब तक वह वस्तु लौटाई नहीं जाती, एक व्यक्ति की वस्तु दूसरे व्यक्ति के कब्जे (Possession) में रहती है। इस प्रकार के व्यवहार को 'धरोहर' अथवा 'निक्षेप' कहते हैं।

5.2 निक्षेप अनुबन्ध (Contract of Bailment)

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार, "जब कोई व्यक्ति, एक अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी अन्य व्यक्ति को किसी विशेष प्रयोजन के लिए अपनी कोई वस्तु इस शर्त पर देता है कि प्रयोजन पूरा हो जाने पर वह वस्तु उसे लौटा दी जायेगी अथवा उसके निर्देशानुसार वस्तु का निपटारा कर दिया जायेगा तो इसे निक्षेप कहते हैं। वह व्यक्ति जो माल की सुपुर्दगी देता है उसे निक्षेपी (Bialor) एवं जिस व्यक्ति को माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेपगृहीता (Bailee) कहते है। जैसे-रमेश एक कमीज बनाने के लिए दरजी को कपड़ा देता है, यह एक निक्षेप अनुबन्ध है। इसमें रमेश निक्षेपी एवं दरजी निक्षेपगृहीता है।

उपरोक्त परिभाषा से निक्षेप के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होते हैं-

(1) अनुबन्ध का होना - निक्षेप में वस्तु की सुपुर्दगी एक अनुबन्ध के अन्तर्गत दी जाती है जिसमें यह शर्त होती है कि प्रयोजन पूरा हो जाने पर वस्तु वापस कर दी जायेगी। कुछ परिस्थितियों में बिना अनुबन्ध के भी निक्षेप की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसे खोई हुई वस्तु पाने वाला व्यक्ति कानून की दृष्टि में निक्षेपगृहीता माना गया है।

(2) चल सम्पत्ति से सम्बन्धित - निक्षेप केवल चल संपत्तियों का ही हो सकता है अर्थात् अचल सम्पत्तियों का हस्तांतरण निक्षेप अनुबन्ध के अन्तर्गत नहीं आता।

(3) स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं - निक्षेप अनुबन्ध में वस्तु के स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं होता। निक्षेपी निक्षेपगृहीता को माल सौंपकर भी माल का स्वामी बना रहता है।

(4) माल के अधिकार का हस्तांतरण - निक्षेप में माल के अधिकार का हस्तांतरण अनिवार्य है अर्थात् वस्तु का निक्षेपागृहीता के अधिकार क्षेत्रा में जाना अनिवार्य है। अगर वस्तु स्वामी के अधिकार में ही रहती है तो वह निक्षेप नहीं हो सकता।

(5) वस्तु की सुपुर्दगी - वस्तु की सुपुर्दगी किसी अन्य व्यक्ति को होनी चाहिए। सुपुर्दगी वास्तविक अथवा रचनात्मक हो सकती है। जब निक्षेपी, निक्षेपगृहीता को वास्तव में वस्तु का कब्जा देता है तो उसे 'वास्तविक

सुपुर्दगी' कहते हैं। जैसे- रमेश अपनी घड़ी मरम्मत के लिए घड़ीसाज को देता है। किन्तु जब निक्षेपी कोई ऐसा कार्य करता है जिससे वस्तु प्राप्त करने का अधिकार निक्षेपगृहीता को मिल जाता है तो इसे रचनात्मक सुपुर्दगी- कहते हैं।

(6) विशेष उद्देश्य - निक्षेप में वस्तु की सुपुर्दगी किसी विशेष उद्देश्य के लिए दी जाती है और निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य होता है कि उद्देश्य के पूरा होने के उपरांत माल या तो निक्षेपी को लौटा दे अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दें। इस प्रकार निक्षेप में माल के हस्तांतरण का उद्देश्य अस्थायी होता है।

(7) वस्तु की वापसी - निक्षेप अनुबन्ध में यह शर्त्त गर्भित होती है कि विशिष्ट उद्देश्य के पूरा होने पर वस्तु निक्षेपी को वापस मिल जायेगी या उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी।

किन्तु वस्तु की वापसी मूलरूप में होना आवश्यक नहीं है विशेष रूप से ऐसी परिस्थिति में जिनमें स्वभाव परिवर्तन अनिवार्य हो। उदाहरण के लिए यदि गेहूँ चक्की वाले को पीसने के लिए सुपुर्द किया जाये तो गेहूँ आटे के रूप में ही निक्षेपी को वापस प्राप्त होगा, उसी प्रकार बैंक में जब धन जमा कराय जाता है तो उसे निक्षेपी नहीं कहते, क्योंकि बैंक में जमा किए गए नोटों को ही वापस करने के लिए बैंक बाध्य नहीं होता। वरन् जमा की गई रकम के बराबर धन देने के लिए ही उत्तरदायी होता है।

5.3 निक्षेप के प्रकार (Kind of Bailment)

साधारणतया निक्षेप निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं-

(1) सुरक्षा के लिए निक्षेप - जब निक्षेपी वस्तु को निक्षेपगृहीता के पास केवल सुरक्षा के लिए देता है या जमा करता है तो इसे 'सुरक्षा के लिए निक्षेप' कहते हैं। जैसे- आभूषणों को सुरक्षा के लिए बैंक के लॉकर में रखना, तो इसे रक्षार्थ निक्षेप कहते हैं।

(2) निःशुल्क या शुल्क रहित निक्षेप - जब एक व्यक्ति अपनी वस्तु किसी व्यक्ति को बिना शुल्क प्रयोग करने के उद्देश्य से हस्तान्तरित करता है, तो इसे निःशुल्क निक्षेप कहा जाता है। ऐसे निक्षेप में निक्षेपी, निक्षेपगृहीता से वस्तु प्रयोग करने के बदले किसी प्रकार का किराया नहीं लेता। जैसे 1 अपनी साईकिल B को एक दिन के लिए उपयोग ाविस्ते देता है।

(3) सशुल्क या शुल्क रहित निक्षेप – जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी कोई वस्तु प्रयोग करने के लिए हस्तांतरित करता है और इसके लिए कोई शुल्क या किराया लेता है, तो इसे सशुल्क निक्षेप अथवा शुल्क सहित निक्षेप कहते हैं, जैसे- पंखा, गाड़ी, फर्नीचर प्रयोग के लिए किराये पर देना।

(4) प्रयोग के लिए निक्षेप - जब निक्षेप अपनी वस्तु निक्षेपगृहीता को उसके प्रयोग के लिए सुपुर्द करता है तो इसे 'प्रयोग के लिए निक्षेप' कहते हैं। जैसे अपने मित्र या सम्बन्धी को प्रयोग के लिए कोई वस्तु देना।

(5) मरम्मत के लिए निक्षेप - जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी कोई वस्तु मरम्मत करने के लिए देता है और मरम्मत के बाद वह वस्तु निक्षेपी को लौटा दी जाती है तो इसे मरम्मत के लिए निक्षेप कहा जाता है।

(6) बन्धक अथवा गिरवी के लिए निक्षेप - किसी ऋणदाता के पास ऋण के समय प्रतिभूति के रूप में वस्तुयें रखना बन्धक या गिरवी कहलाता है। ऋण चुकाने के बाद गिरवी रखी हुई वस्तु वापस कर दी जाती है।

(7) परिवहन सम्बन्धी निक्षेप – यदि कोई वस्तु वाहक को एक निश्चित स्थान पर पहुँचाने के उद्देश्य से दी जाती है तो उसे परिवहन सम्बन्धी निक्षेप कहते हैं। जैसे- रेलवे को कोई वस्तु कहीं भेजने के लिए सुपुर्द करना।

(8) किराये के लिए निक्षेप – जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी वस्तु किराये पर प्रयोग के लिए देता है, तो इसे किराये के लिए निक्षेप कहते हैं।

5.4 निक्षेपी के कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Liabilities to a Bailor)

(1) निक्षेप की जा रही वस्तु के दोषों को प्रकट करना - निक्षेपी का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपित वस्तु सम्बन्धी वे समस्त दोष निक्षेपगृहीता को बताये जो उसकी जानकारी में है एवं जिनसे वस्तु के उपयोग में महत्त्वपूर्ण बाधा होती है या जिसके कारण निक्षेपगृहीता असाधारण संकट में पड़ सकता है। यदि निक्षेपी ऐसा नहीं करता है तो वह उन दोषों के कारण निक्षेपगृहीता को हुई प्रत्यक्ष हानि के लिए उत्तरदायी होता है। किन्तु वस्तु के जिन दोषों की उसे स्वयं जानकारी नहीं होती, उससे निक्षेपगृहीता को हुई हानि की पूर्ति के लिए निक्षेपी सशुल्क निक्षेप की दशा में ही उत्तरदायी होगा, निःशुल्क निक्षेप के अन्तर्गत नहीं। (धारा 150)

(2) व्ययों का भुगतान करना - निक्षेप अनुबन्ध के अधीन किये गए समझौते के अनुसार निक्षेपी निक्षेपगृहीता को वे सब व्यय चुकाने के लिए दायी होगा जो उसने निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में किए हैं। किन्तु यह व्यय तब चुकाये जायेंगे, जब निक्षेपगृहीता बिना पारिश्रमिक के निक्षेप स्वीकार करता है। (धारा 158)

(3) निक्षेपगृहीता की हानि की पूर्ति - निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपगृहीता की उन सब हानियों की क्षतिपूर्ति करे जो उसे निक्षेपित वस्तु के विषय में निक्षेपी के अधिकारों पर न्यूनतम या सीमाओं के कारण हुई हो। (धारा 149)

(4) असाधारण व्ययों का भुगतान करना - साधारण व्ययों के अतिरिक्त यदि निक्षेपगृहीता ने निक्षेप के सम्बन्ध में कोई असाधारण व्यय किये हों, तो निक्षेपी ऐसी असाधारण व्ययों की राशि निक्षेपगृहीता को भुगतान करने के लिए बाध्य हैं। (धारा 158)

(5) वस्तु की सुपुर्दगी देना - निक्षेपी का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेप अनुबन्ध के अनुसार समस्त माल की सुपुर्दगी निक्षेपगृहीता को दें। यह सुपुर्दगी रचनात्मक अथवा वास्तविक हो सकती है। (धारा 149)

(6) निक्षेपगृहीता को पारिश्रमिक देना - यदि वस्तु किसी विशेष कार्य के लिए निक्षेप की जाती है तो निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपगृहीता को वस्तु के सम्बन्ध में किये गये पारिश्रमिक का पूर्ण प्रतिफल दें।

5.5 निक्षेपी के अधिकार (Rights of Bailor)

निक्षेपी का प्रमुख अधिकार निम्नलिखित है-

(1) धारा 152 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता निक्षेप की वस्तु की उचित देखभाल नहीं करता तो निक्षेपी निक्षेपगृहीता से ऐसी क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है, जो उसे वस्तु की उचित देखभाल न होने के कारण हुई है।

धारा ... के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता निक्षेप की गयी वस्तु के सम्बन्ध में कोई ऐसा काम करता है जो निक्षेप की शर्तों के विरूद्ध है, तो निक्षेपी या तो निक्षेप की गयी वस्तु को वापस ले सकता है अथवा वह अपनी इच्छा पर अनुबन्ध को रद्द कर सकता है।

(3) धारा 154 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता निक्षेप किये गये माल का उपयोग निक्षेप की शर्तों के विरूद्ध करता है, तो निक्षेपी निक्षेपीगृहीता से उस उपयोग से या ऐसे उपयोग के समय में वस्तु की होने वाली हानि के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है।

(4) धारा 155 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता, निक्षेपी की सहमति से उसकी वस्तु को अपनी वस्तु में मिला देता है तो ऐसी मिलावट में निक्षेपी का अधिकार उसके अंश के अनुसार होगा।

(5) धारा 156 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता, निक्षेपी की सहमति के बिना निक्षेपित माल को अपने निजी माल के साथ मिला देता है और माल अलग करना सम्भव है, तो निक्षेपी ऐसी मिलावट के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति और माल को अलग करने का व्यय दोनों प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

(6) धारा 157 के अनुसार यदि निक्षेपगृहीता निक्षेपी की सहमति के बिना निक्षेपित वस्तु को अपनी निजी वस्तु के साथ मिला देता है और इसमाल में से निक्षेपित माल को अलग करना असम्भव है, तो निक्षेपी निक्षेपगृहीता से सम्पूर्ण माल की क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है।

(7) धारा 159 के अनुसार, निक्षेपी की अवधि के पहले या उद्देश्य के पूरा होने के पूर्व ही निक्षेप की गई वस्तु को वापस ले सकता है।

(8) धारा 160 के अनुसार, निक्षेपी निक्षेप की अवधि बीत जाने पर अथवा निक्षेप के उद्देश्य के पूरा हो जाने पर निक्षेपित वस्तु को वापस लेने का अधिकारी है।

(9) धारा 161 के अनुसार, किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निक्षेपी निक्षेपित वस्तु की वृद्धि तथा लाभ का भी प्राप्त करने का अधिकारी है।

5.6 निक्षेपगृहीता के कर्त्तव्य एवं दायित्व (Duties and Liabilities of Bailee)

(1) निक्षेप के सभी मामलों में निक्षेपगृहीता निक्षेपित माल की उतनी ही देखभाल करने के लिए बाध्य है, जितनी कि एक साधारण बुद्धि का मनुष्य सामान्य परिस्थिति में, उसी मात्रा के गुण और मूल्य के अपनी निजी माल के सम्बन्ध में करता है।

(2) निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि शर्तों को पूरी तरह पालन करने अन्यथा निक्षेपी अनुबन्ध समाप्त कर सकता है और निक्षेपित माल को वापस ले सकता है। (धारा 152)

(3) निक्षेप की शर्तों के विरीत वस्तु का उपयोग न करें। यदि निक्षेपगृहीता माल का अनाधिकृत उपयोग करता है अथवा माल को इस प्रकार उपयोग में लाता है, जो निक्षेप की शर्त के विपरीत है, तो वह ऐसे उपयोग से माल में होने वाली हानियों के लिए उत्तरदायी होगा। (धारा 154)

(4) निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने निजी माल के साथ निक्षेपी के माल को न मिलाये, यदि निक्षेपगृहीता ऐसा करता है, तो उसके दायित्व निम्नलिखित होंगे-

(क) यदि निक्षेपगृहीता निक्षेपों की सहमति से उसके माल को अपने निजी माल के साथ मिला देता है, तो इस मिलावट में निक्षेपी और निक्षेपगृहीता का हित उनके माल के अनुपात में होगा। (धारा 155)

(ख) यदि निक्षेपगृहीता, निक्षेपी की बिना सहमति के निक्षेपित माल को अपने निजी माल के साथ मिलाता है और माल को अलग-अलग किया जा सकता है, तो दोनों पक्षकार अपने-अपने माल के अधिकारी होंगे, लेकिन माल को अलग करने का व्यय एवं मिलावट से होने वाली क्षति स्वयं निक्षेपगृहीता को सहन करनी पड़ेगी। (धारा 156)

(ग) यदि निक्षेपगृहीता, निक्षेपी की सहमति के बिना, उसके माल को निजी माल के साथ इस तरह मिला देता है कि निक्षेप किये गये माल को दूसरे माल से अलग करना सम्भव न हो, तो निक्षेपी वस्तु की हानि के लिए, निक्षेपगृहीत से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है। (धारा 157)

(5) निक्षेप की समयावधि बीत जाने अथवा उद्देश्य के पूरा हो जाने पर निक्षेपगृहीता का कर्त्तव्य है कि वह निक्षेपी के निर्देशानुसार, बिना माँगे उसे माल वापस कर दे। (धारा 160)

(6) यदि निक्षेपगृहीता उचित समय के भीतर निक्षेपित माल को नहीं लौटाता, तो वह उस समय के बाद होनेवाली हानि अथवा क्षय के लिए उत्तरदायी होगा। (धारा 161)

(7) यदि निक्षेपित माल की वचनगृहीता के यहाँ कोई वृद्धि होती है अथवा निक्षेपित माल पर कुछ लाभ होता है तो निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसी वृद्धि या लाभ निक्षेपी को अथवा उसके आदेशानुसार माल के साथ ही वापस कर दें। (धारा 163)

(8) भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 117 के अनुसार, निक्षेपगृहीता को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिसमें निक्षेपी के अधिकार में बाधा उत्पन्न होती हो।

5.7 निक्षेपगृहीता के अधिकार (Rights of Bailee)

साधारण निक्षेपी के जो कर्त्तव्य है उन्हीं के आधार पर निक्षेपगृहीता के निम्नलिखित अधिकार होते हैं-

(1) निक्षेपगृहीता निक्षेपी से ऐसी क्षति को प्राप्त करने का अधिकारी हे जो उसे निक्षेपित माल के दोष के न बताने के कारण हुई है। (धारा 160)

(2) धारा 158 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता को निक्षेपी के लिए कोई वस्तु रखने, ले जाने अथवा कोई अन्य कार्य करने के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता है, तो वह निक्षेपी से ऐसे आवश्यक व्यय प्राप्त करने का अधिकारी है, जो उसके द्वारा निक्षेपी के लिए किये गये हैं।

इसके अलावे यदि निक्षेपगृहीता ने निक्षेपित माल के सम्बन्ध में कोई असाधारण व्यय किये हों तो वह निक्षेपी से ऐसे समस्त व्यय प्राप्त करने का अधिकारी है।

(3) धारा 159 के अनुसार, यदि निःशुल्क निक्षेप है तो निक्षेप में निर्दिष्ट समय व्यतीत अथवा उद्देश्य के पूरा होने के पूर्व निक्षेपी उधार दिये गये माल को वापस ले लेता है एवं निक्षेपी के इस व्यवहार के कारण निक्षेपगृहीता को उस माल से लाभ की तुलना में हानि अधिक हुई है तो निक्षेपी से हानि और लाभ के अन्तर को प्राप्त करने का अधिकारी है।

(4) धारा 164 के अनुसार, निक्षेपगृहीता निक्षेपी से ऐसी क्षति को प्राप्त करने का अधिकारी है जो निक्षेपगृहीता को निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में निक्षेपी के स्वामित्व सम्बन्धी दोषों के कारण हुई है।

(5) धारा 165 के अनुसार, यदि माल के स्वामियों द्वारा माल को निक्षेप किया गया है, तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निक्षेपगृहीता किसी एक सहस्वामी को अन्य स्वामियों की सहमति के बिना ही माल को लौटा सकता है।

(6) धारा 166 के अनुसार, यदि निक्षेपित माल में निक्षेपी का अधिकार नहीं है और निक्षेपगृहीता निक्षेपों के आदेशानुसार माल को सद्भाव से लौटा देता है, तो निक्षेपगृहीता ऐसी सुपुर्दगी के लिए माल के वास्तविक स्वामी के प्रति उत्तरदायी है।

(7) धारा 167 के अनुसार, यदि निक्षेपी के अलावा अन्य दूसरा व्यक्ति निक्षेपी माल के स्वामित्व का दावा करता है, तो वह न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है कि निक्षेपी को माल की सुपुर्दगी न दी जाय। ऐसी परिस्थिजाति में निक्षेपगृहीता को यह अधिकार होगा कि वह निक्षेपी को माल की सुपुर्दगी न करें।

(8) धारा 170 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहीता ने निक्षेपित वस्तु के लिए कोई सेवा की है, तो किसी विपरीत अनुबन्ध में उसे सेवा का पारिश्रमिक प्राप्त करने तक वस्तु को रोक रखने का अधिकार होता है।

(9) धारा 180 एवं 181 के अनुसार, यदि कोई तीसरा व्यक्ति दोषपूर्ण तरीके से निक्षेपगृहीता को निक्षेपित माल के प्रयोग अथवा अधिकार से वंचित करता है अथवा कोई क्षति पहुँचाता है, तो निक्षेपगृहीता को ऐसे सभी उपचार प्रयोग में लाने का अधिकार है जो कि माल के स्वामी को समान परिस्थितियों में उपलब्ध होते, यदि माल का निक्षेप न हुआ होता।

5.8 निक्षेप एवं निक्षेपगृहीता के तीसरे पक्ष के विरूद्ध अधिकार (Rights of Bailor and Bailee against Parties)

(i) यदि कोई तीसरा पक्ष निक्षेपगृहीता को निक्षेपित माल रखने या उपयोग करने से अनुचित रूप से रोकता है या माल को हानि पहुँचाता है तो निक्षेपगृहीता ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध वह सारी कार्यवाही करने का अधिकारी होता है जो माल का वास्तविक स्वामी कर सकता है।

(ii) निक्षेपी या निक्षेपगृहीता, दोनों में से कोई भी ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध मुकदमा करके मुआवजा प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार मुआवजे के रूप में जो भी रकम प्राप्त हो, उसे वे दोनों अपने हितों के अनुपात में बाँटेंगे।

(iii) यदि निक्षेप के अलावा कोई अन्य व्यक्ति निक्षेपित माल का स्वामी होने का दावा करता है तो भी निक्षेपगृहीता निक्षेपी को ही माल लौटा सकता है, वह माल के वास्तविक स्वामी के प्रति हेर-फेर (Conversion) के लिए

उत्तरदायी नहीं होगा। किन्तु ऐसा व्यक्ति न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देकर, निक्षेपित माल वापस किए जाने पर तब तक रोक लगवा सकता है जब तक कि उसके स्वामित्व का फैसला न हो जाये।

5.9 खोई हुई वस्तु पाने वाले की स्थिति (Position to the Finder to loose goods)

यदि किसी व्यक्ति को कोई वस्तु पड़ी हुई मिलती है तो वह उसे उठाने के लिए बाध्य नहीं है, किन्तु अगर वह उस वस्तु को उठाकर अपने कब्जे में कर लेता है तब उसकी स्थिति एक निक्षेपगृहीता के समान ही होती है। अतः उसके अधिकार एवं कर्त्तव्य भी निक्षेपगृहीता के समान ही होता है जो निम्नलिखित हैं-

कर्त्तव्य (Duties) - खोई हुई वस्तु पाने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह वस्तु के वास्तविक स्वामी को ढूँढने का यथासम्भव प्रयास करें। किन्तु जब वास्तविक स्वामी का पता नहीं चलता तो उसे उन सब कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है जो कानून द्वारा एक निक्षेपगृहीता के लिए निर्धारित किये गये हैं, जैसे- पायी हुई वस्तु की उचित देखभाल करना, उसका अनाधिकृत उपयोग न करना, उसे अपने माल के साथ न मिलाना, वास्तविक स्वामी का पता लगाने पर उसे वस्तु (वृद्धि सहित) लौटा देना इत्यादि।

अधिकार (Right) - खोई हुई वस्तु पाने वाले को अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं

(i) वस्तु को सुरक्षित रखने तथा वास्तविक स्वामी को ढूँढ़ने में किए गए खर्च एवं कष्ट का मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार।

(ii) उपरोक्त मुआवजे के लिए अधिकार

(iii) वस्तु के स्वामी द्वारा घोषित किया गया इनाम पाने व उसके लिए दावा करने का अधिकार,

(iv) विशिष्ट परिस्थितियों में वस्तु को बेचने का अधिकार।

5.10 निक्षेप की समाप्ति (Termination of Contract)

निम्नलिखित परिस्थितियों में निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है-

(i) यदि निक्षेप एक निश्चित अवधि के लिए किया गया है, तो उस अवधि के समाप्त होने पर निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(ii) जब वह उद्देश्य, जिसके लिए निक्षेप किया गया था, पूरा हो जाता है तब निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(iii) **यदि निक्षेपगृहीता निक्षेपित माल के सम्बन्ध में कोई ऐसा कार्य करता है जो निक्षेप की शर्तों के विरूद्ध है, तो निक्षेपी निक्षेप के अनुबन्ध समाप्त कर सकता है।**

(iv) निःशुल्क निक्षेप की स्थिति में निक्षेपी कभी भी निक्षेपित वस्तु वापस माँगकर अनुबन्ध समाप्त कर सकता है, भले ही निक्षेप किसी निर्दिष्ट अवधि, प्रयोजन के लिए किया गया है।

(v) यदि निक्षेप अथवा निक्षेपगृहीता में से किसी की भी मृत्यु हो जाती है तो निःशुल्क निक्षेप समाप्त हो जाता है।

ग्रहणाधिकार अथवा पूर्वाधिकार (Lien)

पूर्वाधिकार दो प्रकार का होता है, जो निम्नलिखित है-

(क) विशिष्ट पूर्वाधिकार (Particular lien) - किसी अन्य व्यक्ति के माल को अपने पास तब तक रोके रखने का अधिकार है जब तक कि उसे माल के सम्बन्ध में किया गया व्यय या परिश्रमिक न मिल जाये, विशिष्ट पूर्वाधिकार कहलाता है।

धारा 170 के अनुसार जब निक्षेपगृहीता ने निक्षेप के उद्देश्य के अनुसार निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में कोई ऐसी सेवा प्रदान की है, जिसमें श्रम तथा कौशल का उपयोग हुआ है, तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, वह उस वस्तु को तब तक अपने पास रोक रख सकता है, जब तक कि उसे सेवा का उचित पारिश्रमिक नहीं मिल जाता। यह निक्षेपगृहीता का एक व्यक्तिगत अधिकार है जो तब तक ही बना रहता है जब तक कि माल उसके कब्जे में रहता है।

(ख) सामान्य पूर्वाधिकार (General Lien) - जब एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के किसी भी माल को जो उसके कब्जे में है, उस समय तक रोके रखने का अधिकार प्राप्त हो जब तक कि उनका आपसी हिसाब चुकता न हो जाये, तो इसे सामान्य पूर्वाधिकार कहते हैं। सामान्य पूर्वाधिकार के अन्तर्गत एक पक्ष दूसरे पक्ष की ऐसी भी वस्तु को रोक सकता है जों निक्षेपगृहीता को उसके साधारण व्यवसाय के सम्बन्ध में निक्षेपित की गई हो।

पूर्वाधिकार की समाप्ति (Termination of Lien) - निम्नलिखित परिस्थितियों में पूर्वाधिकार समाप्त हो जाता है-

(i) निक्षेपगृहीता द्वारा पूर्वाधिकार का परित्याग किये जाने पर,

(ii) देय राशि का भुगतान हो जाने पर अथवा

(iii) माल का कब्जा खो देने पर।

5.13 गिरवी का अनुबंध (Contract of Pledge)

साधारणतः जब भी कोई व्यक्ति किसी से ऋण माँगता है तो वह उसे कोई मूल्यवान वस्तु जमानत के रूप में रखने के लिए कहता है ताकि अगर ऋण का भुगतान न हो तो वह उस वस्तु को बेचकर अपनी रकम वसूल कर सके। जब इस प्रकार कोई वस्तु निक्षेप की जाती है तो उसे गिरवी रखना कहा जाता है। धारा 172 के अनुसार, "जब किसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिए जमानत के रूप में कोई वस्तु निक्षेप की जाती है, तो इसे गिरवी कहते है। इस प्रकार माल की जमानत के रूप में रखने वाले को 'गिरवी रख लेने वाला' (Pawnee) कहा जाता है। जैसे-A अपना कुछ आभूषण B के पास रखकर 5000 रुपया ऋण लेता है। आभूषण को यह निक्षेप 'गिरवी अनुबन्ध' कहा जायेगा। इसमें A (pawnor) एवं B (Pawnee) है।

गिरवी अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्व (Essentials of valid pledge) -

गिरवी एक प्रकार का निक्षेप अनुबन्ध ही है। अतः इसमें एक निक्षेप अनुबन्ध के सभी तत्त्वों के अलावे निम्नलिखित तत्त्व होना चाहिए-

(i) केवल ऐसी वस्तुओं को ही गिरवी रखा जा सकता है जो विक्रय योग्य होती है। यह इसलिए जरूरी है कि अगर कर्त्ता (pawnor) अपने वचन का पालन न कर पाये तो गिरवी ग्राही (pawnee) उस वस्तु को बेचकर अपनी रकम वसूल कर सके।

(ii) मुद्रा (Money) को गिरवी नहीं रखा जा सकता।

(iii) यदि कोई माल किसी तीसरे व्यक्ति के कब्जे में हो और वह, गिरवीकर्त्ता के आदेशानुसार, इस माल को गिरवीग्राही के लिए रखे रहना स्वीकार करता है तो इसे भी वैध सुपुर्दगी माना जाता है।

(iv) माल का गिरवी अनुबन्ध हो जाने के बाद यदि किसी विशेष प्रयोजन के लिए माल गिरवीकर्त्ता के पास ही रहने दिया जाता है तो इससे गिरवी की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(v) गिरवीकर्त्ता के पास गिरवी रखे जाने वाले माल का कब्जा होना ही काफी नहीं, बल्कि उस माल पर उसका न्यायिक अधिकार भी होना चाहिए, अन्यथा उसके द्वारा निक्षेपित माल वैध गिरवी नहीं माना जायेगा। किन्तु कुछ परिस्थितियों में ऐसा व्यक्ति भी माल को गिरवी रख सकता है जो कि उसका वास्तविक स्वामी नहीं है।

5.14 गिरवी एवं निक्षेप में अन्तर (Difference between pledge and Bailment)

गिरवी एक विशेष प्रकार का निक्षेप अनुबन्ध है और गिरवी तथा निक्षेप के मुख्य लक्षण भी एक जैसा ही हैं, फिर भी दोनों में निम्नलिखित मुख्य अन्तर है-

(1) निक्षेप में वस्तुएँ देख-भाल, निजी उपयोग, मरम्मत अथवा रूप परिवर्तन के लिए दी जाती है, परन्तु गिरवी की स्थिति में ये ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिए जमानत रूप में दी जाती है।

(2) निक्षेप की स्थिति में सामान्यतः निक्षेप, निक्षेपित माल का उपयोग कर सकता है परन्तु गिरवीग्राही गिरवी रखे गये माल का उपयोग नहीं कर सकता।

(3) गिरवी की स्थिति में कई बार किसी विशेष प्रयोजन के लिए माल गिरवीकर्त्ता के पास ही रहने दिया जाता है, जबकि निक्षेप की स्थिति में निक्षेप का उद्देश्य पूरा होने तक माल निक्षेपगृहीता के कब्जे में रहता है।

(4) गिरवी की स्थिति में गिरवीकर्त्ता द्वारा भुगतान न किये जाने पर गिरवीग्राही उसे उचित सूचना देकर माल की बिक्री कर सकता है। परन्तु निक्षेप की स्थिति में निक्षेपगृहीता को माल पर केवल पूर्वाधिकार प्राप्त होता है, साधारणतः उसे माल की बिक्री का अधिकार नहीं होता।

5.15 गिरवी रखने वाले का अधिकार (Rights of Pawnor)

साधारणतया गिरवी रखने वाले के यही अधिकार होते है जो निक्षेपी के होते हैं, किन्तु इस अधिकार के अलावे निम्नलिखित विशिष्ट अधिकार भी है-

(i) यदि गिरवी रखने वाला निश्चित समय पर ऋण का भुगतान नहीं करता है अथवा गिरवी रख लेने वाला उचित सूचना देकर गिरवी रखी गयी वस्तु को बेच रहा है तो गिरवी रखने वाले को यह अधिकार होता है कि वह विक्रय के पूर्व ऋण का भुगतान करके वस्तु को छुड़ा लें। लेकिन उसे उन सभी व्ययों का भुगतान करना पड़ेगा जो उसकी त्रुटि के कारण गिरवी रख लेने वाले को करना पड़ा है। (धारा 177)

(ii) यदि गिरवी रखने वाला निश्चित समय पर ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन करता है तो उसे गिरवी रखी गयी वस्तु को वापस पाने का अधिकार होता हैं।

(iii) यदि, गिरवी रखे गये माल में कोई वृद्धि या लाभ हुआ है, तो गिरवी रखने वाला इस वृद्धि एवं लाभ को भी पाने का अधिकारी है।

(iv) यदि, गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखे गये माल का गलत उपयोग करता है तथा इस दुरूपयोग के कारण माल को कोई क्षति होती है तो गिरवी रखने वाले को यह अधिकार होता है कि वह गिरवी रख लेने वाले से क्षतिपूर्ति प्राप्त करें।

(v) यदि ऋण का भुगतान करने के लिए गिरवी के माल को बेचा जा सकता है एवं बिक्री से प्राप्त राशि, ऋण की राशि से अधिक हो, तो इस आधिक्य (Surplus) को गिरवी रखने वाला पाने का अधिकारी होगा।

5.116 गिरवी रखने वाले का कर्त्तव्य (Duties of Pawnor)

गिरवी रखने वाले के वहीं कर्त्तव्य होते हैं जो एक निक्षेपी का होता है। फिर भी गिरवी रखने वाले के प्रमुख कर्त्तव्य निम्नलिखित है-

(i) ऋण का भुगतान करना अथवा अपने वचन का निष्पादन करना।

(ii) गिरवी के माल की सुरक्षा के लिये किये गये असाधारण व्ययों का भुगतान करना। (धारा 175)

(iii) यदि गिरवी रख लेने वाला बाध्य होकर गिरवी रखे गये माल की बिक्री करता है और ऐसे बेचे गये माल की बिक्री से प्राप्त धनराशि बकाया धन (ब्याज व व्यय सहित) से कम ह ोने पर हानि की पूर्ति के लिए बाध्य होगा। (धारा 176)

(iv) ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन में त्रुटि होने पर गिरवी रख लेने वाले को यदि कोई क्षति होती है तो इस क्षति की पूर्ति करना।

5.17 गिरवी रखने वाले का अधिकार (Right of Pawnee)

गिरवी रखने वाले व्यक्ति के निम्नलिखित मुख्य अधिकार है-

(1) माल को रोकने का अधिकार (Right of retainer) - धारा 178 के अनुसार गिरवी रखने वाला गिरवी रखे गये माल को तबतक अपने पास रोके रख सकता है जबतक कि उसे मूल ऋण, उस देय ब्याज एवं माल को सुरक्षित रखने पर किए गए समस्त आवश्यक खर्चों का पूर्ण भुगतान नहीं मिल जाता। किन्तु इस विशिष्ट पूर्वाधिकार का उपयोग, किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, केवल उसी ऋण या वचन के लिए गिरवी रख लेने वाला कर सकता है जिसके लिए वह माल गिरवी रखा गया था, किसी अन्य ऋण या वचन के लिए नहीं।

(2) असाधारण व्यय प्राप्त करने का अधिकार - गिरवी रख लेने वाला, गिरवी रखने वाले से उन समस्त असाधारण खर्चों को भी प्राप्त करने का अधिकारी है जो उसने माल को सुरक्षित रखने के लिए किए हो। किन्तु आसाधारण व्ययों के भुगतान के लिए, वह गिरवी रखे हुए माल को रोक नहीं सकता, केवल दावा कर सकता है।

(3) बाद में दिए गए ऋण के लिए माल रोकने का अधिकार - यदि गिरवी रख लेने वाले गिरवी अनुबन्ध किए जाने के बाद उस गिरवीकर्त्ता को कुछ और ऋण देता है, तब किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में यह मान लिया जाता है कि जमानत के रूप में दी गई वस्तुओं को इस बाद में दिए गए ऋण के लिए भी रोका जा सकता है।

(4) गिरवीकर्त्ता के श्रेष्ठ अधिकार (Better title) - जब गिरवी रखने वाले व्यक्ति का वस्तु पर अधिकार व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त हुआ है, और गिरवी करते समय वह अनुबन्ध खण्डित नहीं किया गया है, तो गिरवी रख लेने वाले को उस वस्तु पर श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जाता है, बशर्ते कि उसने वस्तु को सद्‌भावना से प्राप्त किया हो और उसे गिरवी रखने वाले के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी न हो।

(5) गिरवी कर्त्ता द्वारा त्रुटि की स्थिति में प्राप्त अधिकार - यदि गिरवी रखने वाला निश्चित समय पर ऋण का भुगतान या अपने वचन का पालन नहीं करता तो गिरवी रख लेने वाले को निम्नलिखित विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं-

(i) वह गिरवी रखे हुए माल को समपार्श्विक जमानत के रूप में अपने पास रोककर गिरवीकर्त्ता के विरूद्ध ऋण अथवा वचन के पालन के लिए मुकदमा कर सकता है।

(ii) वह माल को जमानत के रूप में रोक सकता है, एवं

(iii) वह गिरवीकर्त्ता को उचित सूचना देकर गिरवी रखे हुए माल को बेच सकता है, अगर गिरवी रखे गए माल को बेचने पर भी सम्पूर्ण राशि का भुगतान नहीं हो पाता तो वह शेष रकम गिरवीकर्त्ता से वसूल कर सकता है। किन्तु अगर उसे माल बेचने से देय राशि से अधिक बाध्य है।

5.18 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य (Duties of Pawnee)

(i) गिरवी के अन्तर्गत प्राप्त माल की उचित देख-भाल करना एवं उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करना।

(ii) गिरवी पर रखे गए माल का उपयोग न करना।

(iii) उस माल को अपने माल से पृथक रखना।

(iv) गिरवी की अवधि समाप्त होने पर माल को उसके स्वामी को लौटाना।

(v) गिरवीकर्त्ता की त्रुटि की स्थिति से उसका माल बेचने के पूर्व उसे उचित सूचना देना।

(vi) असाधारण व्यय पाने के लिए गिरवी के माल को न रोकना, एवं

(vii) गिरवी के माल में हुई वृद्धि अथवा लाभ को माल के साथ वापस करना।

5.19 अ-स्वामी द्वारा गिरवी (Pledge by Non-owners)

साधारणतः केवल वस्तुओं का वास्तविक स्वामी उसके द्वारा अधिकृत ही उन्हें गिरवी रख सकता है यदि कोई अन्य व्यक्ति, जो कि माल का वास्तविक स्वामी नहीं है, उसे गिरवी रखता है तो गिरवी का वह अनुबन्ध व्यर्थ होता है। यह नियम वस्तुओं के वास्तविक स्वामी के हितों की रक्षा के लिए बनाया है, अन्यथा कोई भी व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति का माल उठाकर गिरवी रख देगा। किन्तु कुछ परिस्थितियों में एक अ-स्वामी द्वारा किया गया गिरवी का अनुबन्धभी वैध माना जाता है, जो निम्नलिखित है-

(i) व्यापारिक एजेन्ट द्वारा गिरवी - धारा 178 के अनुसार यदि किसी व्यापारिक एजेन्ट द्वारा माल की गिरवी रखी जाती है और निक्षेपगृहीता ने यह कार्य सद्भावना से किया है तो यह गिरवी उसी प्रकार वैध होगी जैसे वास्तविक स्वामी द्वारा रखने पर होती है।

(ii) व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी - यदि गिरवी कर्त्ता ने कोई माल एक व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त किया है और वह अनुबन्ध निरस्त किए जाने के पूर्व ही, उसे गिरवी रख देता है तो गिरवी का अनुबंध वैध होगा, बशर्ते कि गिरवी रख लेने वाले ने सद् विश्वास के साथ काम किया हो एवं उसे गिरबीकर्त्ता के दोषपूर्ण अधिकार की कोई जानकारी न रही हो।

(iii) माल पर सीमित हित रखने वाले द्वारा गिरवी - यदि गिरवीकर्त्ता माल का वास्तविक स्वामी नहीं है किन्तु उस माल में उसका कुछ हित निहित है तो ऐसे माल की गिरवी उसी सीमा तक वैध होगी जितनी सीतनी सीता तक गिरवीकर्त्ता का हित उसमें निहित है।

(iv) सह-स्वामी द्वारा गिरवी - यदि किसी वस्तु में दो या दो से अधिक स्वामी है एवं उनमें से कोई सह स्वामी

ऐसे माल को गिरवी रख देता है, तो वह गिरवी वैध मानी जायेगी, बशर्ते गिरवीगृहीता को इस तथ्य की जानकारी न हो।

(v) विक्रय के बाद माल का अधिकार रखने वाले क्रेता द्वारा गिरवी - वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 30 के अनुसार, यदि विक्रय के बाद माल पर अधिकार रखने वाले क्रेता या विक्रेता द्वारा माल की गिरवी रखी जाती है तो 'ऐसे माल की गिरवी वैध मानी जाती है, चाहे ऐसे माल का मूल्य चुका दिया हो अथवा नहीं, बशर्ते गिरवी रख लेने वाले क्रेता या विक्रेता के इस दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी न हो।

5.20 सारांश (Summing up)

निक्षेप के अन्तर्गत कोई वस्तु एक निर्धारित उद्देश्य से किसी व्यक्ति के पास एक निर्धारित समय के लिये रखा जाता है तथा उद्देश्य के पूरा हो जाने पर वस्तु उसके मालिक को वापस कर दिया जाता है जबकि गिरवी पक्ष सम्पत्ति के जमानत पर ऋण लेने का एक माध्यम है निक्षेपी का अधिकार निक्षेपगृहीता का कर्त्तव्य तथा निक्षेपी का कर्त्तव्य निक्षेपगृहीता का अधिकार माना जाता है।

5.21 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. निक्षेपी तथा निक्षेपगृहीता के अधिकार एवं कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये।

5.22 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 6 एजेन्सी अनुबन्ध

(Contract of Agency)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

6.0 उद्देश्य (Objective)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 एजेन्सी के नियम

6.3 एजेन्सी की जाँच

6.4 एजेन्टों के प्रकार

6.4.1 विशिष्ट एजेन्ट

6.4.2 सामान्य एजेन्ट

6.5 एजेन्सी की स्थापना.

6.5.1 स्पष्ट समझौते द्वारा

6.5.2 गर्भित समझौते द्वारा

6.5.3 पुष्टीकरण द्वारा

6.5.4 पुष्टिकरण से सम्बन्धित नियम

6.5.5 पत्नी, एजेन्ट के रूप में

6.6 एजेन्ट के अधिकार का विस्तार

6.7 एजेन्ट के अधिकार का हस्तांतरण

6.8 नियोक्ता एजेन्ट एवं उप-एजेन्ट के बीच वैधानिक सम्बन्ध

6.9 उप-एजेन्ट एवं स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर

6.10 एजेन्सी की समाप्ति

6.11 अखण्डनीय एजेन्सी

6.12 एजेन्सी के खण्डन सम्बन्धी अन्य नियम

6.13 एजेन्ट का प्रधान के प्रति कर्त्तव्य

6.14 प्रधान के विरूद्ध एजेन्ट के अधिकार

6.15 एजेन्ट के प्रति प्रधान का कर्त्तव्य एवं अधिकार

6.15.1 प्रधान की तीसरे पक्षकारों के प्रति दायित्व

6.16 अप्रकट प्रधान

6.17 बनावटी या कुटिल एजेन्ट

6.18 तीसरे पक्षकार के प्रति एजेन्ट का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

6.19 सारांश (Summuing up)

6.20 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

6.21 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

6.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य छात्रों को एजेंसी सम्बन्धी नियमों के बारे में विस्तृत जानकारी देना है।

6.1 परिचय (Introduction)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में व्यापार का क्षेत्र बहुत ही वयपक हो गया है। किसी भी व्यापारी के लिए व्यापार के समस्त कार्यों एवं अनुबंधों को व्यक्तिगत रूप से करना सम्भव नहीं रह गया है। जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से कार्य या अनुबन्ध करता है तो इस अन्य व्यक्ति को एजेन्ट कहते हैं।

अधिनियम की धारा 182 के अनुसार, ''एजेन्ट एक ऐसा व्यक्ति है जिसे किसी अन्य व्यक्ति के लिए कार्य करने या अन्य पक्षों के साथ किये गये व्यवहारों में प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है। जिस व्यक्ति के लिए कार्य किया जाता है या जिसका प्रतिनिधित्व किया जाता है, उसे 'प्रधान' कहते हैं। उदाहरण के लिए, A बम्बई से कपड़ा खरीदने के लिए B को नियुक्त करता है। इसमें A प्रधान (Principal) एवं B एजेन्ट (Agent) है और इनके मध्य हुए सम्बन्ध को 'एजेन्सी' कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि एजेन्ट का कार्य, प्रधान एवं अन्य पक्षों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है। उसका मुख्य कार्य केवल दो पक्षों को मिलाना है। एजेन्सी का सार ही यह यह है कि एजेन्ट को प्रधान से ऐसी व्यक्ति या अधिकार प्राप्त होने हैं जिनके अन्तर्गत कार्य करके अन्य पक्षों के प्रति वह प्रधान को बाध्य करता, किन्तु प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति के लिए कार्य करता है, एजेन्ट नहीं कहला सकता। जैसे- एक घरेलू नौकर अपने मालिक का काम करता है। कारखाने में श्रमिक कार्य करते हैं, परन्तु इन्हें एजेन्ट नहीं माना जा सकता, क्योंकि वे अपने प्रधान के लिए तीसरे पक्षों के साथ अनुबन्ध करने के अधिकारी नहीं होते।

6.2 एजेन्सी के नियम

एजेन्सी के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण नियम है, जो निम्नलिखित है-

(क) अनुबंध करने के योग्य व्यक्ति जो कार्य स्वयं कर सकता है, वह उन सब कार्यों को एजेन्ट द्वारा भी करा सकता है, किन्तु व्यक्तिगत प्रकृति वाले कार्य जैसे चित्र बनाने का कार्य एजेन्ट से नहीं कराये जा सकते। इसी प्रकार एजेन्ट द्वारा विवाह नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह व्यक्तिगत प्रकृति का कार्य है।

(ख) एजेन्ट द्वारा किए गए कार्य प्रधान द्वारा किये गये कार्य माने जाते हैं। धारा 226 के अनुसार, एजेन्ट द्वारा किये गये अनुबन्धों एवं दायित्वों के लिए प्रधान ठीक उसी प्रकार बाध्य होगा जैसा कि वह कार्य उसने स्वयं किये हों।

6.2 एजेन्सी की जाँच (Test of Agency)

यह मालूम करने के लिए कि कोई व्यक्ति एजेन्ट है या नहीं, हमें पक्षकारों के संबंधों की वास्तविक प्रकृति एवं एजेन्ट के कार्य को देखना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्यों से प्रधान एवं तीसरे पक्ष के बीच वैधानिक संबंध स्थापित करता है अर्थात् उसके कार्यों से प्रधान तीसरे पक्ष के प्रति बाध्य होता है, तब एजेन्सी का संबंध विद्यमान माना जायेगा, अन्यथा नहीं किन्तु जो व्यक्ति व्यापारिक मामलों पर सलाह देता है, उसे एजेन्ट नहीं कहते।

एजेन्ट की नियुक्ति :

साधारणतया कोई भी व्यक्ति जो अनुबन्ध करने की योग्यता रखता है, एजेन्ट की नियुक्ति कर सकता है। अनुबन्धक अधिनियम की धारा 183 के अनुसार 'कोई भी व्यक्ति उस विधि के अनुसार जिसके वह अधीन है, वयस्क आयु का है और स्वस्थ मस्तिष्क का, एजेन्ट को नियुक्त कर सकता है।

अब प्रश्न है कि एजेन्ट किसे नियुक्त किया जा सकता है ? साधारणतया नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कोई भी व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है। अनुबन्ध अधिनियम धारा 184 के अनुसार "नियोक्ता और तीसरे पक्षकार के बीच कोई भी व्यक्ति एजेन्ट हो सकता है, किन्तु कोई भी ऐसा व्यक्ति, जो वयस्क एवं स्वस्थ मस्तिष्क का नहीं है, नियोक्ता की ओर से कार्य करके उसके प्रति उत्तरदायी नहीं बन सकता।" अतः एजेन्ट होने के लिए व्यक्ति में अनुबन्ध योग्यता का होना अनिवार्य नहीं है क्योंकि एजेन्ट स्वयं अनुबन्ध का पक्षकार नहीं होता वरन् यह नियोक्ता एवं तीसरे पक्षकार के मध्य अनुबन्ध करता है। अतः एक अवयस्क अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति भी एजेन्ट बन सकता है।

6.4 एजेन्टों के प्रकार (Types of Agents)

एजेन्टों को उनके अधिकार क्षेत्र, कार्य क्षेत्र एवं उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के आधार पर बाँटा जा सकता है। 'अधिकार क्षेत्र' के आधार पर एजेन्ट दो प्रकार के होते हैं-

6.4.1 विशिष्ट एजेन्ट (Special Agent) -

जब किसी व्यक्ति को कोई विशिष्ट कार्य करने या किसी विशेष अनुबन्ध के लिए नियुक्त किया जाता है तो उसे 'विशिष्ट एजेन्ट' कहते हैं, जैसे- मकान बेचने के लिए नि युक्त किया गया एजेन्ट। ऐसे एजेन्ट का अधिकार क्षेत्र सीमित होता है, उसे केवल वही कार्य करने का अधिकार होता है जिसके लिए उसकी नियुक्ति की गई है। यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कोई कार्य करता है तो प्रधान उसके लिए बाध्य नहीं होता। ऐसे एजेन्टों का अधिकार उसी समय समाप्त हो जाता है जब वह कार्य पूरा हो जाता है जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया गया था।

6.4.2 सामान्य एजेन्ट (General Agent) -

'सामान्य एजेन्ट' ऐसे व्यक्ति को कहते हैं, जिसे अपने अधिकार क्षेत्र में या सम्बन्धित व्यापार के दौरान वे समस्त कार्य करने का अधिकार होता है जो उस प्रकार के व्यापार में साधारणतया किये जाते हैं। यदि प्रधान अपने सामान्य एजेन्ट के अधिकार क्षेत्र को सीमित कर देता है तब भी वह एजेन्ट के कार्यों से पूर्णतया बाध्य होगा, जब तक कि तीसरे पक्ष को एजेन्ट के सामान्य अधिकार को सीमित करने के बारे में कोई सूचना न दे दी गई हो।

'कार्य-क्षेत्र' के आधार पर भी एजेन्ट दो प्रकार के हो सकते हैं- देशी एवं विदेशी एजेन्ट (Home and Foregin Agent) यदि किसी एजेन्ट का कार्य अपने देश तक ही सीमित होता है, तो उसे 'देशी एजेन्ट' कहा जाता है।

इसके विपरीत यदि किसी एजेन्ट का कार्य केवल विदेशों से ही सम्बन्धित होता है, तो उसे विदेशी एजेन्ट कहा जाता है।

एजेन्टों द्वारा किये जाने वाले कार्यों के आधार पर एजेन्ट दो प्रकार के होते हैं-

(क) गैर-व्यापारिक एजेन्ट (Non-Mercantile Agent) - जब कोई एजेन्ट गैर व्यापारिक कार्य या सेवा प्रदान करने के लिए नियुक्त किये जाते हैं, तो 'गैर-व्यापारिक एजेन्ट' कहलाते हैं। इनका सम्बन्ध व्यापार से बिल्कुल नहीं होता। जैसे-सम्पत्ति का दलाल, कानूनी एजेन्ट इत्यादि।

(ख) व्यापारिक एजेन्ट (Mercantile Agent) - यदि कोई व्यक्ति किसी व्यापारी द्वारा व्यापार सम्बन्धी कार्यों के लिए, प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त होता है, तो उसे 'व्यापारिक एजेन्ट' कहा जाता है। इनका कार्य उत्पादकों और थोक विक्रेताओं के बीच अथवा विक्रेताओं और फुटकर विक्रेताओं के बीच मध्यस्थता करना है। 'व्यापारिक एजेन्ट' निम्नलिखित रूप के हो सकते हैं-

(i) दलाल (Brokers) - दलाल एक ऐसा एजेन्ट है जो दलाली के प्रतिफल में दो पक्षकारों के बीच अनुबन्ध में सहायता पहुँचाता है। इसे माल पर कब्जा नहीं दिया जाता है।

(ii) आढ़तिया (Factors) - आढ़तिया की नियुक्ति प्रधान द्वारा भेजे या सुपुर्द किये गये माल की बिक्री करने के उद्देश्य से की जाती है। इसे अपने नाम से प्रधान का माल बेचने का अधिकार होता है।

(iii) नीलामकर्त्ता (Auctioner) - ऐसे एजेन्ट की नियुक्ति वस्तुओं की नीलामी द्वारा बिक्री के लिए होती है। यह नीलाम में प्राप्त रकम से अपना कमीशन काट शेष धन नियोक्ता को लौटा देता है।

(iv) कमीशन एजेन्ट (Commission Agent) - यह अपने नियोक्ता के लिए माल का क्रय एवं विक्रय दोनों कार्य करता है एवं पारिश्रमिक के रूप में कमीशन पाता है।

(v) परिशोधी एजेन्ट (Declared Agent) - यह एजेन्ट अतिरिक्त कमीशन के बदले अपने प्रधान से वह वायदा करता है कि उधार बेची गयी रकम का भुगतान प्राप्त न होने पर वह स्वयं प्रधान को ऐसी रकम का भुगतान कर देगा।

(vi) बैंकर (Banker) - सामान्यतः बैंकर तथा ग्राहक के बीच; ऋणी एवं महाजन का सम्बन्ध होता है। किन्तु बैंकर अपने ग्राहकों के लिए एजेन्ट का कार्य भी करता है। जैसे-ग्राहकों के लिए प्रतिभूतियां क्रय एवं विक्रय करना, ब्याज, लाभांश, चेक एवं बिल का रुपया वसूलना।

6.5 एजेन्सी की स्थापना (Creation of Agency)

एजेन्सी की स्थापना निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती है-

6.5.1 स्पष्ट समझौते द्वारा (By Expressed Agreement) -

अनुबन्ध करने के योग्य प्रत्येक व्यक्ति स्पष्ट समझौता करके अपने लिए एजेन्ट नियुक्त कर सकता है। यह समझौता लिखित या मौखिक हो सकता है। साधारणतः व्यापारिक जगत में मौखिक रूप से ही एजेन्ट नियुक्त किये जाते हैं, क्योंकि यदि इस प्रकार से निर्मित एजेन्सी को मान्यता न दी जाये, तब व्यापार करना बहुत कठिन हो जायेगा। लिखित एजेन्सी प्रायः एक मुखतारनामें (Power of Attorney) के रूप में होती है जिसमें एजेन्ट के अधिकार-क्षेत्र का वर्णन होता है।

6.5.2 गर्भित समझौते द्वारा (By Implied Agreement) -

कभी-कभी पक्षकारों के आचरण, परिस्थितियों तथा सम्बन्धों के कारण भी एजेन्सी सम्बन्ध उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति अन्य पक्षों को यह आभास देता है कि अमुक व्यक्ति को उसका प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है तब भी एजेन्सी की स्थापना हो जाती है। गर्भित समझौते द्वारा एजेन्सी के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं-

(i) गत्यवरोध द्वारा एजेन्सी (Agency by stopped) - गत्यवरोध के नियम के अनुसार जब कोई व्यक्ति अपने कथन या आचरण द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को कुछ परिस्थितियों या तथ्यों के होने का विश्वास दिलाता है और दूसरा व्यक्ति उस कथन या व्यवहार पर विश्वास करके कोई अनुबन्ध करता है तो बाद में पहला व्यक्ति ऐसे कथन की सत्यता से इन्कार नहीं कर सकता।

धारा 337 के अनुसार, ''जब एक एजेन्ट बिना किसी अधिकार के प्रधान की ओर से तीसरे पक्ष के प्रति कोई दायित्व ले लेता है तब प्रधान ऐसे कार्यों या दायित्वों के लिये तभी बाध्य किया जा सकेगा जब उसने अपने कथन या आचरण से तीसरे पक्षकारों को ऐसा आभास दिया हो कि वह कार्य या दायित्व एजेन्ट के अधिकार क्षेत्र में था।'' उदाहरण के लिए, A, B को कुछ माल इस आदेश के साथ भेजता है कि एक निश्चित मूल्य से कम पर न बेचा जाय। C, B से वह माल निश्चित मूल्य से कम पर खरीदने का अनुबन्ध कर लेता है। C को कम मूल्य पर न बेचने के आदेश की जानकारी नहीं थी। ऐसे में A विक्रय के इस अनुबन्ध से पूर्णतया बाध्य होगा।

(ii) प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी (Agency by Holding Out) - 'प्रदर्शन' सिद्धान्त के अनुसार प्रधान द्वारा कोई स्वीकारात्मक कार्य अवश्य किया जाना चाहिए जिससे यह प्रकट हो कि प्रधान ने एजेन्ट नियुक्त कर रखा है। ऐसी स्थिति में एजेन्ट के कार्यों के लिए प्रधान उत्तरदायी होगा। उदाहरण के लिए, राम अपने नौकर करीम को उधार खरीदने के लिए भेजता है एवं बाद में माल के मूल्य का भुगतान कर देता है। इस प्रकार के कई व्यवहार हुए। बाद में एक बार वह उधार माल खरीद कर भाग जाता है। राम मूल्य चुकाने के लिए बाध्य होगा क्योंकि उसने अपने आचरण द्वारा प्रकट किया था कि करीम को उसके लिए उधार माल क्रय करने का अधिकार था।

आवश्यकता द्वारा एजेन्सी (Agency by Necessity) -

यदि प्रधान स्पष्ट रूप से किसी को एजेन्ट नियुक्त नहीं करता परन्तु परिस्थितियों के कारण कोई अन्य व्यक्ति उसके लिए कोई कार्य करता है तब कानून ऐसे व्यक्ति को एजेन्ट मान लेता है। इसे आवश्यकता द्वारा एजेन्सी कहते हैं। उदाहरण के लिए यात्रा के दौरान जहाज क्षतिग्रस्ता हो जाता है। जहाज का कप्तान जहाजी कंपनी के नाम उधार धन लेकर जहाज की मरम्मत करता है। जहाजी कम्पनी कम्तान द्वारा लिये हुए ऋण के लिए उत्तरदायी होगा।

आवश्यकता द्वारा एजेन्सी उस स्थिति में ही लागू होती है जब एजेन्ट प्रधान के हितों की रक्षा के लिए अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कोई कार्य करता है। आवश्यकता द्वारा एजेंसी के लिए निम्नलिखित शर्तो का पूरा होना आवश्यक है-

(क) संकटकालीन परिस्थिति होनी चाहिए,

(ख) प्रधान से संपर्क करके राय न ली जा सकती हो,

(ग) कार्य करने वाले व्यक्ति ने सद्‌भावना का पालन किया हो, एवं

(घ) परिस्थितियों के अनुसार कार्य प्रधान के हितों की रक्षा के लिए किया गया हो।

6.5.3 पुष्टीकरण द्वारा (By Retification) -

जब कोई एजेन्ट प्रधान से अधिकार प्राप्त किये बिना अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कोई कार्य करता है तो प्रधान उसके कार्य के लिए बाध्य नहीं होता। किन्तु वह यदि चाहे तो ऐसे कार्य को स्वीकार कर सकता है। इस स्वीकृति को 'पुष्टीकरण' कहते हैं।

धारा 196 के अनुसार, "जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए, बिना उसकी जानकारी या अधिकार के कोई कार्य करता है, तो दूसरा व्यक्ति उस कार्य को अपना सकता है अथवा अस्वीकार कर सकता है। यदि वह उसे अपनाता है तो इसका वही प्रभाव होगा जैसे कि वह कार्य उसके अधिकार से किया गया था।"

पुष्टीकरण स्पष्ट या गर्भित हो सकता है। किन्तु स्पष्ट पुष्टिकरण का संवहन होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए रवि बिना किसी अधिकार के दो बोरी चावल रीतेश के लिए खरीद लेता है। रवि के इस कार्य के लिए रीतेश बाध्य नहीं है किन्तु यदि रीतेश चाहे तो वह रवि के इस कार्य को स्वीकार कर सकता है। रवि द्वारा किये जाने की सूचना मिलने के बाद यदि रीतेश उस चावल को सुरेश को बेच देता है तो रीतेश के आचरण से रवि के कार्य का पुष्टिकरण कर दिया माना जाता है।

6.5.4 पुष्टिकरण से सम्बन्धित नियम (Rules relating to Retification) -

पुष्टिकरण तभी वैध माना जाता है जब निम्नलिखित शर्तें पूरी हो-

(i) जब एजेन्ट ने अपने प्रधान के लिए या उसके नाम से अनुबन्ध किया हो। यदि एजेन्ट अपने नाम से अनुबन्ध करता है एवं एजेंसी के बारे में नहीं बताता, तो प्रधान उसे नहीं अपना सकता। अतः अनुबन्ध करते समय तीसरे पक्ष को यह पता होना चाहिए कि एजेन्ट किसी प्रधान के लिए कार्य कर रहा है।

(ii) अनुबन्ध के समय प्रधान का अस्तित्व होना चाहिए अर्थात् पुष्टिकरण उसी व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो कार्य के लिए विद्यमान हो। जैसे- किसी कम्पनी के सम्मेलन से पूर्व प्रवर्त्तकों द्वारा किए गये अनुबन्धों का पुष्टिकरण नहीं किया जा सकता।

(iii) प्रधान में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए। अर्थात् एजेन्ट द्वारा अनुबन्ध किए जाने वाले दिन एवं पुष्टिकरण के समय दोनों ही दिन, प्रधान में अनुबन्ध की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। क्योंकि पुष्टिकरण उस समय से लागू होता है जब एजेन्ट ने कार्य किया था। अतः यह जरूरी है कि उस समय प्रधान में अनुबन्ध करने की क्षमता मौजूद रही हो।

(iv) पुष्टिकरण करते समय प्रधान को अनुबन्ध करने के समस्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी होनी जरूरी है। धारा 198 के अनुसार यदि प्रधान को समस्त तथ्य नहीं बताये जाते या गलत बताये जाते हैं तो प्रधान पुष्टिकरण के लिए बाध्य नहीं होगा।

(v) सम्पूर्ण व्यवहार या अनुबन्ध की पुष्टि हो सकती है, उसके किसी भाग को नहीं। आंशिक पुष्टिकरण वैध नहीं होता।

(vi) जब समय निर्धारित न किया गया हो तो पुष्टिकरण उचित समय के भीतर ही किया जाना चाहिए। पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी की स्थापना उस तिथि से मानी जाती है, जबकि एजेन्ट द्वारा वह कार्य किया गया था।

(vii) केवल वैध कार्यों की ही पुष्टि की जा सकती है। जो कार्य आरम्भ से ही व्यर्थ अथवा अवैधानिक है उन्हें बाद में नहीं अपनाया जा सकता।

(viii) तीसरे पक्ष को हानि पहुँचाने वाले कार्यों की पुष्टि नहीं की जा सकती है। धारा 200 के अनुसार किसी भी ऐसे कार्य को नहीं अपनाया जा सकता जिसके पुष्टिकरण से किसी तीसरे पक्ष को हानि पहुँचे। जैसे-रवि रीतेश की भूमि का पट्टेदार है, जिसे तीन माह की सूचना देकर समाप्त किया जा सकता है। कमल, रीतेश की सहमति के बिना पट्टे की समाप्ति की सूचना रवि को दे देता है। रीतेश इस नोटिस का पुष्टीकरण नहीं कर सकता है। नियोक्ता केवल उसी कार्य का पुष्टिकरण कर सकता है जिसका उसे अधिकार है।

6.5.5 पत्नी, एजेन्ट के रूप मे (Wife as an Agent) -

साधारणतः पति-पत्नि एक दूसरे के एजेन्ट नहीं होते। किन्तु पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व पति पर होता है। अगर वह इस दायित्व का पालन नहीं करता तो पत्नी अपने पति के नाम से वस्तुएँ उधार खरीद सकती है और पति उसका मूल्य चुकाने के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होता है। गिरधारीलाल बनाम कोफोर्ड के केस में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह नियम बनाया कि पत्नी के ऋणों के लिए पति का दायित्व एजेन्सी के सिद्धान्त पर आधारित है। अतः पति केवल उसी परिस्थिति में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जब यह सिद्ध किया जा सके कि जो कार्य पत्नी ने किए हैं उनके लिए पति ने स्पष्ट या गर्भित रूप से पत्नी को अधिकार दे रखे थे। किन्तु कठिनाई तब होती है जब पति ने पत्नी को इस प्रकार के स्पष्ट अधिकार नहीं दिए होते। निम्नलिखित परिस्थितियों में पत्नी को पति के एजेन्ट के रूप में कार्य करने का गर्भित अधिकार मिलता है-

(क) जब पति-पत्नी एक साथ रहते हों- यदि पति एवं पत्नी साथ-साथ रहते हैं जब पत्नी को पति की साख पर जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उधार खरीदने का गर्भित अधिकार माना जाता है। किन्तु पति निम्नलिखित में से एक भी बात सिद्ध कर दें तो अपने दायित्व से बच सकता है-

(i) उसने पत्नी को उधार वस्तुएँ खरीदने या ऋण लेने से स्पष्ट रूप से मना कर दिया था,

(ii) खरीदी गई वस्तुएँ आवश्यक वस्तुओं की श्रेणी में नहीं आती,

(iii) पत्नी को अनिवार्य वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त नकद राशि दे दी गई थी.

(iv) उसने दुकानदारों को स्पष्ट रूप से सूचना दे दी थी कि उसकी पत्नी को उधार माल न दिया जाय।

(ख) जब पति-पत्नी अलग-अलग रहते हैं - यदि पत्नी अपने पति से अलग रहती है तब पति का दायित्व निर्धारित करने के लिए यह जानना जरूरी है कि वह पति की गलती के कारण अलग रहती है अथवा स्वयं अपनी इच्छा से।

(i) जब पत्नी अपने दोष के बिना पति से अलग रहती है एवं पति उसके भरण-पोषण के लिए उचित व्यवस्था नहीं करता तब पत्नी को पति की साख पर आवश्यकता की वस्तुएँ उधार खरीदने का गर्भित अधिकार होता है। ऐसी परिस्थिति में पति द्वारा स्पष्ट मना कर दिय जाने से भी उसका दायित्व समाप्त नहीं हो सकता है।

(ii) जब पत्नी स्वेच्छा से एवं बिना किसी उचित कारण से पति से अलग रहती है तब आवश्यकता की वस्तुओं के लिए भी पति का कोई दायित्व नहीं होता, ऐसी स्थिति में पत्नी को पति का एजेन्ट नहीं माना जाता।

6.6 एजेन्ट के अधिकार का विस्तार (Extent of Agent's Authority)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 188 एवं 189 में एजेन्ट के अधिकारों की सीमा अथवा विस्तार को इस प्रकार बताया गया है, एक एजेन्ट जिसे एक कार्य करने का अधिकार है, उसे उस कार्य से सम्बन्धित ऐसे सभी कार्य करने का अधिकार होता है जो उस कार्य को करने के लिए आवश्यक हो। किसी व्यापार को चलाने का अधिकार रखने वाले एजेन्ट को ऐसे समस्त वैधानिक कार्य करने का अधिकार होता है जो उसे व्यापार को चलाने के लिए आवश्यक है या जो ऐसे व्यापार को चलाने के लिए साधारणतया किये जाते हैं।

उदाहरण के लिए, लन्दन निवासी A ने B को बम्बई में एक ऋण वसूल करने के लिए एजेन्ट नियुक्त किया. ऋण वसूल करने के लिए B कोई भी वैध तरीका अपना सकता है एवं ऋण वसूल करके ऋणी को वैध मुक्ति भी दे सकता है।

एजेन्ट का अधिकार (expressed) या गर्भित (implied) हो सकता है। लिखित या मौखिक शब्दों में दिये गये अधिकार को 'स्पष्ट अधिकार' कहते हैं। इसके विपरीत, जब परिस्थितियों के आधार पर अथवा पक्षों के मौखिक या लिखित शब्दों एवं व्यापार के रीति-रिवाजों को ध्यान में रखकर एजेन्ट के अधिकारों का अनुमान लगाया जाता है, तो उसके अधिकार 'गर्भित' माने जाते हैं।

यदि प्रधान ने एजेन्ट को व्यापार से सम्बन्धित कार्य करने का गर्भित अधिकार दे रखा है तब एजेन्ट यदि उस व्यापार की परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों के अनुसार कार्य करता है तब भले ही प्रधान ने गुप्त रूप से उसके अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध ल गा दिये हों, प्रधान एजेन्ट के कार्यों से बाध्य होता है उदाहरण के लिए A अपने एजेन्ट B पर यह रोक लगाता है कि वह 10,000 रुपये से अधिक का माल उधार नहीं क्रय कर सकता है, किन्तु B 12,000 रुपये का माल उधार क्रय पर लेता है, तब A, B के इस कार्य के लिए बाध्य होगा, क्योंकि तीसरे पक्षकारों को इस प्रकार मुक्त रूप से लगाई गयी रोक का ज्ञान नहीं होता।

आपातकाल की स्थिति में एजेन्ट को प्रधान के हितों की रक्षा के लिये, वे सब कार्य करने का अधिकार होता है जो कि एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति, उन्हीं परिस्थितियों में अपने लिये करता। किन्तु इस प्रकार का अधिकार एजेन्ट को तभी मिलता है, जब वह प्रधान से आदेश प्राप्त करने की स्थिति में नहीं होता है।

6.7 एजेन्ट के अधिकार का हस्तांतरण (Delegation of Authority by Agent)

एजेन्सी का यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि एजेन्ट अपने अधिकार को हस्तांतरित नहीं कर सकता। प्रधान किसी व्यक्ति को अपना एजेन्ट इसलिये नियुक्त करता है कि उसे उस व्यक्ति को ईमानदारी व योग्यता पर विश्वास होता है, इसी कारण प्रधान की अनुमति के बिना एजेन्ट अपने अधिकारों को हस्तांतरित न हीं कर सकता। यह नियम (delegate cannot further delegate) के सिद्धन्त पर आधारित है।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 190 में यह स्पष्ट किया गया है कि जब किसी एजेन्ट ने स्पष्ट या गर्भित रूप से किसी कार्य को स्वयं करने का उत्तरदायित्व लिया है तो वह (एजेन्ट) किसी अन्य व्यक्ति को वह कार्य करने के लिए वैधानिक रूप से नियुक्त नहीं कर सकता, जब तक कि व्यापार के सामान्य सीति-रिवाजों के अनुसार या एजेन्सी की प्रकृति के अनुसार उप-एजेन्ट नियुक्त किया जाना आवश्यक न हो।

उप एजेन्ट (Sub-agent or co-agent) - एक उप-एजेन्ट वह व्यक्ति है जो एजेन्सी के व्यापार में मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है तथा जो उसके नियंत्रण में कार्य करता है। उप-एजेन्ट के लिए मूल एजेन्ट प्रधान के समान होता है एक एजेन्ट निम्नलिखित परिस्थितियों में उप-एजेन्ट नियुक्त कर सकता है-

(i) जब प्रधान ने एजेन्ट को उप-एजेन्ट नियुक्त करने का स्पष्ट अधिकार दिया हो,

(ii) जब व्यापार की प्रथा के अनुसार उप-एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता हो,

(iii) जब प्रधान को पता है कि एजेन्ट उप-एजेन्ट रखना चाहता है, और वह उसे स्पष्ट रूप से ऐसा करने से मना नहीं करता, तो प्रधान की अनुमति गर्भित मानी जायेगी,

(iv) जब व्यापार की प्रकृति (Clerical nature) का हो जिनके लिये विशेष प्रकार के विवेक अथवा कौशल की आवश्यकता न हो,

(v) जब व्यापार की प्रकृति ऐसी हो कि उप-एजेंट की नियुक्ति के बिना व्यापार संचालन सम्भव न हो, अगर एजेन्ट की नियुक्ति किसी पर मुकदमा करने, ऋण वसूलने के लिया किया गया है तो वह वकील नियुक्त कर सकता है, एवं

(vi) आकस्मिक संकट की स्थिति में उप-एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है।

6.8 नियोक्ता एजेन्ट एवं उप-एजेन्ट के बीच वैधानिक सम्बन्ध (Legal Relationship between agent and sub-agent)

उप-एजेन्ट की नियुक्ति से प्रधान, एजेन्ट व उप-एजेन्ट के बीच किस प्रकार के सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उप-एजेन्ट की नियुक्ति उचित है अथवा अनुचित।

(क) जब उप एजेंट की नियुक्ति उचित है- धारा 192 में नियुक्ति के प्रभाव सम्बन्धी निम्नलिखित नियम दिये गये हैं-

(i) मूल एजेन्ट उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए प्रधान के प्रति पूर्णरूप से दायी रहता है। यदि व्यापार के दौरान उप-एजेन्ट प्रधान के धन या माल का गबन कर लेता है तो एजेन्ट प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है।

(ii) उप-एजेन्ट प्रधान का प्रतिनिधित्व करता है तथा उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए प्रधान ठीक उसी प्रकार बाध्य होता है जिस प्रकार कि वह अपने द्वारा नियुक्त किये गये एजेन्ट के कार्यों से होता।

(iii) उप-एजेन्ट अपने कार्यों के लिए साधारणतया केवल एजेन्ट के प्रति ही उत्तरदायी होता है, प्रधान के प्रति नहीं। किन्तु कपट एवं जान-बूझ कर की गई लापरवाही के लिए वह प्रधान के प्रति भी उत्तरदायी होता है।

उप एजेंन्ट अपने पारिश्रमिक की मांग प्रधान से नहीं कर सकता और नहीं प्रधान अपनी सम्पत्ति वापस पाने के लिए उप-एजेन्ट के विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है। वे दोनों, अपने अधिकारों के लिए, केवल मूल एजेन्ट के विरूद्ध कार्यवाही कर सकते हैं।

(ख) जब उप-एजेन्ट की नियुक्ति अनुचित है- धारा 193 के अनुसार, अनुचित नियुक्ति का प्रभाव सम्बन्धी नियम निम्नलिखित है-

(i) ऐसे उप-एजेंट के कार्यों के लिए स्वयं ही प्रधान एवं तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रधान का प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

(ii) एजेन्ट उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए स्वयं ही प्रधान एवं तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है।

(iii) उप-एजेन्ट प्रधान के प्रति बिल्कुल उत्तरदायी नहीं होता, कपट और जान-बुझकर की गई लापरवाही के लिए भी नहीं।

स्थानापन्न एजेन्ट (Substituted Agent) - द्वारा 194 के अनुसार, जब एजेन्ट का प्रधान का कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करने का स्पष्ट या गर्भित अधिकार दिया गया हो और वह इस अधिकार का प्रयोग करते हुए किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करता है, तो ऐसा नामांकित व्यक्ति 'उप-एजेन्ट' नहीं, बल्कि 'स्थापनापन्न एजेन्ट' कहलाता है। स्थापनापन्न मूल एजेन्ट की तरह ही कार्य करता है एवं सीधा प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है। जैसे A अपने लिए C की नियुक्ति करता है। यहाँ C एक स्थापनापन्न एजेन्ट हुआ।

स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति करते समय एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह उतने ही विवेक एवं सूझ-बूझ से चुनाव करें जितना कि एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति अपने मामले में करता। यदि एजेन्ट इतनी सावधानी बरतता है तो वह स्थानापन्न एजेन्ट की असावधानी या लापरवाही के लिए उत्तरदायी नहीं होता।

उदाहरण के लिए A, B नामक व्यापारी को अपने लिए एक जहाज क्रय करने का आदेश देता है। A, B के लिए जहाज चुनने के लिए सुप्रसिद्ध निरीक्षक को नियुक्त करता है। निरीक्षक असावधानी के साथ जहाज का चुनाव करता है। जब जहाज समुद्र में यात्रा योग्य नहीं होता एवं नष्ट हो जाता है तो इस स्थिति में A के प्रति B नहीं बल्कि स्थानापन्न एजेन्ट निरीक्षक उत्तरदायी होगा।

6.9 उप-एजेन्ट एवं स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर (Difference between a sub-agent and substituted agent)

दोनों में निम्नलिखित मुख्य अन्तर है-

(i) उप-एजेन्ट के अधीन एवं उनके नियंत्रण में कार्य करता है, जबकि स्थानापन्न एजेन्ट प्रधान के नियंत्रण में काम करता है।

(ii) उप-एजेन्ट, कपट एवं लापरवाही के अलावे, अपने कार्यों के लिए एजेन्ट के प्रति उत्तरदायी होता है, किन्तु स्थानापन्न एजेन्ट अपने सारे कार्यों के लिए प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है।

(iii) उप-एजेन्ट के कार्यों के लिए मूल एजेन्ट, प्रधान के प्रति उत्तरदायी होता है, किन्तु स्थानापन्न एजेंट के कार्यों के लिए एजेंट नहीं बल्कि स्थानापन्न एजेंट स्वयं प्रधान के प्रति दायी होता है।

(iv) उप-एजेंट अपने पारिश्रमिक की मांग केवल एजेंट से ही कर सकता है, प्रधान से नहीं। किन्तु स्थानापन्न एजेंट अपने पारिश्रमिक की मांग नियोग्ता से ही कर सकता है, एजेंट से नहीं।

(v) उप-एजेंट की नियुक्ति एजेन्ट उसी स्थिति में कर सकता है जब व्यापार की साधारण रीति के अनुसार अथवा एजेंसी की प्रकृति के अनुसार आवश्यक हो, जबकि एजेंट स्थानापन्न एजेंट को केवल उसी स्थिति में नियुक्त कर सकता है, जबकि उसे ऐसा करने के लिए प्रधान की ओर से स्पष्ट या गर्भित अधिकार मिला हो।

6.10 एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency)

अन्य अनुबन्धों की तरह एजेन्सी भी पक्षकारों द्वारा कानून के प्रवर्तन द्वारा समाप्त की जा सकती है। धारा 10 के अनुसार प्रधान एवं एजेंट का सम्बन्ध निम्नलिखित तरीकों से समाप्त किया जा सकता है-

(1) अनुबन्ध के निष्पादन द्वारा - यदि एजेंट की नियुक्ति किसी विशेष कार्य के लिए की गयी है तो उस कार्य के पूर्ण हो जाने पर एजेंसी समाप्त हो जाती है।

(2) एजेंसी की अवधि समाप्त हो जाने पर - यदि एजेंसी की नियुक्ति एक निश्चित अवधि के लिए की गई हो तो अवधि व्यतीत होने पर एजेंसी समाप्त हो जाती है, भले ही कार्य अभी पूरा न हुआ हो।

(3) प्रधान या एजेंट की मृत्यु या पागल हो जाने पर - यदि प्रधान या एजेंट की मृत्यु हो जाये अथवा दोनों में से किसी एक के पागल हो जाने पर, एजेंसी समाप्त हो जाती है, किन्तु प्रधान की सूचना मिलने से पहले के कार्यों के लिए प्रधान के उत्तराधिकारी दायी होते हैं।

(4) विषय वस्तु के नष्ट हो जाने पर - जिस विषय-वस्तु के लिए एजेन्सी स्थापित की गई हो, उसके नष्ट हो जाने पर एजेंसी स्वतः समाप्त हो जाती है।

(5) प्रधान के दिवालिया हो जाने पर - प्रधान के दिवालिया घोषित हो जाने पर वह अनुबन्ध करने की क्षमता खो देता है, अतः एजेंसी को समाप्त माना जाता है।

(6) परस्पर समझौता द्वारा - जिस प्रकार प्रधान एवं एजेन्ट एजेन्सी की स्थापना एक समझौते द्वारा करते हैं, वैसे ही एजेंसी की समाप्ति भी समझौते द्वारा कर सकते हैं।

(7) एजेंट द्वारा एजेंसी व्यापार का परित्याग करके - साधारणतः एक एजेंट अपने इरादे की सूचना उचित माध्यम से प्रधान को देकर एजेन्सी का परित्याग कर सकता है। किन्तु यदि एजेंसी निश्चित अवधि की है और उस अवधि से पूर्व एजेंट बिना उचित कारण के परित्याग करता है तब उसे प्रधान की क्षतिपूर्ति करनी होगी।

(8) प्रधान द्वारा एजेंट के अधिकार का खण्डन द्वारा - प्रधान सूचना देकर किसी भी समय एजेन्ट को दिए गए अधिकारों को समाप्त कर सकता है। लेकिन एजेन्ट द्वारा अपने अधिकारों का उपयोग किये जाने से पहले ही खण्डन करना चाहिए। यदि एजेन्ट ने अधिकार का उपयोग करके दायित्व ले लिया है तो प्रधान एजेन्सी को समाप्त नहीं कर सकता है। समय से पूर्व एजेंसी समाप्त किये जाने पर प्रधान को एजेंट की क्षतिपूर्ति करनी होती है।

(9) निष्पादन के असम्भव हो जाने पर - किसी राज नियम द्वारा प्रतिबन्ध होने अथवा किसी कारण से जब एजेंसी कार्य का निष्पादन करना असम्भव हो जाये, तो दोनों पक्ष विवश होकर अनुबन्ध समाप्त कर सकते हैं।

(10) यदि एजेंसी के दोनों पक्षकार दो देशों के निवासी है और अगर दोनों देशों में युद्ध छिड़ जाता है तब या तो युद्ध की समाप्ति तक एजेन्सी व्यवहार स्थगित रहेगा अथवा समाप्त कर दिया जायेगा।

(11) यदि प्रधान अथवा एजेन्ट कम्पनी है तो उसके समापन होते ही एजेन्सी भी समाप्त हो जायेगी।

6.11 अखण्डनीय एजेन्सी (Irrevocable Agency)

कुछ ऐसी दशाएँ हैं जिनमें नियोक्ता, एजेंट के अधिकार का खण्डन करके एजेंसी को समाप्त नहीं कर सकता है। ये दशाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) हित सहित एजेंसी - जब किसी एजेंसी की विषय-वस्तु में एजेंट का कोई निजी हित या स्वार्थ होता है, तो इसे हित सहित एजेंसी कहते हैं एवं प्रधान एजेंसी को स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में समाप्त नहीं कर सकता। हित सहित एजेंसी प्रधान की मृत्यु, पागल अथवा दिवालिया हो जाने पर भी समाप्त नहीं होती। (धारा 202)

(2) एजेंट द्वारा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व लेने पर - जब एजेन्ट अपने स्वामी के लिए किसी तृतीय पक्षकार के प्रति कोई व्यक्तिगत दायित्व ले लेता है, तो एजेन्सी को समाप्त नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि प्रधान को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता है कि वह एजेन्ट को जोखिम में डाल कर स्वयं पीछे हट जाये। (धारा 203)

(3) एजेन्ट द्वारा आंशिक [illegible] प्रयोग कर लेने पर - यदि एजेन्ट ने अपने अधिकार का अंशतः प्रायेग कर लिया है तो जितना कार्य उसने पूरा कर लिया है उसके सम्बन्ध में एजेन्सी समाप्त नहीं की जा सकती। अर्थात् आंशिक पूरा किया गये कार्यों से उत्पन्न दायित्व का प्रधान द्वारा खंडन नहीं किया जा सकता।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीसरे पक्षों के लिए भी एजेन्सी उसी समय समाप्त होती है जब उन्हें इसकी सूचना मिल जाती है। एजेन्ट के अधिकार की समाप्ति पर उसके द्वारा नियुंक्त सभी उप-एजेन्टों के अधिकार भी समाप्त हो जाते हैं।

6.12 एजेन्सी के खण्डन सम्बन्धी अन्य नियम (Certain Rules relating to Revocation of Agency)

एजेन्सी के खण्डन के सम्बन्ध में उपरोक्त नियम के अतिरिक्त निम्नलिखित नियम अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं में दिया गया है-

(i) धारा 205 के अनुसार, जब एजेन्सी की स्थापना किसी निश्चित समय के लिए की गयी है और बिना किसी उचित कारण के एजेन्सी को उस निश्चित समय के पहले ही समाप्त कर दिया जाता है, तो जिसने एजेन्सी समाप्त की है, उसे दूसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी।

(ii) धारा 206 के अनुसार, जब निश्चित समय से पूर्व एजेन्सी को समाप्त किया जा रहा हो, तो समापन की उचित सूचना दूसरे पक्षकार को देना आवश्यक है।

(iii) धारा 207 के अनुसार, प्रधान एजेन्ट के अधिकार का खण्डन स्पष्ट रूप से अथवा गर्भित रूप से कर सकता है। इसी प्रकार एजेन्ट भी अपने अधिकार का परित्याग स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से कर सकता है।

(iv) धारा 208 के अनुसार, जब प्रधान द्वारा अपने एजेन्ट के अधिकार का खण्डन कर दिया जाता है तो यह खण्डन उस समय पूरा समझा जायेगा जबकि खण्डन की सूचना एजेन्ट को प्राप्त हो जाए। तृतीय पक्षकार को भी एजेंसी की सूचना मिलना आवश्यक है।

(v) धारा 209 के अनुसार, एजेन्सी की समाप्ति प्रधान की मृत्यु अथवा उसे पागल होने के कारण होती है तो एजेंट का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने प्रधान के हितों की सुरक्षा के लिए सभी उचित उपाय करें।

(vi) धारा 210 के अनुसार, जब किसी एजेन्ट के अधिकार का खण्डन करके एजेंसी को समाप्त कर दिया जाता है तो उसे एजेन्ट के द्वारा नियुक्त जितने भी उप-एजेन्ट होंगे, उनका अधिकार भी अपने आप समाप्त माने जायेंगे।

6.13 एजेंट का प्रधान के प्रति कर्त्तव्य (Agent's Duties towards his principal)

एजेंट के अपने प्रधान के प्रति निम्नलिखित कर्त्तव्य होते हैं-

(1) प्रधान के आदेशानुसार कार्य करना - एजेंट का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह प्रधान के आदेशानुसार कार्य करें। यदि एजेंट ऐसा नहीं करता है और प्रधान को इससे कुछ हानि होती है तो एजेन्ट को उसकी क्षतिपूर्ति करनी होगी।

(2) आदेशों के अभाव में व्यापारिक प्रथा के अनुसार कार्य करना - स्पष्ट आदेश के अभाव में एजेन्ट को क्षेत्र एवं व्यापार विशेष में प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार कार्य करना चाहिए। यदि एजेन्ट ऐसा नहीं करता है तो वह प्रधान को होने वाली हानियों के लिए उत्तरदायी होगा।

(3) उचित कौशल एवं परिश्रम से कार्य करना - एजेन्ट को एजेन्सी का कार्य उतनी ही चतुराई, कौशल एवं परिश्रम से करना चाहिए, जितनी कि उस प्रकार का व्यापार करने वाले व्यक्तियों से साधारणतया अपेक्षित

है। एजेन्ट अपनी लापरवाही, अयोग्यता, उपेक्षा से होने वाली प्रत्यक्ष हानियाँ के लिए उत्तरदायी होगा। परन्तु वह अप्रत्यक्ष हानियों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। (धारा 212)

(4) सही हिसाब-किताब देना - एजेंट का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वह एजेंसी संबंधी समस्त लेन-देनों का सही-सही लेखा रखे एवं प्रधान के मांगने पर उसे पेश करें। अतः एजेंट को अपना लेखा एजेंट से अलग ही रखना चाहिए। (धारा 213)

(5) कठिनाई के समय प्रधान से सम्पर्क करना - एजेंट की कठिनाई के समय प्रधान से सम्पर्क करके आदेश प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यदि प्रधान से सम्पर्क करना असम्भव हो, तब एजेंट को पूर्ण सद्भावना के साथ प्रधान के हितों की रक्षा करना चाहिए। (धारा 214)

(6) अपने नाम से व्यापार न करना - एजेंसी व्यापार विश्वास पर आधारित होने के कारण एजेंट का यह कर्त्तव्य है कि वह कोई भी ऐसा कार्य न करे जिससे उसके व्यक्तिगत हित एवं प्रधान के हित में टकराव हो। यदि एजेंट एजेंसी जैसी ही कोई कार्य करना चाहता है तो उसे यह बात प्रधान को बता देना चाहिए। (धारा 215)

(7) निजी लाभ के लिए कोई कार्य न करना - एजेन्ट का यह कर्त्तव्य होता है कि वह एजेंसी के अन्तर्गत अपने पारिश्रमिक के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ प्राप्त न करें, यदि वह प्रधान के बिना जानकारी के कोई लाभ प्राप्त करता है तो उसे प्रधान को वापस करना होगा। (धारा 216)

(8) प्रधान के लिए प्राप्त साधन का लौटाना - एजेन्ट का यह कर्त्तव्य है कि उसने जो भी धन प्रधान के लिए प्रधान किया है, उसमें से स्वयं को देय राशि काट कर शेष रकम का भुगतान प्रधान को कर दें। (धारा 218)

(9) अपने अधिकार हस्तांतरित करना - कुछ परिस्थितियों को छोड़कर एजेंट को अपने अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं करना चाहिए।

(10) एजेंट को प्रधान के माल पर विपरीत अधिकार स्थापित नहीं करना चाहिए।

(11) एजेंट का यह कर्त्तव्य है कि एजेंसी की अवधि में प्राप्त सूचना को प्रधान के विरूद्ध उपयोग नहीं करना चाहिए।

(12) यदि किसी प्रधान की मृत्यु अचानक हो जाती है अथवा प्रधान पागल हो जाता है तो ऐसी स्थिति में एजेंट का कर्त्तव्य है कि वह प्रधान के हितों की सुरक्षा के लिए उचित प्रयास करें। (धारा 209)

6.14 प्रधान के विरूद्ध एजेन्ट के अधिकार (Rights of an Agent against Principal)

एक एजेन्ट का प्रधान के विरूद्ध निम्नलिखित अधिकार है-

(1) एजेन्सी कार्य पर किए गए व्यय पाने का अधिकार - यदि एजेन्ट ने प्रधान को अग्रिम रुपया दिया है अथवा व्यापार करने में धन व्यय किया है, तो एजेन्सी के व्यापार से प्राप्त धन में से वह उपयुक्त राशि काटकर शेष राशि प्रधान को लौटा सकता है।

(2) पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार - एजेन्ट को अपने द्वारा किये गये कार्यों के लिए प्रधान से उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार है। पारिश्रमिक की मात्रा उतनी होगी जितनी एजेंसी अनुबन्ध में निर्धारित

होगी। यदि ऐसा निर्धारण नहीं किया गया है तो उसकी सेवाओं के लिए उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार है। किन्तु उन कार्यों के लिए जिनके करने में उसे दुराचरण का दोषी पाया गया है, उसे पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं होगा।

(3) एजेंट का पूर्वाधिकार - किसी विशेष अनुबन्ध के अभाव से, एजेंट को अधिकार है कि जब तक उसे अपने पारिश्रमिक एवं अन्य व्यय न मिल जायें, वह प्रधान की सम्पत्ति (चल या अचल) कागजात एवं माल आदि को अपने पास रोक रखें। एजेंट को विशिष्ट पूर्वाधिकार दिया गया है, अर्थात् वह केवल वही सम्पत्ति रोक सकता है जिसके सम्बन्ध में उसे प्रधान से कुछ राशि प्राप्त करनी है।

(4) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार - माल को मार्ग में रोकने का अधिकार एजेंट को निम्नलिखित दशाओं में मिलता है-

(क) जब एजेंट ने अपने धन से या अपने व्यक्तिगत दायित्व पर प्रधान के लिए माल खरीदा हो, तब उसकी स्थिति अदत विक्रेता के समान होती है और वह माल को मार्ग में रोक सकता है।

(ख) जब बेचे गये माल के मूल्य के लिए एजेन्ट प्रधान के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है तब वह क्रेता के दिवालिया हो जाने पर माल को मार्ग में रोक सकता है।

(5) क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार - एजेंट प्रधान का प्रतिनिधित्व करता है, अतः यदि एजेंसी के दौरान वैध कार्य करते हुए उसे कोई हानि होती है तो वह प्रधान से क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी होता है। एजेंट को निम्नलिखित प्रकार की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार है-

(क) यदि एजेंट को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर एवं वैधानिक कार्य करते हुए क्षति होती है तो वह उसे प्रधान से पाने का अधिकार रखता है।

(ख) यदि एजेंट को प्रधान की ओर से सद्भावपूर्वक कार्य करते हुए क्षति हुई हो तो उसे पाने का अधिकार है।

(ग) यदि किसी एजेंट को प्रधान की लापरवाही अथवा चतुराई के अभाव के कारण कोई क्षति होती है तो एजेंट उसे प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

(घ) धारा 205 के अनुसार, यदि कोई एजेंसी निश्चित अधिकार के लिए की गयी है तो उस अवधि के पूर्व एजेंसी समाप्त करने पर एजेंट को क्षतिपूर्ति का अधिकार है।

6.15 एजेंट के प्रति प्रधान का कर्त्तव्य एवं अधिकार (Principal's duties and rights to Agent)

साधारणतया एक प्रधान के वे ही कर्त्तव्य है जो एजेंट का अधिकार एवं प्रधान का अधिकार भी वहीं होता है जो एजेंट का कर्त्तव्य उसके प्रति होता है। ऊपर एजेंट के कर्त्तव्य एवं अधिकार का वर्णन किया जा चुका है। अतः पुनः अलग से एजेंट के प्रति प्रधान का कर्त्तव्य एवं अधिकार का वर्णन नहीं किया जाता है।

6.15.1 प्रधान की तीसरे पक्षकारों के प्रति दायित्व (Responsibility of Principal to third Parties) - जब भी कोई व्यक्ति किसी एजेन्ट के माध्यम से कार्य करता है तो कानून की दृष्टि में वह कार्य उसके द्वारा स्वयं किया

गया ही माना जाता है। जहाँ एक तीसरे पक्षकार का प्रश्न हैं, उनके लिए इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कार्य प्रधान ने स्वयं किया है या अपने एजेन्ट से कराया है। प्रधान अपने एजेन्ट द्वारा किए गये उन सभी कार्यो के लिए उत्तरदायी होता है जो एजेन्ट के अधिकार-क्षेत्र में थे अथवा जिनके लिए उसे प्रधान से प्रत्यक्ष अधिकार मिले थे। तृतीय पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व से सम्बन्धित नियम निम्नलिखित है:-

(1) **एजेन्ट के अधिकार क्षेत्रा में किये गये कार्य के लिए** - एजेन्ट द्वारा किये गये अनुरोध और कार्यों से उत्पन्न होने वाले दायित्वों को ठीक उसी प्रकार प्रवर्तित कराया जा सकता है तथा उनके वही वैधानिक परिणाम होते हैं मानो वे अनुबन्ध एवं कार्य प्रधान द्वारा स्वयं किये गए हैं। अब यदि A अपने एजेन्ट B को C से रकम वसूलने का अधिकार देता है। C से रकम प्राप्त कर लेता है। अब यदि B अपने प्रधान A को वह राशि नहीं देता है तब भी C दायित्व मुक्त माना जायेगा। इस प्रकार प्रधान अपने एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों से तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी है।

(2) **एजेन्ट द्वारा अधिकार से बाहर किये गये, कार्य के लिए** - जब एजेन्ट अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर कोई कार्य करता है तब प्रधान ऐसे कार्यों से बाध्य नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रधान यदि चाहे तो वह एजेन्ट के कार्यों को अस्वीकार या पुर्ष्टीकरण कर सकता है। तब प्रधान एजेन्ट के अनाधिकृत कार्य के लिए ठीक उसी प्रकार बाध्य होगा जैसा कि अधिकृत कार्यों के लिए होता है। किन्तु यदि प्रधान एजेन्ट के कार्य को स्वीकार नहीं करता तब यह देखा जाता है कि अनाधिकृत भाग से अलग किया जा सकता है, तब वह अधिकृत भाग के लिए अवश्य उत्तरदायी होगा जैसे, रवि अपने एजेन्ट रमेश को 20 क्विंटल चावल खरीदने का अधिकार देता है। रमेश 7,500 रुपये में 2 क्विंटल चावल एवं 5 क्विंटल गेहूँ खरीद लेता है। रवि पूरे सौदे को स्वीकार करने से मना कर सकता है।

(3) **एजेन्ट को दी गई सूचना का प्रभाव** - एजेन्सी व्यापार में जब कोई सूचना एजेन्ट को दी जाती है तब यह समझा जाता है कि सूचना प्रधान को दे दी गई। क्योंकि कानून की दृष्टि में प्रधान और एजेन्ट एक ही व्यक्ति माने जाते हैं।

(4) **एजेन्ट से अनाधिकृत कार्यों का अधिकृत कार्य होने का विश्वास दिलाना** - यदि एजेन्ट ने बिना किसी अधिकार के प्रधान की ओर से तीसरे पक्षकारों के साथ कोई कार्य किया है, या दायित्व ले लिया है एवं प्रधान ने अपने शब्दों या आचरण से तीसरे पक्षकारों को विश्वास दिलाया है कि एजेन्ट के कार्य अधिकृत है तो वह ऐसे कार्यों के लिए तीसरे पक्ष के प्रति उत्तरदायी होता है। **यह नियम गत्यवरोध (stopped) के सिद्धान्त पर आधारित है।**

(5) **एजेन्ट द्वारा मिथ्या वर्णन या कपट के लिए दायित्व** - एजेन्सी के करोबार के दौरान एजेन्ट द्वारा किए गए मिथ्या वर्णन और कपट का अनुबन्ध पर वही प्रभाव होता है जैसा कि प्रधान द्वारा मिथ्या-वर्णन या कपट करने पर होता है। किन्तु यदि कपट या मिथ्या-वर्णन का उपयोग ऐसे कार्यों में किया गया है जो एजेंट के अधिकार-क्षेत्र में नहीं थे, तो ऐसी स्थिति में प्रधान उत्तरदायी नहीं होता।

(6) **एजेन्ट द्वारा किए गए गलत कार्यों के प्रति प्रधान का दायित्व** - यदि एजेन्ट अनुबन्ध की अवधि में गलत कार्य

व्यापार के लिए करता है तब प्रधान तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा। किन्तु गलत कार्य या लापरवाही एजेन्ट निजी स्वार्थ के लिए करता है, तब प्रधान उस कार्य के लिए वाध्य नहीं होगा।

(7) आपात काल की स्थिति में एजेन्ट द्वारा किये गये सभी कार्यों के लिए प्रधान तृतीय पक्षकारों के प्रति बाध्य होगा।

(8) जब एक एजेन्ट अपने अधिकार-क्षेत्र के भीतर कार्य के दौरान किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है, तो प्रधान उस क्षति के लिए तीसरे पक्षकार के प्रति बाध्य होता है।

6.16 अप्रकट प्रधान (Undisclosed Principal)

यदि कोई एजेन्ट, प्रधान से अधिकार प्राप्त करके, तीसरे पक्षकारों के साथ स्वयं अपने नाम से अनुबन्ध करता है एवं अपने एजेन्ट होने के तथ्य को प्रकट नहीं करता, तब 'अप्रकट प्रधान कस सिद्धान्त' लागू होता है। ऐसी स्थिति में, एजेन्ट 'अन्य पक्ष को यह विश्वास दिलाता है कि वह स्वयं अपने लिए अनुबन्ध कर रहा है; जबकि वास्तविकता कुछ और होती है। इस सिद्धान्त के लिए वह आवश्यक है कि तीसरे पक्षों को इस बात की जानकारी नहीं बल्कि एजेन्ट है।

कभी-कभी अप्रकट प्रधान एवं 'गुप्त प्रधान' (Concealed Principal) एक ही मान लिया जाता है जो गलत है क्योंकि दोनों में अन्तर है। अप्रकट प्रधान वह है, जिसका नाम एजेन्ट द्वारा प्रकट नहीं किया जाता। अर्थात् एजेन्ट तृतीय पक्षकार से अनुवन्ध करते समय यह तो प्रकट कर देता है कि वह एजेन्ट है, किन्तु यह प्रकट नहीं करता है कि उसका प्रधान कौन है तो इसे अप्रकट प्रधान कहा जाता है। किन्तु, जब एजेन्ट अपने आप को प्रधान प्रदर्शित करता है एवं इस बात को छिपाता है कि वह एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा है जबकि वास्तव में वह एजेन्ट होता है, तो ऐसी स्थिति में एजेन्ट का प्रधान 'गुप्त प्रधान' कहलाता है।

अधिनियम की विभिन्न धाराओं में ऐसे प्रधान के अधिकार एवं दायित्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम दिये गये हैं-

(i) ऐसी लेन-देन के लिए एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। उन्हें वह स्वयं प्रवर्तित करा सकता है एव स्वयं ही तीसरे पक्ष के प्रति दायी भी होता है।

(ii) जब तीसरे पक्षकार के प्रधान के अस्तित्व का पता चल जाता है तो वह प्रधान या एजेन्ट या दोनों पर ही मुकदमा चला सकता है। प्रधान अपने दायित्व से उस समय तक मुक्त नहीं हो सकता जब तक कि तीसरे पक्ष ने केवल एजेंट को ही उत्तरदायी ठहराने का निश्चय न कर लिया हो। यदि तीसरा पक्ष केवल प्रधान को ही उत्तरदायी ठहराने के लिए कार्यवाही करना चाहता है तो उसे एजेन्ट से प्राप्त राशि का लाभ प्रधान को देना होगा। जैसे, राम, सोहन को 500 रुपया में कुछ माल बेचने का अनुबन्ध करके 1000 रुपया अग्रिम प्राप्त कर लेता है। किन्तु बाद में यह पता चलने पर कि वास्तव में सोहन महेश का एजेन्ट है वह महेश के विरूद्ध कार्यवाही तो कर सकता है परन्तु उसे सोहन से प्राप्त 1000 रुपया का लाभ महेश को देना होगा। अर्थात् महेश से वह केवल 4000 रुपया प्राप्त कर सकेगा।

(iii) अप्रकट प्रधान स्वयं हस्तक्षेप करके तीसरे पक्ष से निष्पादन की मांग कर सकता है। किन्तु इस स्थिति में तीसरे पक्षकार को प्रधान के विरूद्ध वे सब अधिकार प्राप्त होंगे जो उसे उस स्थिति में प्राप्त होते जब एजेन्ट ही प्रधान होता।

(iv) यदि अनुबन्ध का निष्पादन पूर्ण होने से पहले ही प्रधान स्वयं को प्रकट कर देता है तो तीसरा पक्ष अनुबन्ध अस्वीकार कर सकता है, बशर्ते वह यह सिद्ध कर सके कि अगर उसे पहले यह मालूम हो जाता कि प्रधान कौन है या एजेन्ट प्रधान नहीं है तो वह अनुबन्ध नहीं कर सकता।

6.17 बनावटी या कुटिल एजेन्ट (Pretended Agent)

जब कोई व्यक्ति जो एजेन्ट न होते हुए भी अपने को किसी दूसरे का अधिकृत एजेन्ट बताकर तीसरे पक्षकार को अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है तो उसे बनावटी अथवा कुटिल एजेन्ट कहते हैं। ऐसे एजेन्ट के दायित्व के सम्बन्ध में अधिनियम की धारा 235 में वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित है-

(i) जब ऐसा बनावटी एजेन्ट किसी तीसरे पक्षकार को अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है, तो ऐसी स्थिति में वह तीसरे पक्षकार को होनेवाली क्षति के लिए स्वयं जिम्मेवार होगा। किन्तु यदि बनावटी प्रधान, बनावटी एजेन्ट के कार्यों की पुष्टि कर दे तो बनावटी एजेन्ट अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेगा।

(ii) जब बनावटी एजेन्ट 'वास्तव में एजेन्ट के रूप में नहीं बल्कि अपने स्वयं के लिए व्यवहार कर रहा हो तो वह तीसरे पक्षकारों से अनुबन्ध निष्पादन की मांग नहीं कर सकता।

6.18 तीसरे पक्षकार के प्रति एजेन्ट का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Personal Liability of Agent to third Party)

यह सामान्य नियम है कि एजेन्ट के कार्य प्रधान के कार्य होते हैं। जबतक कोई विशेष अनुबन्ध न हो, एजेन्ट प्रधान की ओर से किये गये अनुबन्धों को स्वयं प्रवर्तित नहीं करा सकता और न ही उनसे स्वयं बाध्य होता है, यदि एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जाता है तब तीसरा पक्ष प्रधान को एजेन्ट को, या दोनों को ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है अर्थात् प्रधान एवं एजेन्ट संयुक्त एवं पृथक् होता है। एक एजेन्ट प्रधान की ओर से किए गए अनुबन्धों के लिए निम्नलिखित स्थितियों में व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है-

(1) विदेशी प्रधान की स्थिति में - जब कोई एजेन्ट किसी विदेशी प्रधान के लिए व्यापारिक अनुबन्ध करता है, तब यह मान लिया जाता है कि एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(2) जव अनुबन्ध में स्पष्ट किया गया हो - कभी-कभी अन्य पक्ष प्रधान को अच्छी तरह नहीं जानता, तब वह अनुबन्ध करते समय ही यह स्पष्ट कर सकता है। अनुबन्ध भंग होने की स्थिति में एजेन्ट को उत्तरदायी ठहरायेगा। एजेन्ट यदि इस बात पर सहमत हो जाता है, तब एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हो जाता है।

(3) अप्रकट प्रधान के लिए कार्य करने की स्थिति में - यदि एजेन्ट प्रधान का अस्तित्व ही प्रकट नहीं करता, तब वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। किन्तु यदि तीसरे पक्ष को पता था या पता लगाने के पर्याप्त साधन थे कि अनुबन्ध करने वाला व्यक्ति एजेन्ट है, तब वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा।

(4) विनिमय साध्य विलेखों पर स्वयं हस्ताक्षर करने की स्थिति में - यदि कोई एजेन्ट किसी विनिमय साध्य विलेख जेसे प्रोनोट या बिल पर, बिना यह स्पष्ट किए कि वह एजेन्ट है, अपने नाम से हस्ताक्षर करता है, तब एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(5) **ऐसे प्रधान, जिस पर वादे प्रस्तुत नहीं कर सकने की स्थिति में** - यदि एजेंट ने प्रधान का नाम स्पष्ट कर दिया हो किन्तु प्रधान के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती हो, तब एजेन्ट तीसरे पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(6) एजेन्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर के कार्य करने की स्थिति में - यदि कोई एजेन्ट अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करता है और प्रधान उन कार्यों की पुष्टि नहीं करता, तब एजेंट तीसरे पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

(7) जब एजेन्ट का एजेन्सी में हित हो - जब किसी एजेन्ट को एजेन्सी के कार्यों में अपना कुछ हित होता है तो, उस हित की सीमा तक, वह स्वयं बाध्य होता है एवं अन्य पक्षों को भी बाध्य कर सकता है।

(8) अस्तित्वहीन प्रधान के लिए कार्य करने की स्थिति में - यदि एजेन्ट किसी ऐसे प्रधान के लिए कार्य करता है जिसका अस्तित्व ही नहीं हो तो एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि एजेन्ट ने स्वयं अपने लिए कार्य किया है। कम्पनी के सम्मेलन से पूर्व प्रवर्त्तकों द्वारा किए गए अनुबन्धों के लिए कम्पनी नहीं, बल्कि प्रवर्त्तक स्वयं उत्तरदायी होते हैं।

(9) बनावटी एजेन्ट की स्थिति में - यदि कोई व्यक्ति स्वयं को किसी दूसरे व्यक्ति का अधिकृत एजेन्ट बताकर किसी अन्य व्यक्ति को अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करता है, किन्तु उसका कथित प्रधान उस अनुबन्ध का पुष्टिकरण नहीं करता, तो ऐसा व्यक्ति तीसरे पक्षकार को हुई क्षति के पूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है।

(10) जब व्यापार की प्रथा एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने - जब किसी व्यापार विशेष की प्रथा या परम्परा के अनुसार एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है, तो एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दायी होगा।

(11) एजेन्ट द्वारा अनाधिकृत कार्य करने की स्थिति में - यदि कोई एजेन्ट किसी तीसरे व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचाता है तो इस क्षति के लिए एजेन्ट स्वयं उत्तरदायी होगा।

6.19 सारांश (Summing up)

एजेन्सी प्रधान तथा एजेंटों के बीच के सम्बन्धों को दर्शाता है। एजेन्सी की स्थापना स्पष्ट समझौता द्वारा, गर्भित समझौते द्वारा पुष्टिकरण द्वारा की जाती है। एजेन्ट का अधिकार तथा कर्त्तव्य प्रधान के प्रति तथा प्रधान को कर्त्तव्य एजेन्ट के प्रति होता है। एजेन्सी का समापन परस्पर समझौता द्वारा, एजेन्ट तथा प्रधान के मृत्यु या पागल होने पर हो जाता है।

6.20 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. एजेन्सी की स्थापना तथा समापन के विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।
2. एजेन्ट का प्रधान के प्रति कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये।

6.21 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 7 पाठ-10

वस्तु-विक्रय अधिनियम
(Sale of Goods Act)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

7.0 उद्देश्य (Objective)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 वस्तु विक्रय अधिनियम आधारभूत परिभाषायें

7.3 विक्रय अनुबन्ध की प्रकृति

7.4 विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण

7.5 विक्रय एवं विक्रय के समझौते में अन्तर

7.6 विक्रय अनुबन्ध एवं अन्य प्रकार के अनुबन्धों में अन्तर

7.7 विक्रय अनुबन्ध का निर्माण

7.8 विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु

7.9 माल का नष्ट होना

7.10 मूल्य निर्धारण

7.11 मूल्य का भुगतान

7.12 स्वामित्व का हस्तांतरण

7.13 विक्रेता द्वारा माल के व्यवस्थान के अधिकार को सुरक्षित रखना

7.14 शर्त्त एवं आश्वासन

7.14.1 शर्त्त एवं आश्वासन में अन्तर

7.14.2 शर्त्त कब आश्वासन भंग मानी जा सकती है ?

7.14.3 स्पष्ट एवं गर्भित शर्त्त एवं आश्वासन

7.14.4 गर्भित आश्वासन

7.14.5 क्रेता सावधान का सिद्धान्त

7.15 विक्रय अनुबन्ध का निष्पादन

7.15.1 सुपुर्दगी

7.15.2 सुपुर्दगी सम्बन्धी नियम

7.16 क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति

7.17 माल के स्वत्वाधिकार का हस्तांतरण

7.18 अद्रत विक्रेता

7.18.1 अद्रत विक्रेता के अधिकार

7.19 ग्रहणधिकार एवं माल को मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर

7.20 विक्रय अनुबन्ध का खण्डन

7.21 नीलाम द्वारा विक्रय

7.22 नीलाम द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन

7.23 सारांश (Summuing up)

7.24 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

7.25 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

7.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य छात्रों को वस्तु विक्रय अधिनियम के बारे में विस्तार से जानकारी देना है। शर्त एवं आश्वासन से अन्तर, क्रेता के सावधानी का नियम, अदत विक्रेता के अधिकारों के बारे में जानकारी छात्रों को प्राप्त होगी।

7.1 परिचय (Introduction)

वस्तु विक्रय अधिनियम अनुबन्ध अधिनियम का ही एक भाग है। किन्तु वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के महत्त्व एवं कठिनाइयों को ध्यान में रखने हुए 1930 में 'वस्तु-विक्रय अधिनियम' के नाम से एक पृथक अधिनियम बनाया गया जिसमें वस्तु-विक्रय सम्बन्धी सभी कार्यों के लिए विस्तृत नियम दिये गये हैं। यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर सारे भारत में 1 जुलाई 1930 से लागू किया गया।

वर्तमान पाठ के अन्तर्गत इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का वर्णन किया जायेगा।

7.2 आधारभूत परिभाषाएँ (Fundamental Definitions)

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 2(1) से लेकर धारा 2(4) तक वस्तु-विक्रय व्यवहारों में आने वाले शब्दों को परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है-

(1) क्रेता (Buyer) - ''सुपुर्दगी से आशय एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तांतरण करने से है। (धारा 2(2))

(2) सुपुर्दगी (Delivery) - ''सुपुर्दगी से आशय एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तांतरण करने से है। (धारा 2(1))

(3) सुपुर्दगी योग्य स्थिति (Deliverable State) - माल को उस समय सुपुर्दगी योग्य दशा में कहते हैं जब उसकी सुपुर्दगी लेने के लिए क्रेता बाध्य हो। (धारा 2(1))

(4) माल के अधिकार विलेख (Documents of title of Goods) - "माल के अधिकार विलेखों में लदान पड़ा, गोदी वारन्ट गोदाम पालक या प्रमाण पत्र, रेलवे रसीद, माल की सुपुर्दगी का आदेश, अधिपत्र और इसी प्रकार के अन्य विलेख सम्मिलित होते हैं जो व्यवसाय के संचालन में माल के कब्जे अथवा नियंत्रण के प्रमाण के रूप में प्रयोग होते हैं अथवा जिनमें वर्णित माल को हस्तांतरित करने के लिए बेचने अथवा सुपुर्दगी द्वारा कब्जा करने वाले को अधिकृत किया जाता है।" (धारा 2(4))

(5) दोष (Fault) - "दोष का आशय गलत कार्य अथवा त्रुटि से है।" (धारा 2(5))

(6) भावी माल (Future goods) - "भावी माल का आशय उस माल से है, जो विक्रय अनुबन्ध के बाद विक्रेता को निर्मित करना है, उत्पादित करना है अथवा प्राप्त करना है। (धारा 2(6))

(7) माल (Goods) - "मुद्रा एवं अभियोग योग्य दावों के अतिरिक्त सभी प्रकार की चल सम्पत्ति (Movable property) माल है एवं इसमें स्कन्ध, अंध, खड़ी फसलें, घास एवं भूमि से जुड़ी हुई या भूमि के अंश के रूप में सभी वस्तुयें जिनकी बिक्री से पहले या बिक्री अनुबन्ध के अधीन भूमि से अलग कर लिया जायेगा, सम्मिलित होती है।" (धारा 2(7))

(8). दिवालिया (Insolvent) - "वह व्यक्ति दिवालिया कहलाता है जिसने व्यवसाय के सामान्य क्रय में अपनी देनदारियों का भुगतान नहीं किया है या जो देय होने पर अपनी देनदारियों का भुगतान नहीं कर सकता, चाहे उसने कोई दिवालिया कार्य किया है अथवा नहीं।" (धारा 2(8))

(9) व्यापारिक एजेन्ट (Mercantile Agent) - "व्यापारिक एजेन्ट का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसे व्यापार की सामान्य प्रगति में एजेन्ट की हैसियत से माल बेचने का, विक्रय हेतु माल भेजने या माल क्रय करने अथवा माल प्रत्याभूति पर रुपया लेने का अधिकार है।" (धारा 2(9))

(10) मूल्य (Price) - "मूल्य से आशय माल की बिक्री के लिए मौद्रिक प्रतिफल से है।" (धारा 2(10))

(11) सम्पत्ति (Property) - "सम्पत्ति से आशय केवल विशिष्ट सम्पत्ति से न होकर माल की सामान्य सम्पत्ति से है।" (धारा 2(11))

(12) माल की किस्म (Quality of Goods) - "माल की किस्म से आशय उसकी दशा एवं उसकी स्थिति से है।" (धारा 2(13))

(13) विक्रेता (Seller) - "विक्रेता से आशय उस व्यक्ति से है जो माल बेचना है अथवा बेचने के लिए सहमत होता है।" (धारा 2(13))

(14) विशिष्ट माल (Specific Goods) - "विशिष्ट माल का आशय उस माल से है जिसे बिक्री अनुबन्ध करते समय पहचान कर लिया गया हो एवं जिस पर पक्षकारों की सहमति प्राप्त हो गई हो।" (धारा 2(14))

7.3 विक्रय अनुबन्ध की प्रकृति (Nature of Contract of Sale)

वस्तु विक्रय अनुबन्ध की धारा 4(1) के अनुसार, 'वस्तु विक्रय एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत विक्रेता निश्चित

मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है अथवा हस्तांतरित करने का समझौता करता है।'' इस परिभाषा के आधार पर वस्तु विक्रय के दो रूप स्पष्ट होते हैं- वास्तविक विक्रय अथवा विक्रय का समझौता। जब किसी विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व अनुबन्ध करते ही क्रेता को हस्तांतरित हो जाता है, तो इसे विक्रय कहते हैं। किन्तु अगर माल के स्वामित्व का हस्तांतरण किसी भावी तिथि पर होना है अथवा किसी शर्त के पूरा किये जाने पर होना है, तो इसे 'विक्रय का समझौता' कहा जाता है।

7.4 विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण (Characteristics of Contract of Sale)

विक्रय अनुबन्ध के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं-

(1) इसके लिए क्रेता एवं विक्रेता दो पक्षों का होना आवश्यक है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति स्वयं अपना माल क्रय नहीं कर सकता।

(2) इसमें प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति 'दावा योग्य अधिकार एवं मुद्रा' को छोड़कर अवश्य होनी चाहिए जिसके स्वामित्व का हस्तांतरण हो सके।

(3) विक्रय अनुबन्ध का प्रतिफल मुद्रा के रूप में होना चाहिए। विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तांतरण मूल्य के बदले में ही करता है; क्योंकि बिना मूल्य के माल का हस्तांतरण वैध नहीं होता।

(4) विक्रेता द्वारा माल के स्वामित्व का हस्तांतरण अवश्य होना चाहिए। यह हस्तांतराण माल के सम्पूर्ण एवं सामान्य स्वामित्व का होना चाहिए, विशेष स्वामित्व का नहीं।

(5) विक्रय अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक दोनों हो सकता है।

(6) विक्रय अनुबन्ध में एक वैध अनुबन्ध के वे सभी लक्षण होने चाहिए जो उसकी वैधता के लिए आवश्यक माने गये हैं।

7.5 विक्रय एवं विक्रय के समझौते में अन्तर (Difference between Sale and Agreement to Self)

विक्रय अनुबन्ध की परिभाषा से स्पष्ट हो चुका है कि विक्रय एवं 'विक्रय के समझौते' से अन्तर है। व्यवहार में विक्रय एवं विक्रय के समझौते के अन्तर का बहुत महत्त्व है क्योंकि दोनों के वैधानिक प्रभाव भिन्न हैं, जो निम्नलिखित है-

(1) विक्रय की स्थिति में अनुबन्ध का निष्पादन अनुबन्ध के समय ही कर दिया जाता है। अर्थात् यह एक निष्पादित अनुबन्ध है। किन्तु विक्रय के समझौते की स्थिति में अनुबन्ध का निष्पादन भविष्य में किसी तिथि को किया जाता है, अर्थात् यह निष्पादनीय अनुबन्ध है।

(2) विक्रय में क्रेता माल का स्वामी माल क्रय करते समय ही हो जाता है। किन्तु विक्रय के समझौते के अन्तर्गत क्रेता माल का स्वामी निर्धारित अवधि आ जाने के बाद एवं समझौते के अधीन सभी शर्त पूरा हो जाने पर होता है।

(3) विक्रय की दशा में अगर माल नष्ट हो जाता है तो, भले ही वह विक्रेता के कब्जे में था, हानि क्रेता को उठानी

होगी जबकि विक्रय के समझौता के अन्तर्गत यह हानि विक्रेता को उठानी होगी, क्योंकि माल का स्वामित्व अभी उसी के पास है, भले ही उसका कब्जा क्रेता के पास हो।

(4) यदि क्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग किया जाता है, तो विक्रय की स्थिति में यदि क्रेता माल को अस्वीकार करता है, तब माल विक्रेता के कब्जे में होते हुए भी वह क्रेता के विरूद्ध मूल्य के लिए दावा कर सकता है, किन्तु विक्रय समझौता की स्थिति में विक्रेता क्रेता के विरूद्ध केवल हर्जाने के लिए दावा कर सकता है, मूल्य के लिए नहीं।

(5) यदि विक्रेता द्वारा अनुबन्ध किया जाता है तो, विक्रय की स्थिति में अगर विक्रेता माल की सुपुर्दगी नहीं देता है तो क्रेता सुपुर्दगी एवं हर्जाना दोनों के लिए दावा कर सकता है। किन्तु विक्रय का समझौते की स्थिति में केवल हर्जाने की मांग कर सकता है, माल की नहीं।

(6) विक्रय की स्थिति में विक्रेता माल का पुनः विक्रय नहीं कर सकता, क्योंकि स्वामित्व क्रेता के पास रहता है। किन्तु विक्रय का समझौते की स्थिति में विक्रेता माल का पुनः विक्रय कर सकता है, किन्तु उस माल के पूर्व क्रेता को क्षति का भुगतान करना पड़ेगा।

(7) विक्रय की स्थिति में, यदि क्रेता मूल्य का भुगतान करने से पहले ही दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो क्रय किये गये माल पर सरकारी रिसीवर का अधिकार होता है। किन्तु विक्रय का समझौते की स्थिति में क्रेता के देवालिया घोषित होने पर माल पर विक्रेता का ही अधिकार होता है क्योंकि माल पर क्रेता का ही स्वामित्व होता है।

(8) विक्रय की स्थिति में, यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने से पहले ही दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो क्रेता सरकारी रिसीवर से माल प्राप्त करने का अधिकारी होता हैं किन्तु विक्रय का समझौते की स्थिति में माल पर सरकारी रिसीबर का ही अधिकार होता है और अगर माल क्रेता के कब्जे में है तो उसे सरकारी रिसीवर को सौंपना होगा।

7.6 विक्रय अनुबन्ध एवं अन्य प्रकार के अनुबंधों में अन्तर (Contract of Sale Distinguished from other classes of contracts)

व्यावहारिक जीवन में बहुत सारी ऐसी लेन-देन होती हैं जो विक्रय से मिलती-जुलती है, किन्तु वह वस्तु विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत नहीं आती हैं। निम्नलिखित कुछ अनुबन्ध विक्रय अनुबन्ध से भिन्न हैं-

(1) विक्रय एवं वस्तु विनियम में अन्तर (Sale and Barter) – वस्तु विक्रय अधिनियम के अनुसार वस्तु का प्रतिफल मुद्रा के रूप में होना आवश्यक है। जबकि वस्तु विनियम के अन्तर्गत वस्तु का प्रतिफल वस्तु ही होता है।

(2) विक्रय एवं दान में अन्तर (Sale and Gift) - चूँकि विक्रय के लिए मूल्य का मुद्रा में होना आवश्यक है अतः अगर किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत बिना किसी प्रतिफल के वस्तुओं का स्वामित्व एक से दूसरे व्यक्ति के पास जाता है, तो उसे विक्रय नहीं, बल्कि 'दान' कहते हैं।

(3) विक्रय एवं निक्षेप में अन्तर (Sale and Bailment) – निक्षेप में वस्तु का स्वामित्व निक्षेप - ग्रहीता के पास

हस्तांतरित नहीं होता, केवल वस्तु किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए देता है एवं कार्य की पूर्ति के बाद सौंपी हुई वस्तु निक्षेपों को लौटा दिया जाता है। लेकिन विक्रय में वस्तु का स्वामित्व क्रेता को प्राप्त हो जाता है।

(4) विक्रय एवं गिरवी में अन्तर (Sale and Mortgage or Pledge) - गिरवी अथवा रेहन में वस्तु का स्वामित्व थोड़े समय के लिए सभी र्तों का हस्तांतरण हो जाता है और बाद में पैसा भुगतान कर देने पर वापस हो जाता है, किन्तु विक्रय में स्वामित्व का हस्तांतरण हमेशा के लिए हो जाता है।

7.7 विक्रय अनुबन्ध का निर्माण (Formation fo Contract of Sale)

विक्रय अनुबन्ध भी सामान्य अनुबन्धों की तरह एक अनुबन्ध है। इसलिए इसके निर्माण के लिए उन सभी तत्त्वों का होना आवश्यक है जो एक साधारण अनुबन्ध के निर्माण के लिए आवश्यक है। एक विक्रय अनुबन्ध के निर्माण के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का होना आवश्यक है-

(i) वैध अनुबन्ध के सारे तत्त्व विद्यमान होना चाहिए।

(ii) इनमें क्रेता एवं विक्रेता दो अलग व्यक्ति होने चाहिए।

(iii) वस्तु-विक्रय अनुबन्ध की विषय-वस्तु 'माल' या 'वस्तु' होने चाहिए। माल या वस्तु में प्रत्येक प्रकार की चल (Movable) सम्पत्ति शामिल की जाती है।

(iv) विक्रेता द्वारा माल के स्वामित्व का हस्तांतरण अवश्य किया जाना चाहिए।

(v) माल के विक्रय का प्रतिफल मुद्रा के रूप में ही होना चाहिए।

(vi) विक्रय-अनुबन्ध स्पष्ट एवं गर्भित दोनों हो सकता है।

7.8 विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु (Subject-Matter or Contract of Sale)

विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु 'माल' या 'वस्तु' है। वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 2(7) के अनुसार बाद-योग्य दावे एवं मुद्रा को छोड़कर हर प्रकार की चल सम्पत्ति माल कहलाती हैं वाद-योग्य दावों का तात्पर्य ऐसे अधिकारों से है जिन्हें केवल न्यायालय द्वारा ही प्रवर्तित कराया जा सकता है, जैसे- देनदार, ऋण हुण्डियाँ इत्यादि। माल निम्नलिखित प्रकार के हो सकता है-

(1) विधमान माल (Existing goods) - वह माल जो विक्रय-अनुबन्ध के समय विक्रेता के अधिकार एवं स्वामित्व में हो; उसे विद्यमान माल कहते हैं। विद्यमान माल तीन प्रकार का हो सकता है-

(i) विशिष्ट माल (Specific goods) - यह वह माल है जिसे, अनुबन्ध करते समय पहचान लिया गया हो एव स्वीकृत कर लिया गया है 'विशिष्ट माल' कहलाता है।

उदाहरण के लिए, रवि नें घड़ी की दुकान पर जाकर दुकानदार की सहमति से एक विशिष्ट घड़ी चुनी एवं क्रय करने का अनुबन्ध कर लिया। चुनी गयी यह घड़ी विक्रय अनुबन्ध के लिए विशिष्ट माल कहलायेगी।

(ii) निश्चित माल (Ascertained goods) - वह माल जिसकी पहचान एवं स्वीकृति विक्रय-अनुबन्ध करने के बाद की गयी हो, 'निश्चित माल' कहलाता है।

उदाहरण के लिए, रीतेश के गोदाम में 100 बोरा चावल रखा है। मोहन उसमें से 10 बोरा चावल क्रय करने के अनुबन्ध करता है एवं रीतेश की स्वीकृति से गोदाम में जाकर स्वीकृत 10 बोरा चावल को छाँट लेता है। यह 10 बोरा चावल विक्रय-अनुबन्ध के लिए निश्चित माल कहलायेगा।

(iii) अनिश्चित माल (Unascertained goods) - वह माल जिसे, विक्रय-अनुबन्ध करते समय पहचान अथवा निश्चित नहीं किया गया हो, तो वह अनिश्चित माल कहलायेगा।

उदाहरण के लिए, उपरोक्त उदाहरण में यदि मोहन 10 बोरा चावल अपने लिए अलग नहीं करता है, तो उसका अनुबन्ध किसी भी अनिश्चित 10 बोरा के लिए होगा।

(2) भावी माल (Future Goods) - यह वह माल है जिसका विक्रय अनुबन्ध किया जा रहा है, किन्तु अनुबन्ध करते समय विद्यमान नहीं होता बल्कि उसका निर्माण अथवा उत्पादन विक्रेता द्वारा किसी भावी तिथि को होता है, उसे 'भावी माल' कहते हैं।

(3) सांयोगिक माल (Contingent Goods) - जब किसी भावी माल के विक्रय का समझौता किया जाता है और विक्रेता द्वारा उस माल की प्राप्ति किसी सम्भावित घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करती है तो उसे 'सांयोगिक माल' कहते हैं।

उदाहरण के लिए राम, मोहन से अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी गाड़ी बेचने का अनुबन्ध करता है। यहाँ माल के विक्रय का अनुबन्ध घटना के घटित होने के संयोग पर निर्भर है-

7.9 माल का नष्ट होना (Destruction of Goods)

विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु अर्थात् माल यदि अनुबन्ध के निष्पादन के पहले ही नष्ट हो जाये, तो इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं।

(क) यदि विशिष्ट माल अनुबन्ध करने के पहले ही नष्ट हो चुका है अथवा इतना खराब हो चुका है कि वह अनुबन्ध में दिए गए वर्णन से मेल नहीं खाता एवं विक्रेता को इस बात की कोई जानकारी नहीं है, तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है। उदाहरण के लिए रवि, रीतेश को एक विशिष्ट गाय बेचने का अंनुबन्ध करता है। बाद में पता चलता है कि अनुबन्ध के समय गाय मर चुकी थी, किन्तु दोनों पक्ष को इस बात की जानकारी नहीं थी। अतः यह विक्रय एवं निष्पादन की असम्भवता के आधार पर व्यर्थ माना जायेगा।

किन्तु उपर्युक्त नियम केवल विशिष्ट माल के विक्रय के सम्बन्ध में ही लागू होता है, अनिश्चित माल के लिए नहीं। यदि किसी ऐसे अनिश्चित माल के विक्रय के लिए कोई अनुबन्ध किया जाता है जो अनुबन्ध से पहले ही नष्ट हो चुका है, तो वह अनुबन्ध व्यर्थ नहीं माना जायेगा।

उदाहरण के लिए मोहन अपने गोदाम में रखे 2000 बोरा चावल बेचने का अनुबन्ध सोहन के साथ करता है। किन्तु अनुबन्ध से पहले ही गोदाम से 100 बोरा चावल की चोरी हो गयी थी, जिसकी जानकारी मोहन को नहीं थी। यह विशिष्ट माल की बिक्री नहीं है, अतः मोहन को कहीं से भी 200 बोरा चावल देने के लिए बाध्य है।

(ख) जब किसी विशिष्ट माल के विक्रय का समझौता किया जाता है और समझौता करने के बाद, किन्तु स्वामित्व हस्तांतरित होने के पहले ही, विक्रेता या क्रेता की गलती के बिना माल नष्ट हो जाता है अथवा इतना खराब हो जाता है कि वह समझौता में दिये गये वर्णन से मेल नहीं खाता, तो विक्रय समझौता व्यर्थ होता है।

उदाहरण के लिए कमल ने विमल से उसकी गाय 15 दिन बाद क्रय करने का समझौता किया। इसी बीच गाय की मृत्यु हो गयी। यह समझौता व्यर्थ हुआ माना जायेगा।

उपर्युक्त नियम के लागू होने के लिए निम्नलिखित शर्त पूरी होनी चाहिए-

(i) माल स्वामित्व हस्तांतरण से पहले नष्ट हुआ हो,

(ii) विक्रय नहीं, केवल विक्रय का समझौता किया गया हो,

(iii) क्रेता या विक्रेता की कोई गलती से माल नष्ट नहीं हुआ, एवं

(iv) विक्रय का समझौता विशिष्ट माल के लिए हो, अनिश्चित माल के लिए नहीं।

7.10 मूल्य-निर्धारण (Fixation of Price)

मूल्य विक्रय अनुबन्ध का एक अनिवार्य तत्त्व है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(10) के अनुसार 'मूल्य' से आशय माल या वस्तु की बिक्री के प्रतिफल से है, जो सदैव मुद्रा में ही होना चाहिए। विक्रय-अनुबन्ध में मूल्य निश्चित होना चाहिए अथवा अनुबन्ध द्वारा निर्दिष्टि किसी विधि द्वारा निश्चित होने योग्य होना चाहिए। विक्रय-अनुबन्ध की धारा 9 एवं 10 में मूल्य-निर्धारण की निम्नलिखित विधियों का वर्णन किया गया है-

(i) विक्रय-अनुबन्ध करते समय क्रेता और विक्रेता दोनों मिलकर किसी वस्तु को स्वेच्छा-पूर्वक कोई भी मूल्य निर्धारित कर सकते हैं।

(ii) यदि विक्रय अनुबन्ध में कोई स्पष्ट मूल्य नहीं दिया हो और न ही मूल्य निर्धारण की कोई स्पष्ट रीति दी हुई हो तो ऐसी स्थिति में पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

7.9 माल का नष्ट होना (Destruction of Goods)

विक्रय-अनुबन्ध की विषय-वस्तु अर्थात् माल यदि अनुबन्ध के निष्पादन के पहले ही नष्ट हो जाये, तो इस सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैं।

(क) यदि विशिष्ट माल अनुबन्ध करने के पहले ही नष्ट हो चुका है अथवा इतना खराब हो चुका है कि वह अनुबन्ध में दिए गए वर्णन से मेल नहीं खाता एवं विक्रेता को इस बात की कोई जानकारी नहीं है, तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है। उदाहरण के लिए रवि, रीतेश को एक विशिष्ट गाय बेचने का अनुबन्ध करता है। बाद में पता चलता है कि अनुबन्ध के समय गाय मर चुकी थी, किन्तु दोनों पक्ष को इस बात की जानकारी नहीं थी। अतः यह विक्रय एवं निष्पादन की असम्भवता के आधार पर व्यर्थ माना जायेगा।

किन्तु उपर्युक्त नियम केवल विशिष्ट माल के विक्रय के सम्बन्ध में ही लागू होता है, अनिश्चित माल के लिए नहीं यदि किसी ऐसे अनिश्चित माल के लिए नहीं। यदि किसी ऐसे अनिश्चित माल के विक्रय के लिए कोई अनुबन्ध किया जाता है जो अनुबन्ध से पहले ही नष्ट हो चुका है, तो वह अनुबन्ध व्यर्थ नहीं माना जायेगा।

उदाहरण के लिए मोहन अपने गोदाम में रखे 2000 बोरा चावल बेचने का अनुबन्ध सोहन के साथ करता है। किन्तु अनुबन्ध से पहले ही गोदाम से 100 बोरा चावल की चोरी हो गयी थी, जिसकी जानकारी मोहन को नहीं थी। यह विशिष्ट माल की बिक्री नहीं है, अतः मोहन को कहीं से भी 200 बोरा चावल देने के लिए बाध्य है।

(ख) जब किसी विशिष्ट माल के विक्रय का समझौता किया जाता है और समझौता करने के बाद, किन्तु स्वामित्व हस्तांतरित होने के पहले ही, विक्रेता या क्रेता की गलती के बिना माल नष्ट हो जाता है अथवा इतना खराब हो जाता है कि वह समझौता में दिये गये वर्णन से मेल नहीं खाता, तो विक्रय समझौता व्यर्थ हुआ माना जायेगा।

उपर्युक्त नियम के लागू होने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए-

(i) माल स्वामित्व हस्तांतरण से पहले नष्ट हुआ हो,

(ii) विक्रय नहीं, केवल विक्रय का समझौता किया गया हो,

(iii) क्रेता या विक्रेता की कोई गलती से माल नष्ट नहीं हुआ हो, एवं

(iv) विक्रय का समझौता विशिष्ट माल के लिए हो, अनिश्चित माल के लिए नहीं।

7.10 मूल्य-निर्धारित (Fixation of Price)

मूल्य विक्रय अनुबन्ध का एक अनिवार्य तत्त्व हैं। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(10) के अनुसार 'मूल्य' से आशय माल या वस्तु की बिक्री के प्रतिफल से है, जो सदैव मुद्रा में ही होना चाहिए। विक्रय-अनुबन्ध में मूल्य निश्चित होना चाहिए अथवा अनुबन्ध द्वारा निर्दिष्ट किसी विधि द्वारा निश्चित होने योग्य होना चाहिए। विक्रय-अनुबन्ध की धारा 9 एवं 10 में मूल्य-निर्धारण की निम्नलिखित विधियों का वर्णन किया गया है-

(i) विक्रय-अनुबन्ध करते समय क्रेता और विक्रेता दोनों मिलकर किसी वस्तु को स्वेच्छा-पुर्वक कोइ भी मूल्य निर्धारित कर सकते हैं।

(i) यदि विक्रय अनुबन्ध में कोई स्पष्ट मूल्य नहीं दिया हो और न ही मूल्य निर्धारण की कोई स्पष्ट रीति दी हुई हो तो ऐसी स्थिति में पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

(iii) क्रेता एवं विक्रेता अनुबन्ध करते समय माल का मूल्य बाद में किसी विधि द्वारा निर्धारित करने के लिये छोड़ सकते हैं। जैसे, अनुबन्ध के दोनों पक्ष यह तय कर सकते हैं कि माल का मूल्य वही होगा जो अन्य व्यक्ति देंगे।

(iv) यदि उपर्युक्त विधियों द्वारा माल का मूल्य-निर्धारण नहीं हो पाता, तो ऐसी स्थ्ज्ञति में क्रेता, विक्रेता को उचित मूल्य देने के लिए बाध्य होता है। उचित मूल्य विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। साधारणतया बाजार को ही उचित मूल्य माना जाता है।

(v) कभी-कभी क्रेता एवं विक्रेता अनुबन्ध करते समय इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि माल का मूल्य किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किया जायेगा। इस प्रकार तृतीय पक्षकार द्वारा किया जायेगा। इस प्रकार तृतीय पक्षकार द्वारा निर्धारित मूल्य क्रेता देने के लिए बाध्य होता है।

7.11 मूल्य को भुगतान (Payment of Price)

क्रेता द्वार विक्रेता को मूल्य का भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में ही किया जाना चाहिए। विक्रेता को क्रेता द्वारा देश में चालू मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। किन्तु यदि विक्रेता अन्य किसी रीति से मूल्य को स्वीकार करने के लिए किसी स्पष्ट या गर्भित समझौते के अन्तर्गत सहमत हो जाता है, तो ऐसा सम्भव हो सकता है, मूल्य का भुगतान सदैव वैधानिक मुद्रा होना चाहिए।

7.12 स्वामित्व का हस्तांतरण (Transfer of ownership)

वस्तु विक्रय के अनुबन्ध के अन्तर्गत विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तांतरण करता है। विक्रय अनुबन्ध में यह जानना आवश्यक है कि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण विक्रेता से क्रेता को कब किया गया। यह निम्नलिखित कारणों से जानना आवश्यक है-

(i) विक्रय अनुबन्ध की धारा 26 के अनुसार किसी विपरीत समझौते अथवा व्यापारिक रीति क अभाव में विक्रेता का जोखिम क्रेता को स्वामित्व हस्तांतरित होने तक रहता है। किन्तु जब स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो जाता है, तब जोखिम क्रेता का ही होता है, चाहे वस्तुओं की सुपुर्दगी दे दी गई हो अथवा नहीं। जैसे रवि ने, रीतेश की दुकान से कुछ कपड़ा क्रय किया एवं उसे दुकान में ही छोड़ दिया। कपड़ा दुकान में ही था कि दुकान में आग लग गई और कपड़े जल गये। यह हानि क्रेता अर्थात् रवि को ही सहन करनी पड़ेगी।

(ii) यदि माल को किसी तीसरे पक्ष द्वारा कुछ हानि पहुंचाई जाती है तो माल का स्वामी ही तीसरे पक्षों के विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है। अतः माल का स्वामी कौन है, जानना आवश्यक है।

(iii) क्रेता अथवा विक्रेता के दिवालिया घोषित होने की स्थिति में यह निर्णय करने के लिए कि माल सरकारी रिसीवर के अधिकार में जायेगा अथवा नहीं, अतः यह जानना आवश्यक है कि उस समय का स्वामी कौन है।

(iv) माल का स्वामित्व क्रेता हस्तांतरित किये बिना विक्रेता मूल्य के लिए दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता।

सामान्यतया अनुबन्ध के पक्षकारों की इच्छा पर यह निर्भर करता है कि वे कब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण करें। किन्तु यदि पक्षकार इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट इच्छा निश्चित नहीं कर ते तो ऐसी स्थिति में वस्तु-विक्रय अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अनुसार निम्नलिखित नियम लागू होते हैं-

(क) निश्चित माल का स्वामित्व हस्तांतरण - निश्चित माल के विक्रय के अनुबन्ध में माल का स्वामित्व क्रेता को उस समय हस्तांतरित होता है जब पक्षकारों का इरादा या इच्छा हो। किन्तु जब पक्षकारों का कोई अन्य अभिप्राय नहीं है तो माल के दायित्व के हस्तांतरण के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है-

(i) जब माल सुपुर्दगी योग्य है- जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है, तब विक्रय के साथ ही माल के स्वामित्व का हस्तांतरण विक्रेता से क्रेता को हो जाता है। चाहे वह माल के मूल्य का भुगतान अथवा सुपुर्दगी हुई है अथवा नहीं।

(ii) जब माल को सुपुर्दगी योग्य दशा में लाना हो - यदि विशिष्ट माल का शर्त रहित विक्रय अनुबन्ध हुआ है

किन्तु माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने के लिए विक्रेता को कुछ कार्यवाही करनी है तो यह कार्यवाही पूरा हो जाने एवं इसकी सूचना विक्रेता को मिल जाने के बाद ही विक्रेता से क्रेता को स्वामित्व का हस्तांतरण होगा।

(iii) **जब वस्तु का मूल्य निश्चित करना शेष हो** - यदि अनुबन्ध सुपुर्दगी योग्य स्थिति में किसी विशिष्ट माल की बिक्री के सम्बन्ध में हे किन्तु विक्रेता को उसका मूल्य निश्चित करने के लिए नापना, तौलना अथवा परीक्षण करना शेष है, तो ऐसे माल का स्वामित्व उस समय तक हस्तांतरित नहीं होगा जब तक इस प्रकार के कार्य न कर दिये जाऐं एवं इस बात की सूचना क्रेता को न मिल जाए।

उदाहरण के लिए A, B से एक मेज क्रय करने का अनुबन्ध करता है। B को अभी मेज पर पालिश करना शेष है। मेज का स्वामित्व A को उस समय मिलेगा जब B इस पर पालिश कर देगा एवं इसकी सूचना A को देगा।

(iv) जब माल पसन्दगी अथवा वापसी की शर्त पर बेचा जाय - यदि माल क्रेता को पसन्द अथवा वापसी की शर्त पर सुपुर्द किया जाता है तो माल का क्रेता निम्नलिखित स्थितियों में ही माल का स्वामी बन सकता है-

(a) पसन्दगी की सूचना विक्रेता को देने पर।

(b) ऐसा कार्य करने पर जो स्वीकृति के समान माना जाता है।

(c) निश्चित समय बीतने पर।

(ख) **अनिश्चित माल का स्वामित्व हस्तांतरण** - जब विक्रय किसी अनिश्चित माल के सम्बन्ध में है, तो ऐसे माल का स्वामित्व क्रेता को उस समय तक हस्तांतरित नहीं होता जब तक कि माल निश्चित न कर लिया जाय। अनिश्चित माल का अर्थ ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध के समय पक्षकारों द्वारा पहचाना अथवा निश्चित न किया गया हो, बल्कि जिसका विक्रय केवल वर्णन द्वारा किया गया हो।

इस सम्बन्ध में स्वामित्व हस्तांतरण की शर्तें अधिनियम की धारा 23 में दिये गये हैं जो निम्नलिखित हैं-

(i) माल का निश्चित किया जाना - जब अनिश्चित माल की बिक्री के लिए अनुबन्ध किया जाता है, तो माल का स्वामित्व क्रेता को उस समय तक हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, जब तक कि माल निश्चित न कर दिया जाय।

उदाहरण के लिए A के गोदाम में 1000 हजार बोरा चावल विभिन्न किस्म के है। B इसमें से 100 बोरा चावल 'परमल' किस्म का क्रय करने का अनुबन्ध करता है। किन्तु गोदाम A अथवा B पारस्परिक सहमति से 'परमल' किस्म के 100 बोरा चावल अलग कर लेते हैं, तो अलग करते ही माल अनिश्चित से निश्चित हो जायेगा एवं स्वामित्व का हस्तांतरण क्रेता को हो जायेगा।

(ii) वाहक को माल की सुपुर्दगी - यदि अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता माल को क्रेता के पास पहुंचने के लिए उसे किसी वाहक या निक्षेपित (चाहे क्रेता ने उसका नाम बताया हो या नहीं) को देता है और माल पर अपने अधिकार सुरक्षित नहीं रखता, तो माल की सुपुर्दगी देते ही स्वामित्व हस्तांतरित हो जाता है। किन्तु यदि विक्रेता माल वाहक को सौंपने के बाद भी उस पर अपने अधिकार सुरक्षित रख लेता है ताकि स्वामित्व

हस्तांतरित होने से पहले उसे अपने माल का मूल्य प्राप्त हो जाए, तो वाहक को माल देते समय स्वामित्व हस्तांतरित नहीं होता।

(ग) पसंद वापसी शर्त पर प्रेषित माल के स्वामित्व का हस्तांतरण - यदि क्रेता को माल 'पसंद या वापसी शर्त पर दिया गया हो, तो माल के स्वामित्व का हस्तांतरण क्रेता को निम्नलिखित स्थितियों में हो सकता है-

(i) जब क्रेता अपनी स्वीकृति विक्रेता के सामने व्यक्त कर दे अथवा कोई दूसरा ऐसा कार्य करे जिससे यह स्पष्ट हो कि उसने माल को स्वीकार कर लिया है।

(ii) जब क्रेता अपनी स्वीकृति विक्रेता को स्पष्ट न करे किन्तु वह अस्वीकृति की सूचना दिये बिना माल को रोककर अपने अधिकार में रखे रहे तो ऐसी स्थिति में यदि माल को लौटाने की अवधि कर दी गयी हो, तो इस अवधि के बीत जाने के बाद एवं यदि कोई अवधि निश्चित न की गयी हो, तो उचित अवधि के बीत जाने पर माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो जाता है।

7.13 विक्रेता द्वारा माल के व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित रखना (Seller reserving right of disposal)

जब विक्रेता रेलवे रसीद या जहाजी बिल्टी अपने या अपने एजेन्ट के नाम बनवाता है तो माल पर विक्रेता का ही अधिकार बना रहता है। इसी प्रकार, जब विक्रेता एक विनिमय पत्र क्रेता के नाम बनाकर माल के अधिकार पत्रों के साथ अपने बैंक को इस आदेश के साथ भेज देता है कि जब क्रेता मूल्य का भुगतान न कर दें या विनिमय पत्र स्वीकार न कर लें, उसे माल के अधिकार पत्र न दिए जाए तो ऐसी स्थिति में माल का स्वामित्व बिना मूल्य का भुगतान किए अथवा विनिमय पत्र स्वीकार किए हस्तांतरित नहीं होगा। यदि विक्रेता मूल्य के लिए क्रेता पर बिल लिखकर उसे जहाजी बिल्टी या रेलवे रसीद के साथ क्रेता के पास भेज देता है, तो अगर क्रेता बिल को स्वीकार नहीं करता, वह (क्रेता) जहाजी बिल्टी या रेलवे रसीद विक्रेता को लौटा देने के लिए बाध्य है। यदि क्रेता जहाजी बिल्टी या रेलवे रसीद अपने पास ही रखे रहता है तब भी वह माल का स्वामी हो सकता है क्योंकि विक्रेता का आशय इस प्रकार का नहीं था।

7.14 शर्त एवं आश्वासन (Conditions and warranties)

वस्तु विक्रय अनुबन्ध करने से पहले विक्रेता वस्तु के सम्बन्ध में अनेक बातें क्रेता को बताते हैं। ये सभी बातें या कथन समान महत्व के नहीं होते, इस कथन में कुछ अनुबन्ध के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं एवं कुछ कम महत्वपूर्ण। ऐसे कथन जो अनुबन्ध के लिए अधिक महत्वपूर्ण होते हैं उन्हें 'शर्त' (conditions) एवं कम महत्व के कथनों को 'आश्वासन' (warranties) कहते हैं।

वस्तु विक्रय अनुबन्ध में कोई कथन शर्त है या आश्वासन, यह अनुबन्ध की रचना पर निर्भर करता है। यदि विक्रेता वस्तु के सम्बन्ध में कोई ऐसा कथन दृढ़तापूर्वक कहता है जिसके बारे में क्रेता को कोई जानकारी नहीं है, तो यह कथन अनुबन्ध का एक भाग अथवा आधार बन जाता है। इसके विपरीत, यदि बिना किसी विशिष्ट ज्ञान के विक्रेता वस्तु के सम्बन्ध में अपनी राय प्रकट करता है या वस्तु की प्रशंसा करता है तो इसे अनुबन्ध का भाग या आधार नहीं माना जाता।

किन्तु यदि विक्रेता अपनी वस्तुओं की प्रशंसा मात्र करता है तो यह विक्रय अनुबन्ध का भाग नहीं होता। उदाहरण के लिए, रवि अपनी गाय बेचते समय सोहन से कहता है कि 'गाय बहुत भाग्यशाली है' अब यदि गाय भाग्यशाली सिद्ध नहीं होती तो सोहन रवि के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता, क्योंकि विक्रेता (रवि) द्वारा किया गया कथन विचारों की अभिव्यक्ति मात्र है।

शर्त (Condition) - वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12(2) के अनुसार शर्त एक ऐसा बन्धन है, जो विक्रय अनुबन्ध के लिए आवश्यक होता है एवं जिसके भंग होने पर पक्षकारों को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार मिल जाता है। उदाहरण के लिए रीतेश, रवि से एक ऐसी गाड़ी क्रय करने का समझौता करता है जो एक लीटर पेट्रोल में 70 किलोमीटर चल सके। रवि एक गाड़ी रीतेश को बेच देता है। बाद में रीतेश को पता चलता है कि गाड़ी एक लीटर पेट्रोल में मात्र 55 किलोमीटर चलती है। इस उदाहरण में रीतेश का यह कथन कि गाड़ी 70 किलोमीटर चलना चाहिए अनुबन्ध का एक भाग है, अतः यह शर्त है जिसे अवश्य पूर्ण किया जाना चाहिए। इससे शर्त पूर्ण नहीं हुई, अतः रीतेश अनुबन्ध को समाप्त करने का अधिकार रखता है।

आश्वासन (Warranties) - वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा (3) के अनुसार, आश्वासन एक ऐसा बन्धन है, जो विक्रय अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए सामपार्श्विक (calleteral) होता है एवं जिसके भंग होने पर अनुबन्ध के त्याग का अधिकार नहीं, केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त होता है। उपरोक्त उदाहरण में रीतेश रवि से एक अच्छी गाड़ी क्रय करने की इच्छा व्यक्त करता है एवं रवि गाड़ी देते समय यह कहता है कि यह गाड़ी एक लीटर पेट्रोल में 70 किलोमीटर चलती है। बाद में यह पता चलता है कि वह केवल 55 किलोमीटर चलती है। इस स्थिति में विक्रेता का कथन सामपार्श्विक है एवं अनुबन्ध इस कथन पर आधारित नहीं है। अतः यह आश्वासन भंग माना जायेगा एवं रीतेश केवल क्षतिपूर्ति ही मांग कर सकता है, अनुबन्ध को समाप्त नहीं कर सकता।

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत किया गया कथन शर्त है या आश्वासन, यह अनुबन्ध की रचना पर निर्भर करता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुबन्ध में आश्वासन बताया गया है, किन्तु वास्तव में उसे शर्त माना जाए। ऐसी स्थिति में न्यायालय दोनों पक्षों के उद्देश्य एवं अन्य तथ्यों को ध्यान में रखकर ही निर्णय देता है।

7.14 शर्त एवं आश्वासन में अन्तर (Distinction between condition and warranties)

1. शर्त का होना अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए आवश्यक है, किन्तु आश्वासन अनुबन्ध के मुख्य [illegible] के लिए सामपार्श्विक होता है।
2. शर्त भंग होने पर पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है, जबकि आश्वासन भंग होने पर पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार नहीं रखता, केवल हर्जाना की मांग कर सकता है।
3. शर्त भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्त हो जाता है एवं दोषी पक्षकार से हर्जाना भी वसूल कर सकता है, लेकिन आश्वासन भंग की स्थिति में पीड़ित पक्षकार को निष्पादन से मुक्ति नहीं मिलती, केवल वह दोषी पक्षकार से हर्जाना वसूल कर सकता है।
4. शर्त भंग होने पर कुछ विशेष परिस्थितियों में पीड़ित पक्ष इसे आश्वासन भंग मानकर हर्जाना के लिए दावा कर सकता है, किन्तु आश्वासन भंग को किसी भी दशा में शर्त भंग नहीं माना जा सकता।

7.14.2 शर्त कब आश्वासन भंग मानी जा सकती हैं ? (When condition can be treated as warranties)–

निम्नलिखित परिस्थितियों में शर्त भंग को आश्वासन भंग माना जा सकता है। अर्थात् क्रेता अनुबन्ध का परित्याग नहीं कर सकता, केवल हर्जाना की मांग कर सकता है-

(a) यदि विक्रेता अनुबन्ध के अन्तर्गत विक्रेता की कोई शर्त पूरी करनी हो तो क्रेता उस शर्त का परित्याग कर सकता है या शर्त भंग को आश्वासन भंग मान सकता है।

(b) यदि विक्रय अनुबन्ध अलग-अलग न हो सकने योग्य है, तो ऐसी स्थिति में क्रेता द्वारा सम्पूर्ण माल अथवा उसके किसी भाग को स्वीकार कर लेने पर, तो शर्त भंग केवल आश्वासन भंग माना जायेगा।

(c) यदि विक्रय-अनुबन्ध किसी ऐसे विशिष्ट माल के सम्बन्ध में हो और क्रेता को ऐसे माल का स्वामित्व हस्तान्तरित कर दिया गया हो, तो ऐसी स्थ्इति में भी क्रेता शर्त-भंग को केवल आश्वासन भंग समझ सकता है, किन्तु यदि अनुबन्ध में इसके विपरीत कोई स्पष्ट या गर्भित शर्त दी गई हो, तो यह नियम लागू नहीं होगा।

7.14.3 स्पष्ट एवं गर्भित शर्त एवं आश्वासन (Express and Implied conditions and warranties)-

स्पष्ट शर्त यह आश्वासन उसे कहते हैं जिन्हें पक्षों ने अनुबन्ध करते समय स्पष्ट रूप से तय कर लिया है। गर्भित शर्त या आश्वासन वे हैं जो, कोई विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, पक्षकारों के आचरण या व्यापार की प्रथा द्वारा लागू माने जाते हैं। विक्रय अनुबन्ध में गर्भित शर्तों एवं आश्वासनों को निहित मान लिया जाता है।

गर्भित शर्तें (Implied conditions) - वस्तु-विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत निम्नलिखित गर्भित शर्तें हैं-

(i) स्वामित्व सम्बन्धी शर्त (condition as to title) - अधिनियम की धारा 14(a) के अनुसार विक्रेता द्वारा बेचे जा रहे माल पर उसका स्वामित्व है अथवा विक्रय के टहराव की दशा में वह स्वामित्व हस्तान्तरित करते समय वस्तु का स्वामी हो जायेगा- यह एक ऐसी शर्त है जो प्रत्येक विक्रय अनुबन्ध में गर्भित होती है। विक्रेता के लिए माल का स्वामी होना आवश्यक नहीं है, वह माल के स्वामी का एजेन्ट हो सकता है, किन्तु उसका स्वत्व दोषपूर्ण नहीं होना चाहिए।

(ii) वर्णन द्वारा विक्रय (state by description) - धारा 15 के अनुसार जब कोई विक्रय-अनुबन्ध वर्णन के आधार पर किया गया है तब उसमें यह एक गर्भित शर्त होती है कि वस्तु वर्णन के अनुसार ही होगी। कभी क्रेता वस्तु को देख तो लेता है किन्तु क्रय करने का निर्णय यह विक्रेता द्वारा किये गये वर्णन के आधार पर ही करता है। ऐसे विक्रय को भी वर्णन द्वारा विक्रय ही माना जाता है, बशर्ते देखने से वस्तु के वर्णन से भिन्नता का कोई आभास न होता हो।

(iii) नमूने द्वारा विक्रय (Sale by description) - धारा 17(1) के अनुसार जब विक्रय अनुबन्ध में कोई स्पष्ट या गर्भित शर्त हो कि वस्तु नमूने के अनुसार ही दी जायेगी, तब ऐसे विक्रय-अनुबन्ध में निम्नलिखित तीन गर्भित शर्त होती है-

(a) सभी वस्तु की किस्म नमूने के अनुरूप होगी।

(b) क्रेता से नमूने के माल की तुलना करने का उचित अवसर प्रदान किया जायेगा।

(c) माल में कोई ऐसा दोष नहीं होगा, जो व्यापार योग्य किस्म का न रहे एवं जो नमूने की यथोचित जांच के बाद भी ज्ञात न हो सके।

(iv) वर्णन एवं नमूने द्वारा विक्रय (Sale by description as well as by sample) - यदि माल वर्णन एवं नमूने के द्वारा विक्रय किया जा रहा है तब यह गर्भित शर्त होती है कि माल वर्णन एवं नमूने दोनों के अनुसार होगा। ऐसी स्थिति में यदि माल वर्णन के अनुसार नहीं है तो माल का नमूने के अनुसार होना पर्याप्त नहीं होगा। उदाहरण के लिए निकोल बनाम गोट्स के केस में अरण्डी का तेल नमूने के अनुसार विक्रय का अनुबन्ध हुआ। तेल की जो आपूर्ति हुई वह नमूने के अनुसार तो थी किन्तु उसमें मिलावट थी। निर्णय दिया गया कि तेल नमूने के अनुसार होने के बाद भी अरण्डी का तेल नहीं कहा जा सकता। अतः क्रेता तेल लेने से मना कर सकता था।

(v) किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में (As to quality fitness) - साधारणतः विक्रय-अनुबन्धों में माल की किस्म अथवा उपयुक्तता सम्बन्धी कोई गर्भित शर्त नहीं होती। क्योंकि वह क्रेता सावधान रहे' (Caveat emptor) का नियम लागू होता है। इसका अर्थ यह है कि माल का क्रय करते समय क्रेता को वस्तु के गुण तथा उपयुक्तता के लिए स्वयं सावधान रहना चाहिए। किन्तु जहाँ क्रेता स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से विक्रेता को वह विशेष आशय जिसके लिए वस्तु की आवश्यक है, बतला देता है और उससे यह प्रकट होता है कि वह विक्रेता की कुशलता एवं विवेक बुद्धि पर भरोसा करता है एवं माल ऐसा है जो कि विक्रेता द्वारा सामांन्य रूप से विक्रय किया जाता है तो उसमें यह गर्भित शर्त होती है कि माल उस आशय के लिए यथोचित रूप से उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए रवि पानी गरम करने के लिए मशीन का व्यापारी है। रमेश उससे अपना उद्देश्य बताये बिना मशीन क्रय करता है। यहाँ पर मशीन पानी गरम करने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। यह एक गर्भित शर्त है।

(vi) विक्रय योग्यता सम्बन्धी शर्त (condition as to Merchantability) - धारा 16(2) के अनुसार जहाँ माल वर्णन के आधार पर किसी ऐसे विक्रेता से क्रय किया जाये, जो उसी प्रकार का माल बेचता है, तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त रहती हे कि माल व्यापार योग्य होगा।

(vii) हानि रहित सम्बन्धी शर्त (condition as to wholesomeness) - खाद्य-पदार्थ की वस्तुओं में विक्रय योग्यता के अलावे एक और गर्भित शर्त होती है कि वे हानि रहित है। क्योंकि फास्ट बनाम आयल्सबरी डेरी कं०लि० (Frost V. Aylesbury Dairy Co. Ltd.) के केस में एक व्यक्ति ने दूध क्रय किया जिसमें टायफाइड के कीटाणु थे। दूध पीने के बाद उस व्यक्ति की पत्नी को टाइफाइड हो गया एवं वह मर गई, विक्रेता को इस हानि के लिए उत्तरदायी माना गया।

7.14.4 गर्भित आश्वासन (Implied Warranties) -

वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते हैं-

(i) अधिनियम की धारा 14(B) के अनुसार, क्रेता को विक्रेता की ओर से यह गर्भित आश्वासन होता है कि क्रेता माल को शान्ति से रख सकेगा एवं उसका उपयोग शान्तिपूर्ण ढंग से करने का अधिकारी होगा।

(ii) अधिनियम की धारा 14(C) के अनुसार, प्रत्येक विक्रय अनुबन्ध में किसी विपरीत आशय के अभाव में यह

गर्भित आश्वासन रहता है कि माल तीसरे पक्षकार के ऐसे भार से मुक्त होगा कि अनुबन्ध करते समय या उसके पहले कभी घोषित नहीं किया गया था जिसके क्रेता को ज्ञान नहीं था।

(iii) अधिनियम की धारा 16(3) के अनुसार किसी विशेष आशय के लिए किस्त अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में व्यापार की रीति के अनुसार गर्भित आश्वासन हो सकता है।

(iv) व्यापार चिन्ह लगा होने पर क्रेता को यह गर्भित आश्वासन होता है कि व्यापार चिन्ह असली है और माल शुद्ध है।

(v) यदि विक्रय की जाने वाली वस्तु ऐसी है जिसके उपयोग के सम्बन्ध में विशेष सावधानी की आवश्यकता है, तब विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह क्रेता को सावधान कर दें एवं यह बता दें कि ऐसी वस्तुओं के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

7.14.5 क्रेता सावधान का सिद्धान्त (Doctrine of Caveat Emptor) –

सामान्यतः वस्तु के विक्रय के सम्बन्ध में क्रेता सावधान का नियम लागू होता है, जिसके अनुसार क्रेता का यह कर्त्तव्य है कि माल क्रय करते समय यह उसकी अच्छी तरह से देखभाल कर ले एवं स्वयं निर्णय करें कि वह माल उसके उद्देश्य के लिए उपयुक्त है या नहीं। माल क्रय के बाद यदि उसमें कोई खराबी का पता चलता है तो क्रेता इसके लिए विक्रेता को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता। यह सिद्धान्त उस समय का है जब माल अधिकतर खुले बाजार में विक्रय किया जाता था। ऐसी स्थिति में माल क्रय करने से पहले क्रेता उसकी अच्छी तरह से जाँच कर सकता था। किन्तु आधुनिक व्यापारिक युग में बहुत-सा क्रय-विक्रय पत्र व्यवहार द्वारा ही किया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि 'क्रेता सावधान' के सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जाय तो क्रेताओं को बड़ी परेशानी होगी। अतः अधिनियम में इस सिद्धान्त के कुछ अपवाद भी दिए गए हैं जो निम्नलिखित हैं

(i) यदि क्रेता ने माल क्रय करने का उद्देश्य विक्रेता को स्पष्ट या गर्भित रूप से बता दिया हो एवं वह विक्रेता की योग्यता एवं चातुर्य पर निर्भर करता है, तब विक्रेता का कर्त्तव्य है कि जो माल बेचा जाय वह उस उद्देश्य के लिए उपयुक्त हो।

(ii) यदि क्रय की गई वस्तु अनेक उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है, विक्रेता को उत्तरदायी ठहराने के लिए उसे विशिष्ट उद्देश्य बता देना चाहिए। किन्तु क्रय की जाने वाली वस्तु ऐसी है जो केवल एक ही कार्य के लिए प्रयुक्त होती है तब क्रेता द्वारा विक्रेता को उद्देश्य बताना आवश्यक नहीं होता।

(iii) यदि माल किसी पेटेन्ट या व्यापार चिन्ह के अन्तर्गत क्रय किया जाता है तब किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए उपयुक्तता सम्बन्धी गर्भित शर्त नही होती, किन्तु विक्रय योग्यता सम्बन्धी शर्त तब भी लागू होती है।

(iv) यदि विक्रेता कपट द्वारा माल के दोषों को छिपाता है अथवा वस्तु में ऐसे गुप्त दोष हैं जो साधारण जाँच से पता नहीं चल सकते, तब भी यह सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(v) यदि माल वर्णन द्वारा किसी ऐसे विक्रेता से क्रय किया जाता है जो उन्हें प्रायः बेचता है, तब यह गर्भित शर्त होती है कि माल विक्रय योग्य होगा, किन्तु अगर क्रेता ने माल की जाँच कर ली हो तब यह गर्भित शर्त ऐसे दोषों के लिए लागू नहीं होती जो साधारण जाँच से पता लगाया जा सकता था।

(vi) व्यापारिक प्रथा के अनुसार भी माल के गुण या किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए उपयुक्तता की शर्त गर्भित हो सकती हैं।

7.15 विक्रय अनुबन्ध का निष्पादन (Performance of the Contract of Sales)

विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के लिए यह आवश्यक है कि विक्रेता एवं क्रेता दोनों अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें। अधिनियम की धारा 31 के अनुसार, विक्रेता का यह कर्त्तव्य होता है कि विक्रय अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल की सुपुर्दगी क्रेता को करें। जबतक कोई विपरीत समझौता न हुआ हो, माल की सुपुर्दगी देना और मूल्य का भुगतान करना समवर्ती (Concurrent) शर्तें होती है, अर्थात् दोनों कार्य साथ-साथ ही होने चाहिए।

7.15.1 सुपुर्दगी (Delivery) -

सुपुर्दगी का अर्थ विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत होती है। एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को स्वेच्छा से माल का अधिकार देना। बेचे गये माल की सुपुर्दगी कोई भी ऐसा कार्य करने दी जा सकती है जो पक्षकारों ने आपस में तय किया हो एवं जिसका प्रभाव माल को क्रेता के कब्जे में कर देना हो।

माल की सुपुर्दगी निम्नलिखित तीन प्रकार से हो सकती हैं-

(a) वास्तविक सुपुर्दगी (Actual Delivery) - जब विक्रेता द्वारा यथार्थ रूप से माल क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को सुपुर्द किया जाता है, तो इसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते हैं।

(b) रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive delivery) - रचनात्मक सुपुर्दगी के अन्तर्गत माल का हस्तान्तरण वास्तविक रूप से नहीं किया जाता, बल्कि माल को विक्रेता अथवा अन्य पक्ष के पास रहता है किन्तु वह क्रेता के पास पहुँचने का प्रभाव रखता है। उदाहरण के लिए रवि का माल रमेश के अधिकार में है। रवि उस माल को मोहन को बेच देता है एवं रमेश मोहन के लिए माल अपने पास रखने की स्वीकृति देता है, तो यह रचनात्मक सुपुर्दगी कहलायेगी।

(c) सांकेतिक सुपुर्दगी (Symbolic delivery) - जब माल वजन एवं परिमाण में इतना अधिक है कि उसका भौतिक स्थानान्तरण करना असम्भव हो तो विक्रेता ऐसे माल की सुपुर्दगी संकेत के आधार पर करता है। जैसे गोदाम में भरे अनाज की सुपुर्दगी गोदाम की चाबी क्रेता को देने से हो सकती है।

7.15.2 सुपुर्दगी सम्बन्धी नियम (Rules regarding delivery) -

माल की सुपुर्दगी के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है-

(1) वस्तु विक्रय अनुबन्ध की धारा 35 के अनुसार विक्रेता माल की सुपुर्दगीदेने के लिए बाध्य है, किन्तु कोई विपरीत समझौता न होने पर, विक्रेता तब तक माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है जब तक कि क्रेता सुपुर्दगी की मांग न करे।

(2) धारा 36(1) के अनुसार यह बात आपसी अनुबन्ध पर निर्भर करती है कि क्रेता स्वयं विक्रेता के यहाँ जाकर माल की सुपुर्दगी लेगा अथवा विक्रेता स्वयं क्रेता के घर पर माल की सुपुर्दगी का ढंग निश्चित किया जा सकता है।

(3) धारा 36(1) के अनुसार ही यदि अनुबन्ध में सुपुर्दगी का सथान दिया हुआ है तो विक्रेता का यह कर्त्तव्य है कि वह उसे निश्चित स्थान पर ही माल की सुपुर्दगी दें। लेकिन यदि अनुबन्ध में सुपुर्दगी का स्थान नहीं दिया हुआ है तो बिक्री के समय जिस स्थान पर माल होता है, सुपुर्दगी उसी स्थान पर मानी जाती है।

(4) धारा 36(2) के अनुसार, यदि विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत विक्रेता, क्रेता के पास माल भेजने के लिए बाध्य है, किन्तु सुपुर्दगी का कोई समय निश्चित नहीं किया जाता है, तो विक्रेता उचित समय के भीतर माल भेज देने के लिए बाध्य है। उचित समय अनुबन्ध के तथ्यों पर निर्भर करता है।

(5) अधिनियम की धारा 36(3) के अनुसार विक्रय किया गया माल जब तीसरे व्यक्ति के अधिकार में होता है, तब ऐसे माल की सुपुर्दगी उस समय तक नहीं मानी जाती, जबतक कि तीसरा व्यक्ति क्रेता के लिए माल अपने पास रखने के लिए स्वीकृति न दे दें।

किन्तु जब माल का विक्रय स्वामित्व सम्बन्धी प्रपत्रों को हस्तान्तरित करते ही स्वामित्व हो जाता है, ऐसी स्थिति में तीसरे पक्ष की सहमति आवश्यक नहीं होती।

(6) धारा 36(4) के अनुसार क्रेता द्वारा सुपुर्दगी की मांग की जानी चाहिए। सुपुर्दगी की मांग करना अथवा सुपुर्दगी प्रस्तुत करना उस समय प्रभावहीन समझा जाता है, जबकि वह 'उचित समय' के अन्दर न किया गया हो। 'उचित समय' अनुबन्ध की प्रकृति, शर्तों एवं परिस्थितियों पर निर्धारित किया जाता है।

(7) अधिनियम की धारा 35(5) के अनुसार जब तक कोई विपरीत समझौता न हुआ हो, माल को सुपुर्दगी योग्य बनाने एवं सुपुर्दगी देने का समस्त व्यय विक्रेता को सहन करना पड़ता है। किन्तु सुपुर्दगी लेने का व्यय क्रेता को करने पड़ते हैं।

(8) गलत मात्रा में सुपुर्दगी (Delivery of wrong quantity) - सामान्यतः एक विक्रेता अनुबन्ध की मात्रा एवं वर्णन के अनुसार माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य होता है। किन्तु यदि गलत मात्रा अथवा वर्णन के अनुासर माल की सुपुर्दगी करता है तो निम्नलिखित नियम लागू होता है-

(i) वस्तु विक्रय अनुबन्ध की धारा 37(1) के अनुसार जब विक्रेता, क्रेता को अनुबन्ध में निश्चित मात्रा से कम माल की सुपुर्दगी करता है तो क्रेता का यह अधिकार होता है कि वह अनुबन्ध में निश्चित मात्रा को ही स्वीकार करें एवं समस्त माल को ही स्वीकार करें एवं समस्त माल को अस्वीकार कर दें। लेकिन यदि क्रेता कम मात्रा में माल की सुपुर्दगी को स्वीकार कर लेता है, तो उसे अनुबन्ध की दर से मूल्य का भुगतान करना होगा एवं कम मात्रा की सुपुर्दगी को स्वीकार कर लेता है, तो उसे अनुबन्ध की दर से मूल्य का भुगतान करना होगा एवं कम मात्रा की सुपुर्दगी से क्रेता को कुछ हानि हुई है तो उसके लिए वह विक्रेता से हर्जाना प्राप्त कर सकता है।

(ii) अधिनियम की धारा 37(2) के अनुसार यदि विक्रेता क्रेता के अनुबन्ध में निश्चित मात्रा से अधिक माल की सुपुर्दगी करता है, तो क्रेता को यह अधिकार है कि-

(क) उतना माल स्वीकार कर सकता है जितने का अनुबन्ध किया गया था एवं आधिक्त (surplus) को वापस कर सकता है, अथवा

(ख) सम्पूर्ण माल को अस्वीकार कर सकता है, अथवा

(ग) सम्पूर्ण माल को स्वीकार कर सकता है।

क्रेता को अनुबन्धित मात्रा करने एवं शेष को अस्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि क्रेता सम्पूर्ण माल स्वीकार कर लेता है तो वह सम्पूर्ण माल का मूल्य भुगतान करने के लिए बाध्य हो जाता है।

(iii) अधिनियम की धारा 37(3) के अनुसार, यदि विक्रेता क्रेता को अनुबन्ध में वर्णित माल के अतिरिक्त अन्य माल भी साथ में सुपुर्द कर देता है, तो क्रेता को यह अधिकार होता है कि वह अनुबन्ध में वर्णित माल को स्वीकार करें एवं अन्य माल को अस्वीकार कर दे अथवा समस्त माल अस्वीकार कर दें।

(iv) अधिनियम की धारा 37(4) में स्पष्ट किया गया है कि यदि धारा 37(1) एवं (3) में दी गई उपयुक्त नियम व्यापार की प्रथा, विशिष्ट समझौते एवं पक्षों के व्यवहार के अनुसार परिवर्तित किए जा सकते हैं।

9. किस्तों में सुपुर्दगी (Delivery in instaıment) - इस सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है-

(i) अधिनियम की धारा 38(1) में स्पष्ट किया गया है कि यदि इसके विपरीत कोई अनुबन्ध न हो, तो क्रेता को माल की सुपुर्दगी किस्तों में लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

(ii) जब अनुबन्ध के अनुसार माल की सुपुर्दगी किस्तों में दी जाती है एवं प्रत्येक किस्त का मूल्य अलग-अलग चुकाया जाना है तब प्रश्न उठता है कि यदि विक्रेता कोई किस्त न दें अथवा घटिया माल दे अथवा क्रेता किस्त को अस्वीकार कर दें, तो क्या सम्पूर्ण अनुबन्ध भंग माना जायेगा अथवा एक भाग को भंग मानकर हर्जाना वसूल किया जायेगा? अधिनियम की धारा 38(2) के अनुसार अनुबन्ध की शर्तों एवं परिस्थितियों पर इस प्रश्न का उत्तर निर्भर करता है।

10. वाहक की सुपुर्दगी (Delivery to carrier) - अधिनियम में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था है-

(i) धारा 39(1) के अनुसार, जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता को माल क्रेता के पास भेजना है, तो विक्रेता द्वारा माल वाहक (रेलवे कम्पनी, जहाज कम्पनी अथवा परिवहन कम्पनी) को सौंप देने पर माल की क्रेता को सुपुर्दगी मानी जायेगी एवं माल का समस्त जोखिम क्रेता को होगा।

(ii) धारा 39(2) के अनुसार यदि विक्रेता वाहक को माल देकर माल पर अपना अधिकार बनाये रखना चाहता है तो क्रेता को माल की सुपुर्दगी उस समय मानी जायेगी जब क्रेता को वास्तविक रूप से अधिकार प्राप्त हो जाये एवं ऐसी स्थिति में मार्ग का समस्त जोखिम विक्रेता का ही होगा।

(iii) धारा 39(3) के अनुसार, विक्रेता को चाहिए कि माल को सौंपते समय क्रेता की ओर से वे सभी समझौते वाहक से कर ले जो माल की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा के लिए आवश्यक है अन्यथा मार्ग में होने वाली समस्त हानि के लिए क्रेता ही उत्तरदायी होगा।

11. दूरस्थ स्थान पर माल की सुपुर्दगी (Delivery at a distance place) - धारा 40 के अनुसार यानि विक्रेता अपने ही जोखिम पर माल की सुपुर्दगी विक्रय के समय पर जहाँ पर माल है उससे कहीं दूर स्थान पर देने का वचन देता है तो भी किसी स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में, मार्ग में होने वाली स्वाभाविक क्षति को क्रेता को सहन करना पड़ेगा। किन्तु यदि कोई असाधारण या अस्वाभाविक क्षति होती है जैसे सम्पूर्ण माल ही नष्ट हो जाये, तो इसका जोखिम विक्रेता पर होगा।

12. क्रेता को माल की जाँच करने का अधिकार (Buyer's right of examining the good) - इस सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है-

(i) अधिनियम की धारा 41(1) के अनुसार, जब क्रेता को ऐसे माल की सुपुर्दगी दी जाती है जिसकी उसने पहले

कभी जाँच नहीं की है तो माल उसके द्वारा तब तक स्वीकृत नहीं माना जाता जब तक कि उसे उचित अवसर प्राप्त न हो जाए जिससे कि वह निश्चित कर सके कि माल अनुबन्ध के अनुसार है या नहीं।

(ii) धारा 41(2) में स्पष्ट किया गया है कि किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में जब विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देता है, तो क्रेता के अनुरोध पर विक्रेता, यह निश्चित करने के उद्देश्य से कि माल अनुबन्ध के अनुसार है या नहीं, माल की जाँच के लिए उचित अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य है।

7.16 क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति (Acceptance of Goods by Buyer)

क्रेता को अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल की सुपुर्दगी लेने का अधिकार है। किन्तु माल सुपुर्दगी से ही यह नहीं माना जा सकता है कि क्रेता ने माल स्वीकार कर लिया है। निम्नलिखित परिस्थितियों में क्रेता द्वारा माल स्वीकार कर लिया गया माना जाता है-

(क) जब क्रेता स्वीकृति की सूचना विक्रेता को दे देता है।

(ख) जब उचित समय समाप्त हो जाने के बाद भी क्रेता माल को अपने पास रखे रहता है एवं विक्रेता को माल अस्वीकार करने की सूचना नहीं देता।

(ग) जब क्रेता माल के साथ ऐसा व्यवहार करता है जिससे स्पष्ट होता हो कि उसने माल स्वीकार कर लिया।

माल पाने के बाद क्रेता यदि इस माल को आगे किसी अन्य व्यक्ति को बेच देता है तो यह मान लिया जाता है कि क्रेता ने माल स्वीकार कर लिया। एक बार जब माल स्वीकार कर लिया जाता है तो फिर उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

धारा 43 के अनुसार जब क्रेता माल अस्वीकार करता है तो उसका कर्त्तव्य है कि वह विक्रेता को अपने निर्णय की सूचना दें। क्रेता अस्वीकृत माल को विक्रेता तक पहुँचाने के लिए बाध्य नहीं है।

धारा 44 के अनुसार यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के लिए तैयार है एवं क्रेता से सुपुर्दगी लेने की प्रार्थना करता है, किन्तु क्रेता उचित समय के भीतर माल की सुपुर्दगी नहीं लेता तो क्रेता विक्रेता की क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होता है। यही नहीं, अगर माल की सुपुर्दगी के लिए कुछ व्यय किया गया है तो उसके लिए भी क्रेता उत्तरदायी होता है।

7.17 माल के स्वत्वाधिकार का हस्तांतरण (Transfer of Title of Goods)

माल के स्वत्वाधिकार के हस्तान्तरण का अर्थ माल के अधिकार के हस्तान्तरण से है। वस्तु-विक्रय व्यवहार के अन्तर्गत क्रेता-विक्रेता से वस्तु के साथ उसका स्वामित्व भी ग्रहण करता है। केवल वस्तु के हस्तान्तरण से स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं माना जाता है।

साधारणतया विक्रेता वही वस्तु विक्रय करता है, जिसे बेचने का उसे पूर्ण अधिकार है। किन्तु कभी-कभी विक्रेता ऐसी वस्तु भी विक्रय कर देता है जो उनका अपना नहीं है अर्थात् उस पर उनका वास्तविक स्वामित्व नहीं है। जैसे, चोरी से प्राप्त वस्तु की बिक्री या एजेन्ट द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर की गई वस्तु की बिक्री। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि उस माल के क्रेता की क्या स्थिति होगी ? इस सम्बन्ध में अधिनियम की धारा 27 के अधिकार कोई भी विक्रेता क्रेता को अपने स्वयं से अच्छा अधिकार नहीं दे सकता है। अर्थात् यदि वस्तु पर विक्रेता का स्वत्वाधिकार अच्छा है, तो क्रेता को भी दूषित स्वत्वाधिकार प्राप्त होगा, भले ही उसने मूल्य भुगतान कर सद्विश्वास के साथ माल प्राप्त किया हो। वास्तव में यह नियम वस्तुओं के वास्तविक स्वामी के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया है।

उदाहरण के लिए रवि ने चोरी से प्राप्त माल रमेश को बेच दिया। यद्यपि रमेश ने यह माल उचित मूल्य भुगतान कर एवं सद्विश्वास के साथ क्रय किया, किन्तु फिर भी वह माल का स्वामी नहीं बन सकता, क्योंकि रवि को वह माल बेचने का अधिकार नहीं था।

धारा 27 का यह नियम लैटिन भाषा के इस सिद्धान्त पर आधारित है (Memo dat quod non-babet) अर्थात् कोई भी वह नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है (no one can give a better title than he himself has.)।

किन्तु व्यावहारिक जगत में यदि उपर्युक्त नियम का कठोरता से पालन किया जाय तो निर्दोष क्रेताओं के स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों से पूर्णतया संतुष्ट होना चाहेगा। अतः कुछ परिस्थितियाँ हैं जहाँ इस नियम को लागू नहीं किया जा सकता, जो निम्नलिखित हैं-

1. यदि माल का वास्तविक स्वामी अपने आचरण से क्रेता को ऐसा विश्वास दिलाता है कि विक्रेता को वह माल बेचने का अधिकार है, तो वह अपने के क्रेता को अच्छा अधिकार दे सकता है। उदाहरण के लिए कमल माल के स्वामी मोहन ी उपस्थिति में ब्रजेश को मोहन का माल विक्रय करता है एवं मोहन मौन रहता है अथवा कमल को माल विक्रय से नहीं रोकता है, तो यह विक्रय वैध माना जायेगा एवं ब्रजेश को कमल से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा। (Sec. 27(1))

2. यदि माल के वास्तविक स्वामी की सहमति से माल अथवा उसका अधिकार-पत्र किसी व्यापारिक एजेन्ट के कब्जे में है और व्यापार की सामान्य प्रगति में वह माल बेच देता है तो क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा, किन्तु इसके लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए।

(i) विक्रेता के पास स्वामी की सहमति से माल होना चाहिए।

(ii) विक्रेता को वयपारिक एजेन्ट होना चाहिए।

(iii) एजेन्ट द्वारा माल का विक्रय व्यापार की साधारण प्रगति में किया जाना चाहिए।

(iv). क्रेता को वस्तु के क्रय करते समय यह सूचना नहीं होनी चाहिए कि विक्रेता को माल विक्रय का अधिकार नहीं है, एवं

(v) क्रेता ने सद्विश्वास के साथ माल क्रम किया हो।

3. यदि माल के सब संयुक्त स्वामियों की सहमति से माल किसी एक संयुक्त स्वामी के कब्जे में है, तो ऐसे संयुक्त स्वामी से माल क्रय करने वाले क्रेता को अच्छा अधिकार प्राप्त होगा, बशर्ते कि उसने माल सद्विश्वास के साथ क्रय किया हो एवं उसे यह पता नहीं कि संयुक्त-स्वामी को माल बेचने का अधिकार नहीं था।

4. यदि विक्रेता ने माल पर व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त किया है किन्तु विक्रय के समय तक यह व्यर्थनीय अनुबन्ध खण्डित नहीं किया गया हो, तो ऐसे माल के क्रेता को विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त होगा, किन्तु इसके लिए निम्नलिखित शर्तों का होना अनिवार्य है-

(i) विक्रेता को माल पर कब्जा भारतीय अनुबन्ध की धारा 19 एवं 20(a) के अधीन व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त होना चाहिए।

(ii) माल के विक्रय तक व्यर्थनीय अनुबन्ध खण्डित नहीं होना चाहिए; [illegible]

(iii) क्रेता सद्विश्वास के साथ माल क्रय किया हो; एवं

(iv) क्रेता को विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी नहीं हो। (धारा 29)

5 यदि विक्रेता माल विक्रय करने के बाद भी माल पर अथवा अधिकार-पत्र पर अपना कब्जा रखता है एवं वह स्वयं या अपने एजेन्ट के द्वारा उसी माल को किसी अन्य व्यक्ति को विक्रय कर देता है तो क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार मिलेगा बशर्ते कि क्रेता ने पूर्ण सद्विश्वास के साथ माल क्रय किया हो।

6 यदि किसी व्यक्ति ने माल क्रय करने का समझौता किया हो एवं उसे विक्रेता की सहमति से माल पर कब्जा प्राप्त हो गया हो तो ऐसे विक्रेता द्वारा बेचे गये माल पर क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार मिलेगा, भले ही उस माल पर प्रथम विक्रेता का पूर्वाधिकार था कुछ अन्य अधिकार बना हुआ हो। किन्तु यह आवश्यक है कि दूसरे क्रेता ने पूर्ण सद्विश्वास के साथ माल क्रय किया हो। (धारा 30(2))

7 ऐसे विक्रेता जिसे मूल्य प्राप्त नहीं हुआ हो, उसे माल पर ग्रहणाधिकार (lien) एवं माल को रास्ते में रोकने का अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार के क्रेता को अदत्त-विक्रेता कहते हैं। यदि अदत्त-विक्रेता ने अपने इस अधिकार का प्रयोग किया हो, एवं माल का पुनः विक्रय कर दिया हो, तो क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होता है। यदि बाद में पुनः विक्रय अनुचित सिद्ध हो जाये फिर भी पहला क्रेता दूसरे क्रेता से माल वापस नहीं प्राप्त कर सकता है। (धारा 54(3))

8. अनुबन्ध अधिनियम की धारा 169 के अनुसार कुछ परिस्थितियों में खोया हुआ माल पाने वाला व्यक्ति माल विक्रय का अधिकार रखता है। ऐसी दशा में क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होता है।

9. अनुबन्ध अधिनियम की धारा 176 के अनुसार कुछ परिस्थितियों में गिरवीकर्त्ता को सूचना देकर गिरवीग्राही माल का विक्रय कर सकता है एवं तब क्रेता को उसपर श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा।

10. किसी व्यक्ति के दिवालिया हो जाने पर अथवा कम्पनी के संसाधन की स्थिति में उसकी सम्पत्ति सरकारी अधिकारी अथवा समापक द्वारा विक्रय की जाती है; ऐसी स्थिति में, यद्यपि विक्रेता माल का स्वामी नहीं होता, किन्तु फिर भी वह क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्रदान करता है।

7.18 अदत्त विक्रेता (Unpaid Seller)

अदत्त विक्रेता का तात्पर्य ऐसे विक्रेता से है जिसने माल तो विक्रय कर दिया, किन्तु-

(क) उस पूरे मूल्य का भुगतान प्राप्त नहीं हुआ है अथवा भुगतान के लिए राशि प्रस्तुत नहीं की गई है, या

(ख) उसे मूल्य भुगतान के रूप में कोई विनिमय बिल या अन्य विनिमय साध्य लेख पत्र दिया गया है, किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया है। (धारा 45(1))

यदि किसी विक्रेता को माल के मूल्य का कुछ भाग प्राप्त हुआ हो, तो भी अदत्त विक्रेता ही कहलाता है। किन्तु वह विक्रेता जिसने उधार माल विक्रय किया है तभी अदत्त विक्रेता कहलायेगा, जब साख की अवधि समाप्त हो जाने पर भी मूल्य का भुगतान प्राप्त नहीं हुआ हो।

7.18.1 अदत्त विक्रेता के अधिकार (Right of unpaid seller)

वस्तु विक्रय अधिनियम के अन्तर्गत अदत्त विक्रेता के अधिकारों का अध्ययन हम दो शीर्षक के अन्तर्गत कर सकते हैं-

(क) माल के विरूद्ध अधिकार ।

(ख) स्वयं क्रेता के विरूद्ध अधिकार।

माल के विरूद्ध अधिकार (Right against the goods) - वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 46 के अनुसार, जब अदत्त विक्रेता ने माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित कर दिया हो, तो उसे निम्नलिखित तीन अधिकार प्राप्त होते हैं-

(1) ग्रहणाधिकार (Lien)

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (Right of stoppage of goods in Transit)

(3) माल के पुनः विक्रय का अधिकार (Right of Re-sale)

(1) ग्रहणाधिकार का अधिकार (Right of lien) - वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 47 के अनुसार, माल यदि अभी अदत्त विक्रेता के कब्जे में है, तो वह उसे उस समय तक अपने पास रोके रख सकता है जब तक कि सम्पूर्ण मूल्य का भुगतान न प्राप्त हो जाये अथवा मूल्य का भुगतान वैध प्रस्ताव न किया जाये। किन्तु इसे निम्नलिखित स्थिति में ही उपयोग किया जा सकता है-

(i) जब माल साख पर नहीं विक्रय किया गया हो,

(ii) माल साख पर विक्रय किया गया है किन्तु साख की अवधि समाप्त हो चुकी हों, अथवा

(iii) जब क्रेता दिबालिया हो गया हो।

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 47(2) के अनुसार, यदि क्रेता के पास माल एजेन्ट अथवा निक्षेपग्रहीता के नाते रखा हुआ है फिर भी वह ग्रहणाधिकार का उपयोग कर सकता है। धारा 48 के अनुसार यदि विक्रेता ने माल की आंशिक सुपुर्दगी (Part delivery) दे दी है, तो वह शेष माल पर ग्रहणाधिकार के त्याग का आभास स्पष्ट होता हों, तो वह शेष माल पर ग्रहणाधिकार का उपयोग नहीं कर सकता है।

ग्रहणाधिकार का सम्बन्ध माल पर कब्ज रा ह, स्वामित्व से नहीं, अगर विक्रेता माल के स्वामित्व हस्तांतरण सम्बन्धी अधिकार-पत्र क्रेता को सौंप चुके हो, तब भी उसके ग्रहणाधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, बशर्ते कि माल विक्रेता के कब्जे में हो।

किन्तु वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 49 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है-

(i) जब विक्रेता, माल पर अपना अधिकार सुरक्षित किये बिना, क्रेता तक माल पहुँचाने के उद्देश्य से उसे किसी वाहक या निक्षेपग्रहीता को सौंप देता है।

(ii) जब क्रेता अथवा उसका एजेन्ट वैधानिक रीति से माल पर कब्जा प्राप्त कर लेते हैं।

(iii) जब अदत्त स्वयं स्पष्ट रूप में अथवा आचरण द्वारा ग्रहणाधिकार के अधिकार का परित्याग कर देता है एवं

(iv) जब क्रेता मूल्य के भुगतान का प्रस्ताव करता है, तो विक्रेता एक अदत्त विक्रेता नहीं रहता, अतः उसका ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है, भले ही उसने भुगतान स्वीकार करने से इन्कार कर दिया हो,

एक बार ग्रहणाधिकार समाप्त होने पर पुनः उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि किसी विशेष कारण से क्रेता वस्तु को वापस विक्रेता को दे देता है, तो विक्रेता ग्रहणाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (Right of stoppage in transit) -

वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 50 के अनुसार, यदि माल का क्रेता दिवालिया हो जाता है, तो ऐसा अदत्त विक्रेता जिसने माल पर अपना कब्जा छोड़ दिया है, माल को मार्ग में ही रोक सकता है; अर्थात् जब तक माल रास्ते में है, वह उस पर पुनः अधिकार में कर सकता है और मूल्य का भुगतान न होने तक माल को अपने पास रोके रख सकता है।

किन्तु अदत्त विक्रेता उपर्युक्त अधिकार का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थिति में ही कर सकता है-

(i) यदि विक्रेता अदत्त विक्रेता हो।

(ii) यदि माल अभी क्रेता तक नहीं पहुँचा है अर्थात् माल अभी मार्ग में ही है।

(iii) यदि क्रेता दिवालिया हो चुका हो।

(iv) यदि अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान द्वारा विक्रेता को इस अधिकार का प्रयोग करने से रोका नहीं गया हो। इस अधिकार का उपयोग अदत्त विक्रेता तब ही कर सकता है जब माल मार्ग में हो। अतः माल का मार्ग में रहना (duration of transist) कब तक माना जाए ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस समय में वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 51 में निम्नलिखित प्रावधान है-

(i) यदि विक्रेता द्वारा माल पहुँचाने के लिए सुपुर्दगी क्रेता के वाहक अथवा निक्षेपग्रहीता को दे दी जाती है, तो माल क्रेता को प्राप्त होने तक मार्ग में ही माना जाता है।

(ii) यदि माल की सुपुर्दगी नियम स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही क्रेता अथवा उसका एजेन्ट प्राप्त कर लेता है, तो वह माल मार्ग में रहना नहीं माना जाता है।

(iii) यदि माल नियत स्थान पर पहुँच जाता है एवं वाहक अथवा निक्षेपग्रहीता माल को क्रेता अथवा उसके एजेन्ट की ओर से रखना स्वीकार कर लेता है, तो माल का मार्ग में रहना नहीं माना जाता है।

(iv) यदि क्रेता ने माल की सुपुर्दगी अस्वीकृत कर दिया हो एवं वाहक अथवा निक्षेपग्रहीता माल को अपने पास रखे हुए हो, तो मार्ग में रहना ही माना जायेगा, चाहे विक्रेता ने वापस माल लेने से इन्कार क्यों न किया हो।

(v) यदि माल ऐसे जहाज को सुपुर्द किया जाता है एवं जहाज का कप्तान क्रेता के एजेन्ट के रूप में है, तो जहाज पर माल लादते ही, माल का माग्र में रहना समाप्त हो जायेगा।

(vi) यदि वाहक अथवा निक्षेपग्रहीता दोषपूर्ण ढंग से क्रेता या उसके एजेन्ट को माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर देता है, तो माल का मार्ग में रहना नहीं माना जाता है।

(vii) आंशिक सुपुर्दगी की स्थिति में यदि माल क्रेता अथवा उसके एजेन्ट को दिया गया हो, तो शेष माल को मार्ग में रोका जा सकता है, किन्तु माल की सुपुर्दगी का समझौता स्पष्ट रूप से हुआ हो।

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 52 के अनुसार माल दो प्रकार से रोका जा सकता है-

(क) माल पर वास्तविक रूप से अपना कब्जा करके, अथवा

(ख) माल के वाहक अथवा (जिसके कब्जे में मोल हैं) निक्षेपित को अपने अधिकार भी सूचना देकर।

यदि सूचना द्वारा माल को रास्ते में रोकना हो तो सूचना जिसके कब्जे में माल है अथवा प्रधान को दी जानी चाहिए। यदि माल को रास्ते में रोका जाता है एवं विक्रेता अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को सुपुर्दगी दी जाती है तो इस सम्बन्ध में किए गए समस्त व्ययों के लिए विक्रेता ही उत्तरदायी होगा। किन्तु विक्रेता द्वारा उचित सूचना देने के बाद भी वाहक या निक्षेपग्रहीता, क्रेता को सुपुर्दगी दे देता है तो वह व्यय के लिए उत्तरदायी होगा अर्थात् उसे ही व्यय वहन करना होगा।

7.19 ग्रहणाधिकार एवं माल को मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर (Difference between Lien and stoppage in transit)

ये दोनों अधिकार अदत्त विक्रेता के हितों की रक्षा के लिए बनाए गए हैं और माल के स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाने के बाद ही प्राप्त होते हैं। किन्तु फिर भी दोनों में निम्नलिखित मुख्य अन्तर है :

(i) पूर्वाधिकार का उद्देश्य माल को तबतक रोका रहना है जबतक कि विक्रेता को माल भुगतान प्राप्त न हो जाये। जबकि माल को मार्ग में रोकने का उद्देश्य माल को पुनः अधिकार में करना है।

(ii) पूर्वाधिकार का प्रयोग करने के लिए क्रेता का दिवालिया घोषित होना आवश्यक नहीं है। किन्तु माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग क्रेता के दिवालिया घोषित हो जाने पर ही किया जा सकता है।

(iii) पूर्वाधिकार का प्रयोग करने के लिए माल अदत्त विक्रेता के पास वास्तविक अथवा रचनात्मक किसी भी रूप में होना आवश्यक है। जबकि माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग माल के मार्ग में होने पर ही किया जा सकता है।

(iv) माल पर अदत्त विक्रेता के अधिकार की समाप्ति से विक्रेता के पूर्वाधिकार की भी समाप्ति हो जाती है।

किन्तु अदत्त विक्रेता के माल पर अधिकार की समाप्ति के बाद ही माल का मार्ग में रोकने के अधिकार का आरम्भ होता है, इसलिए इसे पूर्वाधिकार का विस्तार (extension of lien) कहा जाता है।

3. माल का पुनः विक्रय अधिकार (Right of re-sale) -

अदत्त विक्रेता द्वारा पूर्वाधिकार एवं माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का उपयोग करने के बाद भी यदि भुगतान प्राप्त नहीं होता है तो विक्रेता को अन्तिम अधिकार माल को पुनः बेच देने का है। वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 54 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में उसे पुनः विक्रय का अधिकार प्रदान किया गया है-

(i) जब माल नाशवान प्रकृति का है;

(ii) जब वस्तु-विक्रय अनुबन्ध में ही क्रेता द्वारा त्रुटि किए जाने पर विक्रेता ने पुनः विक्रय के अधिकार की व्यवस्था कर रखी हो; एवं

(iii) अन्य परिस्थितियों में, अदत्त विक्रेता द्वारा आशय की सूचना क्रेता को देकर कि यदि निश्चित तिथि तक मूल्य का भुगतान करके माल की सुपुर्दगी नहीं ली गई तो वह उस माल को क्रेता के जोखिम पर बेच देगा, माल का पुनः विक्रय कर सकता है।

इस प्रकार पुनः विक्रय करके यदि विक्रेता को पूरा मूल्य प्राप्त नहीं होता अर्थात् हानि होती है तो, इस हानि के लिए क्रेता के विरूद्ध दावा किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि पुनः विक्रय से विक्रेता को अधिक मूल्य मिलता है अर्थात् लाभ मिलता है तो वह उस लाभ को अप ने पास रख सकता है। जहाँ तक नये क्रेता का सम्बन्ध है, तो उसको प्रत्येक स्थिति में श्रेष्ठ अधिकार मिलता है, भले ही उसे पिछले विक्रय की पूरी जानकारी रही हो।

(ख) स्वयं क्रेता के विरूद्ध अधिकार (Right against the Buyer Personally) - अधिनियम के अन्तर्गत विक्रेता को स्वयं क्रेता के विरूद्ध निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है-

(i) अदत्त विक्रेता मूल्य का भुगतान नहीं मिलने पर क्रेता पर मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है; चाहे वस्तु में निहित स्वामित्व हस्तान्तरित हुआ है अथवा नहीं।

(ii) धारा 56 के अनुसार, जब सुपुर्दगी स्वीकार करने, मूल्य का भुगतान न करने अथवा क्रेता के अन्य दोषपूर्ण कार्य से यदि अदत्त विक्रेता को कोई हानि उठानी पड़ती है, तो वह ऐसी क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iii) धारा 60 के अनुसार, जब क्रेता सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध को समाप्त कर देता है, तो विक्रेता या तो अनुबन्ध की सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा अनुबन्ध को समाप्त मानकर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iv) धारा 61 के अनुसार, विक्रेता निम्न परिस्थिति में क्रेता से ब्याज भी वसूल कर सकता है-

(क) जब उनमें ब्याज के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट अनुबन्ध हो।

(ख) जब विक्रेता ने अनुबन्ध के अभाव में ऐसा करने की सूचना क्रेता को दे दी हो।

7.20 विक्रय अनुबन्ध का खण्डन (Breach of the Contract of Sell)

विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के लिए यह आवश्यक है कि क्रेता एवं विक्रेता दोनों अपने-अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करें। यदि दोनों में से कोई पक्ष अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता तो वह विक्रय अनुबन्ध का खण्डन माना जाता है। ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार को दोषी पक्ष के विरूद्ध कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं।

अनुबन्ध भंग की स्थिति में विक्रेता का क्रेता के विरूद्ध अधिकारों की चर्चा अदत्त विक्रेता के अधिकारों के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहाँ विक्रेता द्वारा अनुबन्ध का खण्डन करने पर क्रेता के अधिकारों की चर्चा की जा रही है, जो निम्नलिखित है-

(i) यदि विक्रेता अनुचित रूप से माल की सुपुर्दगी देने में लापरवाही या इन्कार करता है, तो क्रेता उस पर क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है।

(ii) यदि विक्रय अनुबन्ध के किसी आश्वासन को भंग किया जाता है अथवा किसी शर्त भंग को आश्वासन भंग के रूप में माना जाता है, तो क्रेता माल को स्वीकार करने से मना तो नहीं कर सकता, किन्तु हर्जाने की मांग कर सकता है।

(iii) धारा 58 के अनुसार, जब किसी विशिष्ट अथवा निश्चित माल की सुपुर्दगी के अनुबन्ध को भंग किया जाता है तो यदि न्यायालय उचित समझे, तो वह निर्दिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है।

(iv) धारा 60 के अनुसार यदि सुपुर्दगी की निश्चित तिथि से पहले ही विक्रेता सूचना देता है कि वह माल की सुपुर्दगी नहीं दे पायेगा, तो क्रेता चाहे तो उस तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा अनुबन्ध को समाप्त मान कर तुरन्त क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है।

(v) यदि क्रेता ने मूल्य चुका दिया हो और इसके बाद भी विक्रेता सुपुर्दगी देने से इन्कार करता है, तो क्रेता मूल्य वापस पाने के लिए विक्रेता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

7.21 नीलाम द्वारा विक्रय (Sale by Auction)

नीलाम द्वारा विक्रय सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत विक्रेता सार्वजनिक रूप से प्रस्तावों को निमन्त्रण देता है एवं अनेक व्यक्ति विक्रेता के माल को क्रय करने के लिए माल के मूल्य के सम्बन्ध में अपनी बोली बोलकर नीलामकर्त्ता के समक्ष अपने-अपने प्रस्ताव रखते हैं। निलामकर्त्ता सबसे उँची बोली लगाने वाले प्रस्ताव को स्वीकार करके माल का विक्रय करता है, नीलामकर्त्ता यहाँ विक्रेता के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है।

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 64 के अन्तर्गत नीलाम द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैं-

(i) जहाँ पर माल को विक्रय के लिए अनेक भागों (Lots) में रखा जाता है, तो माल के प्रत्येक भाग का विक्रय एक अलग अनुबन्ध की विषय-वस्तु मानी जायेगी।

(ii) नीलाम द्वारा विक्रय उस समय पूरा माना जाता है जब नीलामकर्त्ता हथौड़े (Hammer) की चोट से अथवा अन्य किसी प्रचलित तरीके से ऐसे विक्रय को पूरा होना घोषित कर देता है।

(iii) बोली लगाने के अधिकार को स्पष्ट रूप से विक्रेता तथा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है और यदि ऐसा अधिकार सुरक्षित रखा गया है, तो विक्रेता अथवा उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति दी गई व्यवस्थाओं के अनुसार बोली लगा सकता है।

(iv) यदि विक्रेता की ओर से बोली बोलने के अधिकार की सूचना नहीं दी गई हो एवं विक्रेता स्वयं बोली लगाता है अथवा उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति बोली लगाता है तो यह अवैधानिक माना गया है।

(v) विक्रय के लिए न्यूनतम मूल्य घोषित किया जा सकता है। सबसे अधिक बोली लगाने वाले को भी यह अधिकार नहीं है।

(vi) ऐसा विक्रेता मूल्य को बढ़ाने के उद्देश्य से बनावटी बोली (Pretended Bidding) का प्रयोग करें, तो विक्रय क्रेता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

(vii) ऐसा प्रस्तावक, जिसकी बोली स्वीकार हो चुकी हो, विक्रय अनुबन्ध का पक्षकार बन जाता है एवं वह विक्रेता को माल का प्रस्तावित मूल्य चुकाने के लिए बाध्य होता है।

7.22 नीलाम द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन (Implied Warranties in an Auction Sale)

नीलाम द्वारा विक्रय में नीलामकर्त्ता निम्नलिखित, गर्भित आश्वासनों के प्रति उत्तरदायी होता है-

(a) उसे माल बेचने का पूरा अधिकार है।

(b) नीलामकर्त्ता की जानकारी में, उसके प्रधान के अधिकार में कोई दोष विद्यमान नहीं है।

(c) मूल्य भुगतान पर वह माल की सुपुर्दगी दे देगा।

(d) माल पर क्रेता का निर्विध्न कब्जा होगा, प्रधान अथवा नीलामकर्त्ता द्वारा उसमें कोई रूकावट नहीं डाली जायेगी।

7.23 सारांश (Summing up)

विक्रय एक निष्पादित अनुबन्ध है जबकि विक्रय ठहराव एक निष्पादनीय अनुबन्ध है। इसके अन्तर्गत वस्तु, मूल्य तथा हस्तांतरण के बारे में जानकारी दी गई है। अदत विक्रेता को वस्तु तथा विक्रेता के विरूद्ध अधिकार प्राप्त है। क्रेता के सावधानी नियम के अन्तर्गत क्रेता को वस्तु क्रय करतं समय पूरा सावधान रहना चाहिये अन्यथा इसकी जबावदेही उसपर स्वयं होगी लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में इ सके लिये विक्रेता जिम्मेदार हो सकता है।

7.24 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1 विक्रय अनुबन्ध तथा विक्रय ठहराव में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

2. अदत्त विक्रेता के अधिकारों का वर्णन कीजिये।

3. क्रेता के सावधानी नियम के अपनदों को लिखें।

7.25 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 8 पाठ-13

भारतीय साझेदारी अधिनियम
(Indian Partnership Act)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

8.0 उद्देश्य (Objective)
8.1 प्रस्तावना (Introduction)
8.2 साझेदारी अधिनियम का अर्थ एवं परिभाषा
8.3 साझेदारी के लक्षण अथवा आवश्यक तत्त्व
8.4 साझेदारी के प्रकार
8.5 अवस्यक साझेदार के रूप में
8.5.1 अवस्यक साझेदार के अधिकार
8.5.2 अवस्यक साझेदार के दायित्व
8.6 साझेदारों के अधिकार एवं कर्त्तव्य
8.6.1 साझेदारों के अधिकार
8.6.2 साझेदारों के कर्त्तव्य
8.7 साझेदारों का अन्य पक्षों से सम्बन्ध
8.7.1 गर्भित अधिकार
8.7.2 गर्भित अधिकार एवं अन्य पक्ष
8.8 फर्म का पंजीयन
8.8.1 पंजीकरण की विधी
8.8.2 पंजीयन के बाद परिवर्तन की सूचना
8.8.3 पंजीकरण से लाभ
8.8.4 पंजीकरण न कराने के परिणाम
8.8.5 पंजीकरण न कराने से अप्रभावित अधिकार
8.9 फर्म का पूनगर्ठन
8.9.1 नये साझेदार का प्रवेश

8.9.2 साझेदार द्वारा अवकाश ग्रहण करना

8.9.3 साझेदार का निष्कासन

8.9.4 साझेदार का दिवालिया होना

8.9.5 साझेदार की मृत्यु

8.9.6 साझेदार द्वारा हित-हस्तान्तरण

8.10 साझेदारी फर्म की समाप्ति

8.10.1 न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना समाप्ति

8.10.2 न्यायालय के हस्तक्षेप से समाप्ति

8.11 साझेदारी फर्म के समापन के परिणाम

8.12 हिसाब-किताब का निपटारा करने के नियम

8.13 सारांश (Summuing up)

8.14 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

8.15 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

8.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य छात्रों को साझेदारी अधिनियम के बारे में विस्तृत जानकारी देना है।

8.1 परिचय (Introduction)

व्यावहारिक जगत में जब किसी एक व्यक्ति के लिए व्यापार का कार्य संचालन करना सम्भव नहीं होता, तब वह कुछ अन्य व्यक्तियों को अपने साथ मिला लेता है। वे सब मिलकर व्यापार के लिए धन की व्यवस्था करते हैं, उसका संचालन करते हैं एवं उसके लाभ-हानि को आपस में बाँटते हैं। इस प्रकार के आपसी सम्बन्ध को 'साझेदारी' कहते हैं। इन सम्बन्धों के लिए कुछ विशिष्ट नियम बनाये गये हैं। ये नियम पहले 'अनुबन्ध अधिनियम' का एक भाग थे, किन्तु 1932 में उन्हें एक अलग अधिनियम के रूप में लागू किया गया, जिसे भारतीय साझेदारी अधिनियम कहा जाता है।

8.2 अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

साझेदारी की परिभाषा, भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 4 में दी गई है, जिसके अनुसार, "साझेदारी ऐसे व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध है जो किसी ऐसे व्यापार के लाभ को आपस में बाँटने के लिए सहमत हों, जिसके संचालन या तो सभी व्यक्ति मिलकर करें अथवा सबकी ओर से कोई एक व्यक्ति करें।"

"Partnership is the relationship between persons who have agreed to share profits of business carried on by all or any of them acting for all."

8.3 साझेदारी के लक्षण अथवा आवश्यक तत्त्व (Characteristics of Essentials of Partnership)

साझेदारी के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण आवश्यक तत्त्व हैं-

(i) साझेदारी व्यवसाय के लिए कम-से-कम दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य है, अधिकतम संख्या के लिए कोई प्रावधान नहीं है। किन्तु कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 11 के अनुसार बैंकिंग व्यवसाय वाली फर्म में अधिक-से-अधिक 10 एवं अन्य व्यवसाय वाली फर्म में 20 सदस्य हो सकते हैं।

(ii) साझेदारों के मध्य परस्पर एक समझौता अवश्य होना चाहिए। समझौता स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है।

(iii) साझेदारी किसी वैध व्यवसाय करने के लिए होना चाहिए।

(iv) साझेदारी का मुख्य उद्देश्य व्यापार के लाभ को आपस में बाँटना होना चाहिए। लाभों का वितरण किसी पूर्व निश्चित अनुपात के आधार पर ही किया जाता है। अतः जन-कल्याण एवं परोपकार की दृष्टि से किया गया कारोबार साझेदारी नहीं हो सकती।

(v) प्रत्येक साझेदार, साझेदारी व्यवसाय में सक्रिय रूप से भाग ले ही, यह आवश्यक नहीं है। कोई भी एक अथवा अधिक साझेदार व्यापार के परिचालन में सक्रिय भाग ले सकता है।

(vi) कोई भी साझेदार बिना अन्य साझेदारों की पूर्व अनुमति के न तो अपना हिस्सा या अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को विक्रय कर सकता है और न ही हस्तान्तरित कर सकता है।

(vii) प्रत्येक साझेदार उन कार्यों के लिए, जो उस समय किये गये हों, जबकि वह साझेदार था, अन्य साझेदारों के साथ संयुक्त एवं व्यक्तिगत दोनों ही रूप में उत्तरदायी होता है।

(viii) साझेदारों का साझेदारी से पृथक अस्तित्व नहीं होता; बल्कि साझेदारों पर आधारित होना है, अर्थात् यदि साझेदार फर्म से अलग या पागल अथवा दिवालिया हो जाता है तो साझेदारी समाप्त हो जाती है।

(ix) प्रत्येक साझेदार का व्यवसाय में नगद पूँजी लगाना अनिवार्य नहीं है। उनको केवल सलाह देने के लिए भी साझेदार बनाया जा सकता है।

(x) साझेदारी फर्म में केवल व्यक्ति ही सदस्य हो सकता है, कोई अन्य साझेदारी फर्म या संस्था नहीं।

(xi) साझेदारी व्यवसाय का संचालन सभी साझेदारों द्वारा अथवा उनकी सहमति से किसी एक साझेदार या एक से अधिक साझेदारों द्वारा हो सकता है। इस प्रकार प्रत्येक साझेदार एजेन्ट (Agent) एवं प्रधान (Principal) दोनों होता है।

8.4 साझेदारों के प्रकार (Types of Partners)

साझेदार को उनके अधिकार, कर्त्तव्य एवं दायित्व के आधार पर निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) सक्रिय साझेदार (Active partner) - ऐसा व्यक्ति जो अनुबन्ध के फर्म का साझेदार बनता है एवं

व्यापार संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेता है 'सक्रिय साझेदार' कहलाता है। ऐसा साझेदार फर्म के नाम से फर्म के व्यापार से सम्बन्धित किए गए समस्त कार्यों के लिए स्वयं को एवं अन्य साझेदारों को अन्य पक्षों के प्रति पूर्णरूपेण बाध्य करता है। यदि ऐसा साझेदार फर्म से अलग होता है, तो इसकी सार्वजनिक सूचना जनता को देना अनिवार्य होता है।

(2) निष्क्रिय साझेदार (Dermant partner) - एक ऐसा साझेदार जो साझेदारी संस्था में साझेदार रहता है, व्यापार में पूँजी लगाता है, व्यापार के लाभ-हानि का भागीदार होता है, किन्तु व्यापार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता, उसे निष्क्रिय अथवा शिथिल (Sleeping) साझेदार कहते हैं। ऐसा साझेदार तृतीय पक्षकारों के प्रति फर्म एवं अन्य साझेदारों के कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है, भले ही तृतीय प्रक्षकारों को अनुबन्ध करते समय इसके अस्तित्व की जानकारी न हो।

(3) नाममात्र का साझेदार (Nominal partner) - ऐसा साझेदार जो फर्म के व्यापार में न तो पूँजी लगाता है एवं न तो लाभ-हानि में हिस्सा बँटाता है, किन्तु जिसने साझेदार के रूप में अपने नाम का उपयोग करने का अधिकार फर्म को दे दिया हो, ''नाममात्र'' का साझेदार कहलाता है, ऐसा साझेदार भी फर्म के कार्यों के लिए अन्य पक्षों के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी होता है।

(4) केवल लाभ के लिए साझेदार (Partner in Profits only) - ऐसा व्यक्ति जो फर्म के लाभ में तो भाग लेता है, किन्तु हानि के लिए उत्तरदायी नहीं होता केवल लाभ के लिए साझेदार कहलाता है, ऐसा साझेदार भी अन्य साझेदारों के समान फर्म के कार्यों के लिए अन्य पक्षों के प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी होता है, किन्तु साधारणतया ऐसे साझेदार को व्यापार के संचालन में भाग लेने का अधिकार नहीं होता।

(5) उप-साझेदार (Sub-Partner) - जब कोई साझेदार फर्म से प्राप्त अपने हिस्से का लाभ किसी अन्य व्यक्ति के साथ बाँटने का समझौता करता है, तो ऐसे अन्य व्यक्ति को उप-साझेदार कहते हैं। उप-साझेदार को फर्म या अन्य पक्षों से कोई सम्बन्ध नहीं होता एवं फर्म के प्रति उसके कोई अधिकार एवं कर्त्तव्य नहीं होते।

(6) गत्यवरोध अथवा प्रदर्शन द्वारा साझेदार (Partner by Estopped or Holding out) - भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 28(1) के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति मौखिक अथवा लिखित शब्दों अथवा अपने आचरण द्वारा अपने आप को किसी फर्म का साझेदार प्रदर्शित करता है अथवा जान-बूझकर अपने-आप को प्रदर्शित करने देता है, (जबकि वास्तव में वह फर्म का साझेदार नहीं होता है) तो ऐसे व्यक्ति को फर्म का 'प्रदर्शन द्वारा साझेदार' माना जाता है।

किन्तु ऐसे साझेदार को अन्य साझेदारों के विरूद्ध कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते और न ही वह फर्म के लाभ में कोई हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार होता है, वह तो केवल अन्य पक्षों के प्रति उत्तरदायी होता है।

8.5 अवयस्क साझेदार के रूप में (Minor as a partner)

साझेदारी की स्थापना एक अनुबन्ध से होती है, अतः इसमें वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान होने चाहिए। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, किसी अवयस्क के साथ किया गया समझौता व्यर्थ (void) होता है, क्योंकि कोई भी अवयस्क व्यक्ति समझौता करने की क्षमता नहीं रखता। किन्तु भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार, एक अवयस्क फर्म में साधारण साझेदार नहीं हो सकता, किन्तु सभी साझेदारों की सहमति से उसे साझेदारी व्यवसाय में केवल लाभों के लिए भागीदार के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है।

8.5.1 अवयस्क साझेदार के अधिकार -

(i) अवयस्क साझेदार को फर्म की सम्पत्ति एवं लाभों में से पूर्व-निर्धारित भाग प्राप्त करने का अधिकार होता है।

(ii) अवयस्क साझेदार को फर्म की पुस्तकें देखने, उनकी जाँच करने एवं उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार होता है, किन्तु वह ऐसी पुस्तकों को न देख सकता है और न उनकी नकल ले सकता है, जिनसे फर्म की गोपनीयता भंग होती हो।

(iii) एक अवयस्क साझेदार को वयस्क होने पर उस साझेदारी फर्म में रहने अथवा नहीं रहने की इच्छा व्यक्त करने का अधिकार है।

(iv) अवयस्क साझेदार को अन्य दूसरे साझेदारों के विरूद्ध सम्पत्ति एवं लाभ प्राप्त करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। किन्तु यदि वह फर्म से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तब वह ऐसा कर सकता है।

8.5.2 अवयस्क साझेदार के दायित्व -

(i) अवयस्क साझेदार का उत्तरदायित्व सीमित होता है, अर्थात् वह अपने हिस्से की पूँजी एवं लाभ तक के लिए ही दायी होता है। उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति का फर्म के ऋणों एवं देनदारियों के भुगतान में उपयोग नहीं किया जा सकता।

(ii) वयस्क होने की तिथि से 6 माह के अन्दर अवयस्क साझेदार का कर्त्तव्य है कि एक सार्वजनिक सूचना द्वारा यह घोषित कर दे कि वह फर्म में साझेदार बना रहना चाह अथवा नहीं। यदि वह ऐसा नहीं करता तो यह मान लिया जाता है कि वह साझेदार बना रहना चाहता है।

(iii) अवयस्क के वयस्क होने पर यदि वह साझेदार बना रहना चाहता है तो-

(क) उसके लाभ का हिस्सा नहीं रहेगा जो वयस्क होने से पूर्व था।

(ख) उसका उत्तरदायित्व असीमित हो जायेगा;

(ग) उसके समस्त अधिकार सामान्य साझेदार के समान हो जायेंगे एवं वह व्यक्तिगत रूप से भी फर्म के दायित्व के लिए समान रूप से उत्तरदायी होगा।

(iv) अवयस्क के वयस्क होने पर यदि वह साझेदार बना रहना नहीं चाहता, तो-

(क) उसके अधिकार एवं दायित्व सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक नहीं रहेंगे जो कि वयस्क होने की तिथि से पूर्व था।

(ख) वह फर्म की सम्पत्ति एवं लाभ में हिस्सा प्राप्त करने के लिए फर्म पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ग) वह फर्म द्वारा किये गये ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, जो उसके सार्वजनिक सूचना दिये जाने के बाद किये गये हैं।

8.6 साझेदारों के अधिकार एवं कर्त्तव्य (Rights and duties of partners)

'साझेदारी' की परिभाषा से स्पष्ट है कि साझेदारी का जन्म साझेदारों के मध्य हुए अनुबन्ध के फलस्वरूप होता है। अतः उनके पारस्परिक अधिकार एवं कर्त्तव्य अनुबन्ध में दी गई शर्तों के अनुसार ही निश्चित होते हैं। किन्तु जिन बातों के बारे में साझेदारी अनुबन्ध के अनुसार स्पष्ट निर्णय नहीं लिया जा सकता, तो उनके लिए साझेदारी अधिनियम में दिए गए नियम के अनुसार निर्णय लिया जा सकता है।

8.6.1 साझेदारों के अधिकान (Rights of Partners) -

साझेदारी अधिनियम के अनुसार साझेदारों के अधिकार निम्नलिखित हैं-

(1) साझेदारी अधिनियम की धारा 12(a) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार को फर्म के व्यापार संचालन में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है, चाहें उसने कितनी भी पूँजी क्यों न लगाई हों।

(2) धारा 12(c) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार को फर्म से सम्बन्धित सभी विवादयुक्त विषयों को समझने और उसके सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करने का अधिकार है।

(3) धारा 12(d) के अनुसार प्रत्येक साझेदार फर्म की पुस्तकों का अवलोकन कर सकता है, उसकी जाँच कर सकता है एवं लेखा पुस्तकों की नकल भी प्राप्त कर सकता है। किन्तु अवयस्क साझेदार फर्म की गोपनीय लेखा-पुस्तक न देख सकता है, न जाँच कर सकता है और न नकल ही प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

(4) धारा 13(b) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार फर्म के लाभ-हानि में समान रूप से हिस्सा बाँटने का अधिकार रखता है, यदि साझेदारी अनुबन्ध में इसके विपरीत कुछ न दिया हो।

(5) धारा 13(c) के अनुसार, साझेदारों को अपने द्वारा लगायी गयी पूँजी पर ब्याज प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। किन्तु साझेदारी अनुबन्ध में ब्याज लेने का प्रावधान है, तब भी यह केवल व्यापार में लाभ होने पर ही दिया जा सकता है।

(6) धारा 13(d) के अनुसार, यदि कोई साझेदार फर्म में निर्धारित पूँजी के अतिरिक्त पूँजी ऋण के रूप में लगाता है, तो उस अतिरिक्त पूँजी पर 6% ब्याज पाने का वह अधिकारी होगा।

(7) धारा 13(e) के अनुसार, यदि फर्म के उचित संचालन करने एवं फर्म को किसी आकस्मिक संकट से बचाने में, किसी साझेदार को हानि होती है, तो फर्म द्वारा उस साझेदार को क्षतिपूर्ति का अधिकार होगा।

(8) धारा 14 के अनुसार, फर्म की सम्पत्ति पर सभी साझेदारों का समान अधिकार होता है, जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबन्ध न हो। किन्तु प्रत्येक साझेदार उसका उपयोग केवल फर्म के कार्य के लिए ही कर सकता है, व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं।

(9) धारा 21 के अनुसार, आकस्मिक संकट में फर्म को हानि से बचाने के लिए साझेदार ऐसा प्रत्येक कार्य कर सकता है जो सामान्य बुद्धि एवं विवेक वाला व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों में स्वयं अपने लिए करता है।

(10) धारा 31(1) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार का यह अधिकार है कि वह नये साझेदार को फर्म में शामिल होने से रोक सकता है, यदि साझेदारी अनुबन्ध में इसके विपरीत व्यवस्था न हो।

(11) धारा 32(1) के अनुसार, साझेदारी अनुबन्ध के अनुसार अथवा सभी साझेदारों की सहमति से या ऐच्छिक

साझेदारी की स्थिति में अवकाश ग्रहण की सूचना देकर कोई भी साझेदार फर्म से अवकाश प्राप्त कर सकता है।

(12) धारा 33(1) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार को फर्म में बने रहने एवं निष्कासन न किए जाने का अधिकार है। किन्तु यदि साझेदारी अनुबन्ध में निष्कासन की व्यवस्था है, तो बहुमत निर्णय से किसी साझेदार को निकाला जा सकता है, बशर्ते कि यह निर्णय फर्म के हित एवं पूर्ण सद्विश्वास से किया गया हो।

(13) धारा 36 के अनुसार, फर्म से अलग हुए प्रत्येक साझेदार को प्रतिस्पर्धात्मक व्यवसाय करने का अधिकार होता है, जब तक कि इसके विपरीत कोई अन्य अनुबन्ध न हुआ हो। किन्तु फर्म के नाम का प्रयोग करने अथवा अपने आप को पहले वाली फर्म का प्रतिनिधि प्रकट करने एवं पुराने फर्म के ग्राहकों को तोड़ने का अधिकार नहीं है।

(14) धारा उनके अनुसार, किसी साझेदार की मृत्यु होने, या अवकाश ग्रहण करने अथवा निष्कासित किए जाने की स्थिति में बचे साझेदार फर्म की सम्पत्ति से व्यापार करते रहते हैं एवं फर्म से अलग हुए साझेदार के हिस्से का भुगतान नहीं करते, तो फर्म से अलग होने वाले साझेदार अथवा उसके उत्तराधिकारी को फर्म के लाभों में हिस्सा लेने अथवा पूँजी पर 6% वार्षिक ब्याज प्राप्त करने का अधिकार होता है।

8.6.2 साझेदारों के कर्त्तव्य (Duties of Partners) -

साझेदारों का आपसी सम्बन्ध परस्पर विश्वास पर आधारित है। अतः प्रत्येक साझेदार को पूर्ण सद्विश्वास के साथ फर्म के हित के लिए कार्य करना चाहिए। साझेदारी अधिनियम के अनुसार साझेदारों के मुख्य कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं-

(1) धारा 9 के अनुसार, प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह पूर्ण सद्भावना से अधिकतम सामान्य हित के लिए कार्य करें।

(2) धारा 10 के अनुसार, यदि किसी साझेदार के कपटपूर्ण व्यवहार के कारण फर्म को हानि होती है तो उसी साझेदार को उस हानि की पूर्ति करनी होगी। साझेदार, परस्पर अनुबन्ध करके भी इस दायित्व से मुक्त नहीं हो सकते।

(3) धारा 11(2) के अनुसार, साझेदार कुछ परिस्थितियों में साझेदारी फर्म में रहते दूसरा व्यवसाय नहीं करने का अनुबन्ध कर सकते हैं।

(4) धारा 12(b) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह व्यापार का कार्य पूर्ण लगन एवं परिश्रम से करें।

(5) धारा 13(b) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह साझेदारी व्यवसाय का संचालन के लिए बिना किसी पारिश्रमिक से करें। यदि विपरीत अनुबन्ध हुआ है तब यह लागू नहीं होगा।

(6) धारा 13(f) के अनुसार, प्रत्येक साझेदार जान-बूझकर की गई लापरवाही के लिए उत्तरदायी है।

(7) धारा 15 के अनुसार, प्रतयेक साझेदार का कर्त्तव्य है कि वह फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग निजी कार्य के लिए न करें।

(8) धारा 10(a) के अनुसार, यदि साझेदारी व्यापार के दौरान कोई साझेदार गुप्त लाभ प्राप्त करता है, तो उसे इस गुप्त लाभ को फर्म में जमा करवाना होगा एवं उसमें सभी साझेदारों का हिस्सा होगा।

(9) धारा 16(b) के अनुसार, यदि कोई साझेदार फर्म के व्यापार से मिलता-जुलता कोई प्रतियोगी व्यापार करता है, तो उसका कर्त्तव्य होता है कि वह ऐसे व्यापार से प्राप्त लाभ एवं हानि सभी फर्म को सुपुर्द कर दें।

(10) धारा 19 के अनुसार, प्रत्येक साझेदार को अपने स्पष्ट एवं गर्भित अधिकार सीमा के अन्दर ही कार्य करना चाहिए।

(11) धारा 25 के अनुसार, फर्म के द्वारा किये गये कार्य के लिए सभी साझेदार समान रूप से उत्तरदायी माने जायेंगे।

(12) धारा 29 के अनुसार, एक साझेदार अपना अधिकार एवं हित किसी बाहरी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं कर सकता है। किन्तु यदि सभी साझेदार सहमत है तो केवल हित हस्तान्तरित किया जा सकता है।

8.7 साझेदारों का अन्य पक्षों से सम्बन्ध (Relation of partners to third parties)

साझेदारी व्यापार में प्रत्येक साझेदार एजेन्ट के रूप में कार्य करता है। वह फर्म के व्यापार के लिए अन्य साझेदारों का प्रतिनिधित्व करता है एवं अपने कार्यों से स्वयं को एवं अन्य साझेदारों को पूर्णरूपेण बाध्य करता है: अर्थात्, अन्य पक्षों के लिए प्रत्येक साझेदार फर्म का एजेन्ट होता है और उनमें आपस में कैसा भी समझौता क्यों न हुआ हो, फर्म के सारे साझेदार किसी भी साझेदार द्वारा फर्म के व्यापार के सम्बन्ध में किए गए समस्त कार्यों के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होते हैं।

8.7.1 गर्भित अधिकार (Implied Authority) -

साझेदार का ऐसा प्रत्येक कार्य जो फर्म के व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए किया गया हो, फर्म को बाध्य करता है, बशर्ते कि वह कार्य फर्म के नाम से किया गया हो। साझेदार द्वारा फर्म को बाध्य करने के इस अधिकार को साझेदार का 'गर्भित अधिकार' कहते हैं। किन्तु फर्म को बाध्य करने के लिए साझेदार द्वारा किए गए कार्य में निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है-

(i) साझेदार द्वारा किया गया कार्य फर्म के व्यवसाय से सम्बन्धित होना चाहिए।

(ii) साझेदार द्वारा किया गया कार्य फर्म के व्यवसाय को साधारण रीति से चलाने के लिए हो, अर्थात् उस प्रकार का कार्य उस व्यापार में साधारणतया किया जाता हो, उदाहरण के लिए, कपड़े के थोक व्यापारियों के फर्म के एक साझेदार ने फर्म के नाम से शिमला के एक व्यापारी से 20 पेटी नारंगी का आदेश दिया। साझेदार के इस कार्य से फर्म बाध्य नहीं होगी, क्योंकि यह कार्य फर्म के व्यापार की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

(iii) फर्म के नाम से किए गए कार्य के लिए ही साझेदारी फर्म बाध्य होती है। यदि कार्य साझेदार के व्यक्तिगत नाम से किया गया है, तो फर्म बाध्य नहीं होगी।

(iv) यदि कोई साझेदार कोई कार्य स्वयं अपने नाम से करता है किन्तु उसका मन्तव्य स्पष्ट या गर्भित रूप से फर्म को बाध्य करने का था तो भी उसके कार्य से फर्म बाध्य हो सकती है।

एक व्यापारिक फर्म के साझेदारों को निम्नलिखित कार्य करने का गर्भित अधिकार माना जाता है-

(i) फर्म के लिए माल क्रय एवं विक्रय करना,

(ii) फर्म के कार्य के लिए ऋण लेना,

(iii) फर्म को देय राशि प्राप्त करना एवं उसकी रसीद देना,

(iv) फर्म के साथ व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के साथ हिसाब निबटाना,

(v) फर्म के व्यापार को चलाने के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति करना,

(vi) फर्म के नाम से चेक लिखना, विनिमय बिल को स्वीकार अथवा पृष्ठांकित करना प्रतिज्ञा-पत्र को फर्म के लिए स्वीकार करना,

(vii) आवश्यकता पड़ने पर फर्म की चल-सम्पत्ति को गिरवीं रखना,

(viii) फर्म के नाम से अन्य पक्षकारों के विरूद्ध दावा करना एवं फर्म पर लगाये गए दावों के लिए बचाव के समस्त उपाय करना।

किन्तु धारा 19(2) के अनुसार व्यापार में किसी विपरीत प्रथा अथवा चलन के अभाव में, किसी भी साझेदार को बिना सब साझेदारों की सहमति के निम्नलिखित कार्य करने का अधिकार नहीं होता है-

(i) फर्म के व्यापार से सम्बन्धित किसी झगड़े को पंच निर्णय के लिए निर्देशित करना,

(ii) फर्म की ओर से अपने नाम से बैंक खाता खोलना,

(iii) फर्म के किसी दावे का समझौता करना अथवा दावे के कुछ भाग का परित्याग करना,

(iv) फर्म की ओर से प्रस्तुत किये गये किसी मुकदमें या कार्यवाही को वापस लेना,

(v) फर्म के विरूद्ध किए गये किसी मुकदमें या कार्यवाही में दायित्व स्वीकार करना,

(vi) फर्म के लिए अचल-सम्पत्ति क्रय करना।

(vii) फर्म की ओर से अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरित करना एवं

(viii) फर्म की ओर से दूसरों के साथ किसी साझेदारी में प्रविष्ट होना।

उपर्युक्त प्रतिबन्धों को वैधानिक प्रतिबन्ध (Statutory restrictions) भी कहा जाता है। गर्भित अधिकारों पर यह 'प्रतिबन्ध सभी पक्षों पर लागू होता है।

8.7.2 गर्भित अधिकार एवं अन्य पक्ष -

फर्म के सभी साझेदार परस्पर अनुबन्ध करके किसी भी साझेदार के गर्भित अधिकारों को बढ़ा अथवा कम कर सकते हैं। किन्तु यदि गर्भित अधिकारों में कोई कमी की जाती है तो जब तक अन्य पक्षों को इस कमी की सूचना नहीं मिल जाती, इस प्रतिबन्ध के लिए वह बाध्य नहीं हो सकता। अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ हैं-

(i) **संकट की स्थिति में साझेदार फर्म को हानि से बचाने के लिए ऐसा प्रत्येक कार्य कर सकता है, जो एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों में अपने लिए करता। इस प्रकार के सभी कार्यों के लिए फर्म पूर्णरूप से बाध्य होते हैं।**

(ii) **यदि कोई साझेदार व्यापार के सामान्य अनुक्रम में कोई प्रतिनिधित्व करता है या स्वीकृति देता है तो यह कार्य फर्म पर बाध्य होगा। (धारा-23)**

(iii) प्रत्येक साझेदार संयुक्त एवं पृथक् रूप से फर्म के उन सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है जो उसके साझेदार बने रहने के समय में लिए गए हैं। (धारा 25)

(iv) फर्म के व्यापार के सामान्य परिचालन में कोई साझेदार गलत या दुष्कृति का कार्य करता है, जिससे अन्य पक्षों को हानि होती है, तो अन्य साझेदार भी इस प्रकार के कार्यों के लिए बाध्य होते हैं। (धारा 26)

8.8 फर्म का पंजीयन (Registration of Firm)

साझेदारी अधिनियम बनने से पहले भारत में फर्मों के पंजीकरण के सम्बन्ध में कोई भी नियम नहीं था। सन् 1932 में भारत में साझेदारी अधिनियम बनाया गया एवं 1 अक्टूबर, 1993 से लागू किया गया। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक साझेदारी फर्म के लिए पंजीकृत होना अनिवार्य नहीं है, किन्तु इसमें ऐसी धारायें रखी गयी कि जो फर्म पंजीकृत नहीं होगी उसको वे सभी सुविधायें प्राप्त नहीं होगी जो एक पंजीकृत फर्म को प्राप्त होती है। अतः व्यावसायिक दृष्टिकोण से फर्म को पंजीयन कराना लाभप्रद समझा जाता है।

8.8.1 पंजीकरण की विधि (Procedure for Registration) -

पंजीकरण की विधि अत्यन्त सरल है। जब भी किसी फर्म को पंजीयन कराना हो तो साझेदारों का अपने राज्य के रजिस्ट्रार के पास निश्चित शुल्क सहित एक फार्म भरकर भेजना पड़ता है। इस फार्म में निम्नलिखित विवरण देना पड़ता है-

(i) फर्म का लाभ,

(ii) फर्म का स्थान या फर्म के व्यापार करने का मुख्य स्थान,

(iii) ऐसे अन्य स्थानों का नाम जहाँ फर्म व्यवसाय करती है,

(iv) प्रत्येक साझेदार की साझेदारी फर्म में शामिल होने की तिथि,

(v) सभी साझेदारों के नाम एवं स्थायी पते,

(vi) फर्म की अवधि, एवं

(vii) सभी साझेदारों के अथवा उनके द्वारा अधिकृत एजेन्टों के हस्ताक्षर,

रजिस्ट्रार जब इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि पंजीकरण सम्बन्धी समस्त कार्यवाही पूर्ण कर दी गई है तो वह फर्म का नाम 'फर्म के रजिस्टर' में अंकित कर लेता है एवं पंजीकरण का प्रमाण-पत्र दे देता है। किन्तु फर्म का पंजीकरण उस तिथि से माना जाता है जिस दिन प्रार्थना-पत्र भरकर शुल्क सहित रजिस्ट्रार के पास जमा कराया जाता है, प्रमाण-पत्र की तिथि से नहीं।

8.8.2 पंजीयन के बाद परिवर्तन की सूचना -

यदि पंजीयन के बाद साझेदारी के सम्बन्ध में निम्नलिखित कोई परिवर्तन या संशोधन किया जाता है तो इसकी सूचना शीघ्र ही रजिस्ट्रार के पास भेज देनी चाहिए।

(i) यदि फर्म के नाम या स्थान में परिवर्त्तन हो। (Sec 60)

(ii) यदि फर्म किसी पुराने स्थान पर व्यवसाय बन्द करके किसी नये स्थान पर व्यवसाय आरम्भ कर दे। (Sec 61)

(iii) यदि फर्म के साझेदारों के नाम अथवा पते में कोई परिवर्तन हो।

(iv) यदि फर्म की बनावट में कोई परिवर्त्तन किया गया हो। (Sec 62(a))

(v) यदि कोई अवयस्क साझेदार वयस्क हो जाने पर उस फर्म में साझेदार बने रहना या न बने रहना चाहता हो। (Sec 63(b))

(vi) यदि कोई पुराना साझेदार फर्म से अवकाश ग्रहण करे और कोई नया साझेदार फर्म में प्रवेश करे, एवं

(vii) जब फर्म का समापन हो जाये।

8.8.3 पंजीकरण से लाभ -

साझेदारी फर्म का पंजीयन कराना अधिनियम के अनुसार अनिवार्य नहीं होना, फिर भी पंजीयन हो जाने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं-

(i) साझेदारी फर्म का पंजीकरण हो जाने से उस फर्म का कोई भी साझेदार फर्म की ओर से किसी तीसरे पक्ष के विरूद्ध न्यायालय में अपने अधिकार के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ii) फर्म का पंजीकरण हो जाने से कोई भी साझेदार आपस में एक दूसरे के विरूद्ध या फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iii) फर्म के पंजीकरण हो जाने के बाद कोई ऋणदाता साझेदारों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iv) यदि साझेदारी फर्म पंजीकृत हो जाती है तो नया साझेदार या प्रवेश पाने वाला साझेदार अपने अधिकारों के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है एवं अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार रजिस्ट्रार को इस आशय की सूचना देकर उस तिथि से बाद के होने वाले फर्म के दायित्वों से मुक्त हो सकता है।

8.8.4 पंजीकरण न कराने के परिणाम -

साझेदारी अधिनियम के अनुसार फर्म का पंजीकरण कराना साझेदारों की इच्छा पर निर्भर करता है, इसके लिए किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं है। पंजीकरण बिना कराये भी फर्म का व्यापार वैध हो सकता है। वास्तव में साझेदारी का निर्माण उसके पंजीकरण से नहीं, बल्कि अनुबन्ध से होता है। किन्तु पंजीकरण न कराने के परिणाम इतने गम्भीर है कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से फर्म का पंजीकरण कराना अनिवार्य हो जाता है।

8.8.5 पंजीकरण न कराने के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं-

(1) अपंजीकृत फर्म के साझेदार फर्म की समाप्ति के लिए अथवा समाप्त हुई फर्म के लेखे जानने अथवा उसकी सम्पत्ति में से अपना हिस्सा माँगने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(2) ऐसे दावे जिनकी राशि 100 रुपया से अधिक नहीं है, उनके लिए अन्य पक्षों के विरूद्ध एक अपंजीकृत फर्म भी दावा कर सकती है।

(3) एक अपंजीकृत फर्म के दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति की वसूली के लिए नियुक्त किये गये रिसीवर के अधिकारों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(4) ऐसे कोई फर्म या उसके साझेदारों पर, जिसके व्यापार को कोई भी स्थान भारत में नहीं है, इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(5) अपंजीकृत फर्म के साझेदार आपसी झगड़ों का निपटारा कराने के लिए विवाद को पंच-निर्णय के लिए सौंप सकते हैं।

(6) अपंजीकृत फर्म एवं उसके साझेदारों के विरूद्ध अन्य पक्षों द्वारा दावा किये जाने के अधिकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(7) अन्य पक्षों के विरूद्ध अपने ऐसे अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए जो अनुबन्ध से उत्पन्न नहीं हुए हैं, एक अपंजीकृत फर्म समस्त कार्यवाही कर सकती है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति अपंजीकृत फर्म के ट्रेड मार्क अथवा पेटेन्ट की नकल करता है तो अपंजीकृत फर्म उसके विरूद्ध मुकदमा कर सकती है।

8.9 फर्म का पुनर्गठन (Reconstitution of Firm)

कभी-कभी कोई घटना घट जाने से फर्म के साझेदारों के परस्पर सम्बन्धों में परिवर्त्तन हो जाता है अथवा फर्म की बनावट में परिवर्त्तन हो जाता है तो ऐसे परिवर्तित फर्म को ''पुनर्गठित फर्म'' कहते हैं। 'फर्म का पुनर्गठन' निम्नलिखित दशाओं में होता है-

(1) नये साझेदार का प्रवेश।

(2) पुराने साझेदार द्वारा अवकाश ग्रहण।

(3) किसी साझेदार का निष्कासन।

(4) किसी साझेदार का दिवालिया होना।

(5) किसी साझेदार की मृत्यु होना।

(6) किसी साझेदार द्वारा अपना-हित-हस्तान्तरण करना।

8.9.1 नये साझेदार का प्रवेश (Incoming of Partner) -

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 31(1) के अनुसार, किसी फर्म के वर्त्तमान सभी साझेदारों की सहमति, अथवा सभी साझेदारों द्वारा नये साझेदार के प्रवेश के सम्बन्ध में किये गये अनुबन्ध के अनुसार, किसी नये व्यक्ति को फर्म में साझेदार बनाया जा सकता है।

अधिकार एवं दायित्व -

साझेदारी अधिनियम के अन्तर्गत नये साझेदार के निम्नलिखित अधिकार एवं दायित्व हैं-

(i) अधिनियम की धारा 31(2) के अनुसार, फर्म में प्रवेश करनेवाला नया साझेदार फर्म के उन कार्यों से बाध्य नहीं होता जो उसके प्रवेश पाने से पहले किये गए थे। अर्थात् उसका दायित्व प्रवेश की तिथि से आरम्भ होता है।

(ii) साझेदारी समझौता की सभी शर्तों का पालन करने के लिए नया साझेदार बाध्य होता है।

(iii) विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, एक नये साझेदार के वे ही अधिकार एवं दायित्व होंगे जो अन्य साझेदारों के होते हैं।

(iv) परस्पर समझौता करके नया साझेदार पूर्व दायित्वों के लिए जिम्मेदार होना स्वीकार कर सकता है। किन्तु इससे फर्म के लेनदारों द्वारा नये साझेदार के विरूद्ध उसके प्रवेश से पूर्व के दायित्वों के लिए कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता जब तक कि उन्हें इस व्यवस्था की सूचना न मिले और उंन्होंने स्पष्ट रूप से अपने आचरण से पुनर्गठित फर्म को उत्तरदायी न मान लिया हो।

8.9.2 साझेदार द्वारा अवकाश ग्रहण करना (Retirement of Partner) -

अधिनियम की धारा 31(1) के अनुसार कोई भी साझेदार निम्नलिखित तरीकों से फर्म से अवकाश ग्रहण कर सकता हैं-

(क) सभी साझेदारों की सहमति से,

(ख) साझेदारों द्वारा किए गये स्पष्ट अनुबन्ध के अन्तर्गत; एवं

(ग) ऐच्छिक साझेदारी की स्थिति में अवकाश ग्रहण करने की लिखित सूचना अन्य साझेदारों को देकर।

अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार का अधिकार - इनको निम्नलिखित दो अधिकार प्राप्त है-

(i) फर्म से अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार फर्म का प्रतियोगी व्यापार कर सकता है एवं इसके लिए विज्ञापन भी दे सकता है। किन्तु कोई विपरीत अनुबन्ध नहीं होने पर वह-

(क) फर्म के नाम का उपयोग नहीं कर सकता;

(ख) स्वयं को फर्म का प्रतिनिधि नहीं बता सकता, एवं

(ग) फर्म के पुराने ग्राहकों को अपने यहाँ तोड़कर लाने का प्रयास नहीं कर सकता है।

उपरोक्त प्रतिबन्धों के अतिरिक्त अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार पर परस्पर समझौता करके और भी प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं। इस प्रकार का प्रतिबन्ध "व्यापार में लगाया गया प्रतिबन्ध" नहीं माना जाता एवं यह प्रतिबन्ध पूर्ण वैध होता है।

(ii) फर्म से अवकाश लेने वाले साझेदार का हिसाब यदि चुकता नहीं किया जाता है एवं शेष साझेदार फर्म की सम्पत्ति से व्यापार चलाते रहते हैं, तो अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार अपनी पूँजी पर 6% वार्षिक ब्याज प्राप्त करने अथवा फर्म के लाभों में हिस्सा लेने का अधिकार होता है।

अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार का दायित्व-

(i) अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार अवकाश-ग्रहण करने के पूर्व फर्म के कार्यों के लिए अन्य साझेदारों एवं तीसरें पक्षों के प्रति बाध्य होता है, वह चाहे तो शेष साझेदारों अथवा तृतीय पक्षों से अनुबन्ध करके, अवकाश ग्रहण करने के पूर्व के कार्यों से अपने को मुक्त कर सकता है। (Sec. 32(2))

(ii) वह अवकाश ग्रहण करने के बाद के कार्यों के लिए, अन्य साझेदारों के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, किन्तु तृतीय साझेदारों के प्रति ऐसे कार्यों के लिए वह तब तक उत्तरदायी रहता है, जब तक कि वह अलग होने की सूचना सार्वजनिक रूप से नहीं दे देता। (Sec. 32(3))

(iii) यदि तीसरा पक्ष, जो फर्म के साथ व्यवहार कर रहा हो एवं उसे इस बात की जानकारी न हो कि अवकाश ग्रहण करने वाला साझेदार उस फर्म में साझेदार है, तो ऐसी दशा में अलग होने वाला साझेदार ऐसे कार्यों के लिए बाध्य नहीं होगा, भले ही उनसे अलग होने की सूचना न दी हो।

8.9.3 साझेदार का निष्कासन (Expulsion of a Partner) -

सामान्यतया सभी साझेदार मिलकर भी किसी साझेदार को फर्म से नहीं निकाल सकते किन्तु अधिनियम की धारा 33 के अनुसार निम्नलिखित शर्तों के पूरा किए जाने पर किसी भी साझेदार को निष्कासित किया जा सकता है-

(i) यदि साझेदारी अनुबन्ध द्वारा साझेदार को निष्कासन का अधिकार दिया गया हो,

(ii) ऐसे अधिकार का उपयोग बहुमत से किया गया हो, एवं

(iii) इस अधिकार का उपयोग साझेदारों ने पूर्ण सद्विश्वास एवं सद्भावना से किया हो।.

निष्कासित साझेदार न्यायालय द्वारा साझेदार के रूप में पुनर्नियुक्ति की माँग कर सकता है। किन्तु अनियमित निष्कासन के लिए वह कोई हर्जाना, वसूल नहीं कर सकता। निष्कासित किए जाने वाले साझेदारों के वही अधिकार एवं दायित्व होते हैं, जो अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के होते हैं।

8.9.4 साझेदार का दिवालिया होना (Insolvency of a Partner) -

अधिनियम की धारा 34(1) के अनुसार, किसी साझेदार के दिवालिया घोषित होने पर वह दिवालिया होने की तिथि से ही साझेदार नहीं रहता, चाहे फर्म समाप्त हो अथवा नहीं।

अधिकार एवं दायित्व-

यदि साझेदारों के अनुबन्ध के अनुसार किसी साझेदार के दिवालिया होने पर फर्म समाप्त नहीं की जाती तो दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति, दिवालियेपन की तिथि के बाद किए गए फर्म के कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होती। इसी प्रकार दिवालिया घोषित होने के बाद यदि दिवालिया साझेदार फर्म को अपने कृत्यों से बाध्य करना चाहे तो वह नहीं कर सकता है। दिवालिया होने वाले साझेदार को फर्म से अलग होने की सार्वजनिक सूचना देना आवश्यक नहीं होता।

8.9.5 साझेदार की मृत्यु (Death of a partner) -

किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, किसी भी साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म समाप्त हो जाता है। किन्तु अधिनियम की धारा 35 के अनुसार यदि साझेदारी अनुबन्ध के अनुसार किसी साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म की समाप्ति अनिवार्य न हो, तो शेष साझेदार फर्म का व्यापार करते रह सकते हैं। मृत साझेदार की सम्पत्ति मृत्यु की तिथि के बाद के फर्म के कार्यों के लिए दायी नहीं होती।

साझेदार की मृत्य की सार्वजनिक सूचना देना आवश्यक नहीं होता। मृतक साझेदार का उत्तराधिकारी, बिना सभी साझेदारों की सहमति के, फर्म में साझेदार नहीं हो सकता। किन्तु जब तक उसके हिस्सा फर्म से नहीं मिल जाता, वह उस पर 6% वार्षिक ब्याज अथवा फर्म के लाभों में हिस्सा ले सकता है।

8.9.6 साझेदार द्वारा हित-हस्तान्तरण (Transfer of Partners' Interest) -

साझेदारी अधिनियम की धारा 31 के अनुसार सभी साझेदारों की सहमति के बिना किसी भी व्यक्ति को फर्म में साझेदार नहीं बनाया जा सकता है। अर्थात् कोई साझेदार अपने हित अथवा हिस्से को हस्तान्तरित करके किसी अन्य व्यक्ति

को तब तक साझेदार नहीं बना सकता है जबतक कि अन्य साझेदार उस व्यक्ति को साझेदार के रूप में स्वीकार न कर लें, किन्तु अधिनियम के अनुसार कोई भी साझेदार साझेदारी फर्म के अपने हिस्से को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित कर सकता है।

कोई भी साझेदार जिस व्यक्ति को अपनी हित हस्तान्तरित करता है वह फर्म में साझेदार नहीं बन सकता है। इसके अलावे न तो फर्म के प्रबन्ध में भाग ले सकता है और नही फर्म की लेखा-बहियों की जाँच कर सकता है। उसे केवल हस्तान्तरित साझेदार को हिस्से का लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

8.10 साझेदारी फर्म की समाप्ति (Dissolution of Firm)

साझेदारी अधिनियम की धारा 39 के अनुसार, "किसी फर्म के सभी साझेदारों के बीच साझेदारी की समाप्ति ही फर्म की समाप्ति कहलाती है।"

साझेदारी अधिनियम में "साझेदारी की समाप्ति" एवं "फर्म की समाप्ति" को एक दूसरे से भिन्न माना गया है। यदि फर्म का कोई भी साझेदार किसी कारणवश फर्म से अलग हो जाता है और शेष साझेदार फर्म का व्यापार चलाते रहते हैं, तो इसे "साझेदार की समाप्ति" कहा जाता है। इसी प्रकार, यदि फर्म में किसी नये साझेदार को शामिल कर दिया जाता है तब पुरानी साझेदारी समाप्त हो जाती है एवं नये व पुराने साझेदार मिलकर एक पुनर्गठित फर्म के रूप में फर्म का व्यवसाय चलाते रहते हैं। किन्तु यदि किसी फर्म के सभी साझेदारों का आपसी सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाये एवं फर्म का व्यवसाय बन्द हो जाये तो उसे "फर्म की समाप्ति" कहा जाता है।

साझेदारी के समाप्त होने पर फर्म की समाप्ति हो, यह आवश्यक नहीं है। किन्तु फर्म की समाप्ति होने पर साझेदारी अवश्य समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, रवि, रितेश एवं रंजन की साझेदारी है। रवि दिवालिया हो जाता है। किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, इससे फर्म की समाप्ति हो जायेगी एवं तीनों की साझेदारी भी समाप्त हो जायेगी। किन्तु अगर रितेश, रंजन एक पुनर्गठित फर्म के रूप में व्यापार चलाते रहने का समझौता करते हैं, तो इससे साझेदारी तो समाप्त हो जायेगी किन्तु फर्म की समाप्ति नहीं होगी।

साझेदारी फर्म की समाप्ति दो प्रकार से की जाती है-

(क) न्यायालय के बिना हस्तक्षेप से समाप्ति, एवं

(ख) न्यायालय के हस्तक्षेप से समाप्ति।

8.10.1 न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना समाप्ति (Dissolution without the Intervention of the Court) -

न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना निम्नलिखित किसी भी प्रकार से फर्म की समाप्ति हो सकती है-

(1) परस्पर समझौते द्वारा (By mutual agreement) -

जिस प्रकार एक आपसी समझौता द्वारा फर्म का निर्माण होता है, उसी प्रकार सब साझेदारों की सहमति के, अथवा उनके द्वारा किये गए आपसी समझौता से फर्म को समाप्त भी किया जा सकता है। इस प्रकार की समाप्ति के लिए न्यायालय के आदेश की आवश्यकता नहीं है। (धारा 40)

(2) अनिवाय समाप्ति (Compulsory dissolution) -

एक साझेदारी फर्म निम्नलिखित दो परिस्थितियों में अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाती है-

(i) जब किसी फर्म के सभी साझेदार, अथवा एक को छोड़कर अन्य सभी साझेदार दिवालिया घोषित कर दिए जायें।

(ii) जब कोई ऐसी घटना हो जाए जिसमें फर्म का व्यापार अवैध हो जाय अथवा उसे साझेदारी के रूप में चलाया जाना अवैध हो जाता है। उदाहरण के लिए फर्म द्वारा जिस वस्तु का व्यवसाय किया जा रहा हो, यदि उसका क्रय-विक्रय करना सरकार द्वारा निषेध कर दिया जाय, ऐसी दशा में फर्म को अनिवार्य रूप से समाप्त कर देना पड़ता।

किन्तु यदि फर्म अनेक प्रकार के व्यवसाय चला रही हो और उनमें से केवल एक अथवा कुछ व्यवसाय अवैध हो जाते हैं, तो फर्म का समापन अनिवार्य नहीं होता, क्योंकि वह वैध व्यवसाय को अब भी चला सकती है। (धारा 41)

(3) किसी सम्भावित घटना के घटित होने पर (On the happening of certain contingencies) -

यदि कोई विपरीत अनुबन्ध न किया गया हो तो निम्नलिखित परिस्थितियों में फर्म की समाप्ति हो जाती है-

(i) यदि किसी साझेदारी फर्म का निर्माण एक निश्चित समय के लिए किया गया है तो उस समय के समाप्त होते ही फर्म का अन्त हो जाता है।

(ii) यदि किसी फर्म का गठन किसी विशिष्ट उपक्रम अथवा कार्य के लिए किया गया हो, तो उस उपक्रम अथवा कार्य के समाप्त होते ही फर्म भी समाप्त माना जायेगा।

(iii) किसी साझेदार की मृत्यु हो जाने पर।

(iv) किसी भी साझेदार के दिवालिया घोषित किए जाने पर।

किन्तु, उपर्युक्त सभी परिस्थितियों में फर्म की समाप्ति अनिवार्य नहीं है, क्योंकि यदि साझेदार चाहे, तो परस्पर समझौता द्वारा फर्म का व्यवसाय चालू रख सकते हैं। (धारा 42)

(4) सूचना द्वारा समाप्ति (Dissolution by notice) -

अधिनियम की धारा 43 के अनुसार, यदि ऐच्छिक साझेदारी की स्थिति में कोई साझेदार, साझेदारी समाप्त करने की सूचना अन्य साझेदारों को दे देता है तो सूचना देने की तिथि से ही फर्म की समाप्ति हो जाती है। यदि सूचना में फर्म की समाप्ति के लिए कोई विशेष तिथि दी गई हो, तो फर्म की समाप्ति उसी तिथि से लागू होती है, सूचना द्वारा फर्म की समाप्ति के लिए यह आवश्यक है कि-

(क) सूचना लिखित रूप में हो,

(ख) उस पर सूचना देनेवाले साझेदार के हस्ताक्षर हों, एवं

(ग) सूचना सभी साझेदारों को दी गई हों।

8.10.2 न्यायालय के हस्तक्षेप से समाप्ति (Dissolution by Intervention of court) -

यदि किसी साझेदारी फर्म का कोई साझेदार फर्म का समापन चाहता है, किन्तु दूसरे साझेदार इसके लिए सहमत नहीं होते, तो उसके लिए एक ही रास्ता शेष रहता है कि वह न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देकर समापन का आदेश प्राप्त करें। साझेदारी अधिनियम की धारा 44 के अनुसार, न्यायालय केवल निम्नलिखित परिस्थिति में ही फर्म के समापन का आदेश दे सकता है-

(1) किसी साझेदार के पागल होने पर (On Insanity of a partner) - यदि फर्म का कोई साझेदार पागल हो जाता है तो वह अपने कर्त्तव्यपालन के योग्य नहीं रहता, अतः फर्म की समाप्ति के लिए यह एक उचित आधार माना जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई भी अन्य साझेदार, अथवा पागल साझेदार किसी निकट सम्बन्धी, न्यायालय से फर्म का समाप्त करने की प्रार्थना करता है, तो न्यायालय समापन का आदेश दे सकता है। न्यायालय द्वारा आदेश जारी करने पर ही आदेश की तिथि से फर्म का समापन माना जाता है एवं उस तिथि से पूर्व के कार्यों के लिए पागल साझेदार की सम्पति उत्तरदायी होती है। (धारा 44(a))

(2) किसी साझेदार के स्थायी रूप से अयोग्य हो जाने पर (on permanent incapability of a partner) - यानि फर्म का कोई साझेदार शारीरिक अथवा मानसिक रूप से फर्म के कार्य करने से स्थायी रूप से अयोग्य हो जाता है, तो कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय से फर्म के समापन की माँग कर सकता है एवं न्यायालय संतुष्ट होने पर समापन का आदेश दे सकता है।

(3) किसी साझेदार के दुराचरण करने पर (On misconduct of a partner) - यदि किसी फर्म का कोई साझेदार किसी ऐसे दुराचरण का दोषी है, जिससे फर्म के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका है तो, किसी भी अन्य साझेदार की प्रार्थना पर न्यायालय फर्म के समापन का आदेश दे सकता है। उदाहरण के लिए, यदि डाक्टरों के फर्म का कोई साझेदार व्यभिचार का दोषी है तो उससे फर्म के व्यवसाय पर बुरा प्रभाव पड़ने की पूरी सम्भावना है। अतः इस आधार पर किसी साझेदार की प्रार्थना पर न्यायालय फर्म के समापन का आदेश दे सकता है। (धारा 44(c))

(4) किसी साझेदार द्वारा निरन्तर अनुबन्ध-भंग करने पर (On persistent breach of contract of a partner) - यदि फर्म का कोई साझेदार जान-बूझकर अथवा बार-बार फर्म के व्यवसाय संचालन में समझौते की शर्तों का उल्लंघन करता है अथवा व्यवसाय सम्बन्धी मामलों में इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे दूसरे साझेदारों के लिए उसके साथ व्यापार चलाना कठिन हो जाय, तो न्यायालय किसी भी अन्य साझेदार की प्रार्थना पर फर्म के समापन का आदेश दे सकता है। (धारा 44(d))

(5) हित का हस्तान्तरण करने पर (On transfer of interest) - यदि किसी साझेदार ने फर्म में अपना पूरा हिस्सा किसी तीसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित कर दिया है अथवा उसे न्यायालय ने कुर्क कर लिया है या बेच दिया है तो न्यायालय किसी भी अन्य साझेदार की प्रार्थना पर, फर्म समाप्ति का आदेश दे सकता है। (धारा 44(e))

(6) निरन्तर हानि के आधार पर (On perpetual losses) - साझेदारी का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है, और अगर यह उद्देश्य पूरा नहीं होता है तो फर्म के व्यापार को चालू रखना बेकार है। अतः जब फर्म के व्यापार की स्थिति ऐसी हो चुकी हो, कि अब उसे बिना हानि उठाए न हीं चलाया जा सकता तो न्यायालय किसी एक साझेदारी की प्रार्थना पर, फर्म के समापन का आदेश दे सकता है। (धारा 44(f))

(7) अन्य किसी उचित अथवा न्यायिक आधार पर (On other just and requitable) - अन्य किसी आधार पर जिसके अनुसार यदि न्यायालय फर्म के समापन को उचित एवं न्यायपूर्ण समझता हो, तो किसी साझेदार की प्रार्थना पर, न्यायालय फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता हैं जैसे-यदि साझेदारी में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास एवं असहयोग की भावना उत्पन्न हो जाय अथवा व्यापार के प्रबन्ध में गतिरोध उत्पन्न हो जाय, तो किसी साझेदार द्वारा प्रार्थना करने पर न्यायालय फर्म समाप्ति का आदेश दे सकता है। (धारा 44(g))

8.11 साझेदारी फर्म के समापन के परिणाम (Consequences of Dissolution of Firm)

साझेदारी फर्म का समातन हो जाने पर साझेदारों के अधिकार एवं दायित्व सम्बन्धी नियम अधिनियम की धारा 45 से 55 के बीच की गई है; फर्म के समापन पर साझेदारों का अधिकार-

अधिनियम के अन्तर्गत फर्म के समापन पर साझेदारों के निम्नलिखित अधिकारों की चर्चा की गई हैं-

(1) फर्म की सम्पत्ति के न्यायिक वितरण का अधिकार-

फर्म का सपापन हो जाने पर प्रत्येक साझेदार अथवा उनके प्रतिनिधि को यह अधिकार है कि वह फर्म की सम्पत्तियों को पहले फर्म के ग्रहणों एवं दायित्वों का भुगतान करने में कराएँ और फिर शेष रकम को साझेदारों अथवा उनके प्रतिनिधियों में उनके अधिकारों के अनुपात में वितरित करायें । [धारा 46]

(2) प्रीमियम वापस लेने का अधिकार-

यदि किसी साझेदार ने एक निश्चित अवधि की साझेदारी में सम्मिलित होते समय का प्रीमियम (अधिशुल्क) दिया हो एवं वह फर्म उस निश्चित अवधि के पहले ही समाप्त हो जाय, तो वह उस प्रीमियम अथवा उसके ऐसे भाग को पाने का अधिकारी है, जो उचित हो । किन्तु निम्नलिखित अवस्थाओं में उसे प्रीमियम वापस पाने का अधिकार नहीं होगा-

(i) यदि फर्म का समापन किसी साझेदार की मृत्यु के कारण हुई हो,

(ii) यदि समापन प्रीमियम देने वाले साझेदार के दुराचरण के कारण हुई हो;

(iii) यदि साझेदारी का समापन किसी ऐसे अनुबन्ध के अन्तर्ग की गई हो, जिसके अनुसार प्रीमियम वापस पाने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया हो;

(iv) यदि फर्म किसी अनिश्चित अवधि के लिए हो । [धारा 51]

(3) कपट आदि के कारण साझेदार अनुबन्ध निरस्त होने का अधिकार-

यदि किसी व्यक्ति को कपट अथवा मिथयावर्णन द्वारा साझेदारी में शामिल किया गया था और कपट का मिथ्यावर्णन का पता चलने पर उसने साझेदारी अनुबन्ध को निरस्त कर दियाहै, तो ऐसे साझेदार को, अन्य अधिकारों के अलावा, निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं-

(i) उसे, फर्म के ग्रहण व दायित्व का भुगतान हो जाने के बाद, बची हुई सम्पत्ति को अपनी उन रकमों के लिए रोके रखने का अधिकार है जो उसने फर्म में हिस्सा पाने के लिए दी थी अथवा पूँजी के रूप में लगायी थी।

(ii) यदि उसने फर्म के लेनदारों को कोई रकम भुगतान किया है, तो उस रकम के लिए उसे फर्म के किसी ऋणदाता के समस्त अधिकार प्राप्त होंगे।

(iii) उसप फर्म के साझेदार होने के लिए जो दायित्व आया है, उसके लिए वह उन साझेदारों से क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है जो कपट अथवा मिथ्यावर्णन के दोषी है। [धारा 52]

(4) फर्म का नाम अथवा सम्पत्ति के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार-

यदि फर्म के साझेदारों में इसके विपरीत कोई समझौता न हुआ हो, तो प्रत्येक साझेदार अथवा उसका प्रतिनिधि, फर्म के समापन हो जाने पर, दूसरे साझेदारों अथवा उसके प्रतिनिधियों को फर्म के नाम में फर्म जैसा व्यापार करने अथवा फर्म की किसी भी सम्पत्ति को व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी साझेदार ने फर्म की ख्याति क्रय कर ली है तो वह फर्म के नाम का उपयोग कर सकता है। [धारा 53]

फर्म का समापन हो जाने पर अथवा समापन को ध्यान में रखकर, फर्म के सभी साझेदार आपस में एक ऐसा समझौता भी कर सकते हैं कि कुछ अथवा सब साझेदार एक निर्दिष्ट समय तक अथवाएक निर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्रा में फर्म के कारोबार मान्य होंगे।

फर्म के समापन पर साझेदारों का दायित्व -

अधिनियम के अन्तर्गत फर्म के समापन पर साझेदारों के निम्नलिखित दायित्वों का वर्णन किया जाता है-

(1) फर्म के समापन के बाद साझेदारों द्वारा किये गये कार्य के लिए दायित्व-

अधिनियम की धारा 45 के अनुसार जब तक साझेदारी फर्म के समापन की सार्वजनिक सूचना नहीं दे दी जाती, तब तक फर्म के सभी साझेदार तीसरे पक्षकारों के प्रति उन समस्त कार्यों के लिए उत्तरदायी रहते है जो साझेदारों द्वारा फर्म के व्यापार के सम्बन्ध में किए गए हों ।

किन्तु यह नियम मृत अथवा दिवालिया अथवा ऐसे निष्क्रय साझेदार जिसने अवकाश ग्रहण कर लिया हो, पर लागू नहीं होगा।

(2) फर्म के समापन एवं अधूरे सौदों सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाही के लिए दायित्व-

निम्नलिखित मामालों में साझेदारों द्वारा समापन के बाद किए गए कार्यों के लिए भी फर्म पूर्णतया बाध्य होती है-

(क) फर्म के समापन सम्बन्धी मामलों को निपटाने के लिए ।

(ख) ऐसे समझौते को पूरा करने के लिए जो फर्म के समापन से पहले शुरू हुए थे, किन्तु समापन के समय तक अधूरे थे।

उपर्युक्त कार्यों के लिए फर्म को बाध्य करने का साझेदार का गर्भित अधिकार समापन के बाद भी लागू रहता है। किन्तु समापन के बाद साझेदारों का किसी भी अन्य मामले के सम्बन्ध में यह अधिकार नहीं होता है । [धारा 50]

8.12 हिसाब-किताब का निपटारा करने के नियम (Rules for Settling Accounts)

सामान्यतया फर्म के समापन के बाद हिसाब-किताब के निपटारा के सम्बन्ध में साझेदार आपस में समझौता कर लेते हैं एवं उसी के अनुसार हिसाब-किताब का निपटारा होता है। किन्तु यदि साझेदारों के बीच इस सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ हो, तो साझेदारों के बीच हिसाब-किताब का निपटारा अधिनियम की निम्नलिखित व्यवस्था के अन्तर्गत होगा

(1) हानियों को पूर्ति-

फर्म की हानियों को, जिनमें पूँजी की कमी भी शामिल है, सबसे पहले फर्म के लाभों में से, फिर पूँजी में से और अन्त में, अगर आवश्यक हो तो साझेदारो द्वारा व्यक्तिगत रूप से उस अनुपात में पूरा किया जायेगा जिस अनुपात में वे लाभ-वितरण के अधिकार थे । [धारा 48 (a)]

(2) सम्पत्तियों का उपयोग -

फर्म की सम्पत्तियों को, जिनमें साझेदारों द्वारा लाई गई वह रकम भी शामिल है जो उन्होंने अपनी पूँजी की कमी पूरी करने के लिए दी हो, निम्नलिखित क्रम में प्रयुक्त की जायेगी-

(i) तीसरे पक्ष की देय राशि (ऋणों) का भुगतान करेनें में,

(ii) प्रत्येक साझेदार को यथानुपात (ratably) ऐसी रकम चुकाने में जो उसने पूँजी के अतिरिक्त फर्म को ऋण के रूप में दी है एवं अभी तक बकाया है ।

(iii) प्रत्येक साझेदार की पूँजी के रूप में बकाया रकम का यथानुपात भुंगतान करने में,

(iv) उपर्युक्त भुगतानों के बाद भी अगर कुछ शेष बचता है तो उसे साझेदारों में उनके लाभ-वितरण के अनुपरांत में विभाजित कर दिया जायेगा। [धारा 48(d)]

(3) फर्म के संयुक्त एवं पृथक् ऋण का भुगतान-

यदि फर्म पर संयुक्त एवं पृथक् दोनों ऋण बकाया है तो फर्म की सम्पत्ति को प्रयोग निम्नलिखित विधि से होगा-

(i) फर्म की सम्पत्ति का पयोग सर्वप्रथम फर्म के ऋण भुगतान में किया जायेगा।

(ii) उसके, बाद शेष सम्पत्ति से साझेदार का अपना हिस्सा, उसके पृथक् ऋण का भुगतान में प्रयोग होगा।

(iii) साझेदारों के व्यक्तिगत सम्पत्ति से पहले व्यक्तिगत ऋण का भुगतान होगा एवं उसके बाद शेष बची रकम से फर्म के ऋण का। [धारा 48]

(4) ख्याति-

यदि विपरीत कोई समझौता नहीं हुआ है, तो फर्म की ख्याति को भी फर्मक की सम्पत्तियों में ही शामिल कर लिया जाता है, एवं इसका उपयोग भी फर्म की सम्पत्ति के साथ हो जाता है। [धारा 55]

8.13 सारांश (Summing up)

साझेदारी से तात्पर्य साझेदारी अधिनियम के अनुसार व्यवसाय को स्थगित करना है। साझेदारी अधिनियम के अनुसार व्यवसाय को स्थगित करना है। साझेदारों के अधिकारों एव कर्त्तव्यों का वर्णन साझेदारी सविदा में की गई है साझेदार के कई प्रकार होते हैं। एक अथवा भी साझेदार बन सकता है लेकिन वह हानि में हिस्सा नहीं ले सकता। अधिनियम के अनुसार साझेदारी का पंजीयन अनिवार्य नहीं है।

8.14 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1. साझेदारी के आवश्यक तत्वों का वर्णन कीजिये।
2. एक अव्यस्क साझेदारी की स्थिति को स्पष्ट कीजिये।
3. साझेदारों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।

8.15 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता

इकाई - 9 पाठ-15

पंच-निर्णय अधिनियम 1940
(Arbitration Act - 1940)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

9.0 उद्देश्य (Objective)

9.1 परिचय (Introduction)

9.2 पंच-निर्णय का आशय एवं परिभाषायें

9.3 पंच-निर्णय समझौते के आवश्यक लक्षण

9.4 पंच-निर्णय प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति

9.5 पंच-निर्णय की विषय वस्तु

9.5.1 प्रस्तुत नहीं किये जाने वाले विवाद

9.5.2 पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुति के तरीके

9.5.3 पंच-निर्णय समझौते की गर्भित शर्तें

9.6 पंच का अर्थ

9.6.1 पंच कौन हो सकता है ?

9.6.2 पंच अथवा मध्यस्थ की नियुक्ति

9.6.3 व्पंच या मध्यस्थ को हटाना

9.7 पंच अथवा मध्यस्थ का अधिकार

9.8 पंच अथवा मध्यस्थ के कर्त्तव्य

9.9 परिनिर्णय

9.9.1 परिनिर्णय की परिभाषा

9.9.2 वैध परिनिर्णय के आवश्यक तत्त्व

9.9.3 परिनिर्णय को न्यायालय में दाखिल करना

9.9.4 परिनिर्णय के सम्बन्ध में न्यायालय के अधिकार

9.9.5 न्यायालय के हस्तक्षेप द्वारा पंच-निर्णय जबकि कोई विचाराधीन नहीं है।

9.9.6 पंच-निर्णय जब कि न्यायालय में वाद चालू है

9.10 सारांश (Summuing up)

9.11 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

9.12 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

9.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ में छात्रों को सनिर्णय सम्बन्धी विभिन्न प्रावधानों की चर्चा की गई। इसके विभिन्न पक्षों से छात्रों को परिचित करना इस पाठ का मुख्य उद्देश्य हैं।

यह अधिनियम 1940 में पारित किया गया एवं जम्मू एवं कश्मीर राज्य छोड़ कर सम्पूर्ण भारत में 2 जुलाई, 1940 से लागू माना गया।

9.1 परिचय (Introduction)

पंच-निर्णय का अशय दो पक्षकारों के आपसी विवाद का निपटारा, उनकी प्रार्थना पर, किसी तीसरे व्यक्ति से जिसे पंच अथवा मध्यस्थ कहते हैं, कराने से है। पंच द्वारा विवाद निपटारे की प्रथा भारत में प्राचीन काल से हो रही है। आधुनिक व्यावसायिक युग में भी पक्षकारों के मध्य आपसी विवाद होते ही रहते हैं। यदि इन विवादों का निपटारा न्यायालय द्वारा कराया जाय तो वैधानिक कार्यवाही में व्यय एवं समय दोनों ही अधिक लगेगा, किन्तु इस अधिनियम के द्वारा पक्षकारों को अपने आपसी विवादों का निपटारा अपने ही चुने गए पंच द्वारा कराने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

9.2 पंच निर्णय का आशय (Meaning of Arbitration)

परिभाषा (Definition)- पंच-निर्णय अधिनियम 1940 की धरा 2 (a) के अनुसार- "पंच-निर्ण समझौते का आशय लिखित समझौते से है जिसके अनुसार समझौते के पक्षकार अपने वर्तमान अथवा भावी विवादों को पंच निर्णय के समक्ष प्रस्तुत करते है, चाहे उसमें पंच का नाम दिया हो अथवा नहीं।" ("An Arbitration means a written agreement to submit present or future differences to ardbitration, whether an arbitrator is named therein or not.") [Sec.2(a)]

9.3 पंच-निर्णय समझौते के आवश्यक लक्षण (Essential Elements of an Arbitration Agreement)

उपर्युकत परिभाषा के अनुसार एक मान्य पंच निर्णय समझौते के निम्नलिखित लक्षण है-

(i) यह समझौता लिखित होना चाहिए, मौखिक नहीं।

(ii) इसमें वर्त्तमान अथवा भावी मतभेदों को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

(iii) पंच-निर्णय समझौते पर पक्षकारों के हस्ताक्षरों का होना आवश्यक नहीं है।

(iv) पंच-निर्णय समझौते के लिए यह आवश्यक है कि उसमें एक वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षण वर्त्तमान होना चाहिए ।

(v) पंच-निर्णय समझौता किसी भी रूप में लिखा जा सकता है, क्योंकि इसके लिए कोई विशेष प्रारूप (Special form) निर्धारित नहीं किया गया है।

(vi) आपसी विवाद को पंच-निर्णय द्वारा निपटाने के लिए दोनों पक्षकारों की सहमति अनिवार्य है ।

(vii) विवाद नागरिक मामलो (Civil Matters) से संबंधित ही होना चाहिए ।

9.4 पंच-निर्णय प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति (Persons who can refer to Arbitration)

पंच-निर्णय समझौता भी अन्य प्रकार के अनुबन्धों के समान है। अतः जो व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हैं, वे किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं । साधारणतया निम्नलिखित व्यक्ति किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं -

(1) एक अभिकर्त्ता (Agent) अपने नियोक्ता से स्पष्ट या गर्भित रूप से अधिकृत होने पर किसी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(2) एक हिन्दू अविभाजित परिवार का कर्त्ता संयुक्त परिवार की सम्पत्ति से सम्बन्धित किसी भी विवादक को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(3) सरकारी प्राप्तांक (Official Receiver) न्यायालय की अनुमति से दिवालिया सम्बन्धी किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(4) एक एडवोकेट अपने मुवक्किल द्वारा अधिकृत किए जाने पर उससे सम्बन्धित किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(5) एक ट्रस्टी, ट्रस्ट द्वारा अधिकृत होने पर विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

(6) कम्पनी एवं किसी अन्य व्यक्ति के मध्य विवाद उत्पन्न हो जोन पर कम्पनी लिखित समझौते द्वारा अपने किसी भी विवाद को पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकती है।

(7) एक साझेदार साझेदारी से सम्बन्धित विवाद को पंच-निर्णय के लिए तभी प्रस्तुत कर सकता है जबकि उसे ऐसा करने के लिए अन्य साझेदारों द्वारा स्पष्ट रूप से अधिकृत कर दिया गया हो ।

(8) दिवालिया अपनी सम्पति को बाध्य करने के उद्देश्य से उस विवाद को प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसका वह पक्षकार है।

9.5 पंच-निर्णय की विषय-वस्तु (Subject-matter of Arbitration)

पंच-निर्णय के लिए सभी विवाद या विषय प्रस्तुत किए जा सकते हैं । केवल निम्नलिखित विषय या विवाद पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किए जा सकते है-

(1) ऐसे समस्त विवाद अथवा विषय जो दीवानी प्रकृति के हैं और जो व्यक्ति या व्यक्तियों के निजी अधिकारों को प्रभावित करते हैं ।

(2) ऐसे सभी विषय जो दीवानी प्रकृति के नहीं हैं, किन्तु जो दण्डनीय भी नहीं है।

(3) विधि सम्बन्धी अथवा तथ्य सम्बन्धी विवाद।

(4) समय वर्जित ऋण सम्बन्धी विवाद ।

(5) घरेलू अधिकार, नागरिक अधिकार, विवाद, भरण-पोषण सम्बन्धी विवाद ।

(6) अनुबन्ध भंग के कारण क्षति सम्बन्धित मामले ।

9.5.1 प्रस्तुत नहीं किये जाने वाले विवाद (Matter cannot be referred) -

निम्नलिखित विवाद पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं-

(1) अपराधपूर्ण एवं दण्डनीय विषय सम्बन्धी विवाद ।

(2) तलाक अथवा विवाह- विच्छेद सम्बन्धी विवाद।

(3) दिवालिया सम्बन्धी कार्यवाही वाला विवाद।

(4) सार्वजनिक दान-पुण्य सम्बन्धी विवाद ।

(5) अवयस्क अथवा पागल व्यक्ति के अभिभावकल सम्बन्धी विवाद ।

(6) वसीयत की वैधता सम्बन्धी विवाद ।

(7) तलाक सम्बन्धी विवाद ।

(8) अवैध व्यवहारों से सम्बन्धित विवाद ।

(9) मृत्यु-लेख सम्बन्धी कार्यवाही ।

9.5.2 पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुति के तरीके (Modes of Submission to Arbitration)-

अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार कोई भी विवाद निम्नलिखित तरीके से पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है-

(a) न्यायालय के हस्तक्षे बिना पंच-निर्णय- यदि पक्षों ने एक समझौता के अन्तर्गत यह निर्णय कर लिया है कि वह आपसी विवाद का निपटारा न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना पंच-निर्णय द्वारा करेंगे, तो वे अपने वर्तमान या भावी विवाद न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना पंच-निर्णय के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं ।

(b) न्यायालय के हस्तक्षेप द्वारा पंच-निर्णय- यदि कोई विवाद न्यायालय में प्रस्तुत करने से पूर्व पक्षों के मध्य पंच-निर्णय का समझौता हो चुका हो, किन्तु पक्षों के मध्य इस समझौता के सम्बन्ध में कोई विवाद उत्पन्न हो गया हो, तो कोई भी पक्षकार न्यायालय में समझौता न्यायालय में प्रस्तुत करने का आवेदन कर सकता है । न्यायालय आवेदन से संतुष्ट होने पर उस विवाद को पंच-निर्णय के लिए पंच को सौंप सकता है।

(c) पंच-निर्णय जबकि न्यायालय में वाद चालू है- यदि कोई विवाद न्यायालय में पहले से ही चल रहा है तो सभी पक्षकारों की सहमति से विवाद को, पंच-निर्णय के लिए सुपुर्द को न्यायालय से अनुरोध किया जा सकता है। किन्तु ऐसा अनुरोध न्यायालय द्वारा निर्णय देने से पहले ही किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में पक्षकारों द्वारा ही पंच की नियुक्ति की जायेगी।

9. 5.3 पंच निर्णय समझौते की गर्भित शर्ते (Implied conditions of an arbitration agreement)-

अधिनियम की धारा की धारा 3 के अनुसार विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एक पंच-निर्णय समझौते में निम्नलिखित गर्भित शर्ते आवश्यक हैं-

(i) किसी स्पश्ट विपरीत व्यवस्था के न होने पर विवाद केवल एक पंच को निर्णय के लिए सुपुर्द किया जायेगा।

(ii) यदि समझौता द्वारा निश्चित पंत्रों की संख्या सम है तो पंचागण अपने नियुक्त होने के एक माह की अवधि के (Even number) का अर्थ 2, 4, 6, 8 आदि संख्याओं अर्थात् जोड़े अंक से है ।

(iii) विवाद प्रस्तुत होने के चार माह की अवधि के भीतर पंचगण अपना निर्णय कर देंगे ।

(iv) पंचों द्वारा निश्चित अवधि में निर्णय न दिये जाने अथवा उनके द्वारा पंच-निर्णय समझौता के किसी पक्षकार या मध्यस्थ को लिखित में सूचित कर देने पर कि उनमें एकमत नहीं है, तो मध्यस्थ स्वयं निर्दिष्ट विवाद पर विचार करेगा।

(v) मध्यस्थ अपना निर्णय अधिकतमतः दो माह के अन्दर घोषित कर देगा । न्यायालय चाहे तो अवधि में वृद्धि कर सकते हैं ।

(vi) पंच-निर्णय समझौते के सभी पक्षकारों को पंचों या मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित होकर सशपथ बयान देना होगा ।

(vii) पंचों या मध्यस्थ द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम माना जायेगा एवं सभी पक्षकारों पर लागू होगा ।

(viii) पंच फैसले की कार्यवाही से सम्बन्धित सभी व्ययों का वहन पंचों अथवा मध्यस्थ के आदेशानुसार पक्षकारों को करना होगा ।

9.6 पंच का अर्थ (Meaning of Arbitrator)

यह व्यक्ति जो किसी विवाद को जो उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाय निपटारा करने के लिए नियुक्त किया जाता है पंच कहलाता है।

9.6.1 पंच कौन हो सकता ? (Who may be an arbitrator)-

कोई भी व्यक्ति, चाहे वह, अनुबन्ध करने की क्षमता रखता है अथवा नहीं, पंच के रूप में नियुक्त किया जा सकता है । किन्तु निम्नलिखित व्यक्ति पंच के रूप में नियुक्त नहीं हो सकते-

(i) विवाद में व्यक्तिगत हित रखने वाला व्यक्ति ।

(ii) विवाद के किसी पक्ष ईर्ष्या या द्वेष रखने वाला व्यक्ति।

(iii) वह व्यक्ति जिसकी ईमानदारी सन्देहास्पद है।

(iii) वह व्यक्ति जिसकी ईमानदारी सन्देहास्पद है।

9.5.2 पंच अथवा मध्यस्थ की नियुक्ति (Appointment of an Arbitrator)-

पंच अथवा मध्यस्थ की नियुक्ति निम्नलिखितरीतियों से हो सकती है-

(1) तृतीय पक्ष द्वारा नियुक्त (Appointment by third party) -

अधिनियम की धारा 4 के अनुसार विवाद से सम्बन्धित पक्षकार आपस में यह समझौता कर सकते हैं कि निर्देश अथवा प्रस्तुति किसी ऐस पंच या पंचों की जायेगी जो किसी तृतीय पक्ष द्वारा नियुक्त होगा । समझौते में ऐसे पक्षकार का नाम स्पष्ट कर दिया जाता है जिसे मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है।

(2) न्यायालय द्वारा नियुक्ति (Appointment by Court)-

निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा पंच की नियुक्ति की जा सकती है-

(i) जब पंच-निर्णय समझौते में यह व्यवस्था हो कि पंच की नियुक्ति समस्त पक्षकरों की सहमति से की जायेगी, किन्तु समस्त पक्षकारों में आपस में सहमति न हो जाये।

(ii) जब नियुक्त किया गया पंच कार्य करने में उपेक्षा करता है, या कार्य करने से इन्कार करता है या कार्य करने के आयोग्य है अथवा मर जाता है और समझौते के पक्षकारों की इच्छा रिक्त स्थान की पूर्ति करने की नहीं थी और उन्होंने रिक्त स्थान की पूर्ति न की हो ।

(iii) जब पक्षकारों अथवा पंचों की मध्यस्थ की नियुक्ति करनी है, किन्तु वे नियुक्ति की सूचना पाने के 15 दिन के अन्दर मध्यस्थ नियुक्त नहीं करते हैं ।

(iv) यदि न्यायालय ने किसी पंच या मध्यस्थ को उसके दुराचरण या अन्य किसी दोष से हटा दिया है । [धारा 8]

(3) पक्षकारों द्वारा नियुक्त (Appointment by parties)-

यदि पंच-निर्णय समझौते में यह व्यव्स्था है कि पंचों की नियुक्ति पक्षकारों द्वारा की जायेगी तो पक्षकारों द्वारा की जायेगी तो पक्षकार ही पंच की नियुक्ति करेंगे । इस सम्बन्ध में अधिनियम में निम्नलिखित हैं।

(i) समझौते के अनुसार प्रत्येक पक्षकार मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है, यदि नियुक्त किये गये पंचों में से कोई एक कार्य करने की उपेक्षा करता है अथवा कार्य करने से इन्कार करता है या कार्य करने के अयोग्य है, या मर जाता है. तो इस पंच को नियुक्त करने वाला पक्षकार इसके स्थान पर एक नये पंच की नियुक्ति कर सकते है।

(ii) यदि पंच निर्णय समझौते के अनुसार पंच की नियुक्ति पक्षकारों की सहमति से की जाती है, तो सम्बन्धित पक्षकार सर्वसम्मति से पंच या पंचों की नियुक्ति करेंगे । [धारा 9]

(iii) यदि किसी पंच- निर्णय समझौता में यह प्रावधान हो कि निर्देश तीन पंचों का होगा, जिनमें से प्रत्येक पक्षकार अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में पंच का मध्यस्थ के रूप में कार्य करेगा । [धारा 10]

9.6.3 पंच या मध्यस्थ को हटाना (Removal of Arbitrators or Umpire)-

अधिनियम की धारा 11 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में पंच या मध्यस्थ को हटाया जा सकता है-

(i) सामान्यता जब एक पंच की नियुक्ति हो जाती है तो पक्षकार उसे नहीं हटा सकते । किन्तु पंच-निर्णय समझौते के अन्तर्गत प्राप्त स्पष्ट अधिकार से या न्यायालय की अनुमति लेकर पक्षकार पंच को हटा सकते हैं । [धारा 5]

(ii) किसी पक्षकार द्वारा आवेदन मिलने पर न्यायालय निम्नलिखित परिस्थिति में पंच को हटा सकता है-

(a) यदि यह निर्देश पर विचार करने या निर्देश को कार्यान्वित करने एवं निर्णय देने में असमर्थ रहता हो, अथवा

(b) यदि पंच या मध्यस्थ स्वयं किसी दुराचरण का दोषी हो । [धारा 11]

9.7 पंच अथवा मध्यस्थ के अधिकार (Right of Arbitrators or Umpire)

अधिनियम की धारा 13 के अनुसार पंच अथवा मध्यस्थ के निम्नलिखित अधिकार है-

(i) पक्षकारों एवं गवाहों को शपथ दिलाना,

(ii) न्यायालय की राय जानने के लिए कोई कानून सम्बन्धी प्रश्न या परिनिर्णय को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करना ।

(iii) शर्त्त सहित या शर्त्त रहित निर्णय देना ।

(iv) परिनिर्णय की किसी लेख के त्रुटि या आकस्मिक त्रुटियाँ अथवा भूल में सुधार करना ।

(v) पंच निर्णय के किसी पक्षकार से प्रश्न पूछना जो कि पंचों अथवा मध्यस्थों की राय में आवश्यक हो ।

इसके अतिरिक्त धरा 27 के अन्तर्गत भी पंचों निम्न अधिकार प्राप्त हैं-

(i) अन्तरिम परिनिर्णय देना ।

(ii) ब्याज या क्षतिपूर्ति दिलाने का अधिकार ।

(iii) भुगतान की जानेवाली राशि के भुगतान की विधि एवं भुगतान का समय तय करना ।

(iv) यह तय करने का अधिकार कि पंच निर्णय के व्यय कौन सहन करेगा ?

(v) पंच निर्णय समझौते के पक्षकारों के कानूनी उत्तराधिकारी या कानूनी प्रतिनिधि तय करना ।

(vi) कानूनी सलाह के लिए वकील तय करना ।

9.8 पंच अथवा मध्यस्थ के कर्त्तव्य (Duties of Arbitrators or Umpire)

(i) समस्त पक्षकारों का समान रूप से ध्यान रखते हुए निष्पक्ष भाव से न्यायपूर्वक कार्य करना ।

(ii) उसे न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों का अनुकरण करना चाहिए।

(iii) किसी भी पक्षकार के लिए अभिकर्त्ता की तरह कार्य न करना ।

(iv) अपनी कार्यवाहियों से भी पक्षकारों को अवगत कराते रहना ।

(v) पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों की उपस्थिति में ही पंच-निर्णय सम्बन्धी कार्यवाही करना चाहिए।

(vi) पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों की उपस्थिति में ही पंच- निर्णय्य समबन्धी कार्यवाही करना चाहिए ।

(vii) परिनिर्णय का कार्य स्वयं ही अपनी अधिकार-सीमा के भीतर करना चाहिए ।

(viii) उन सभी विवादों पर विचार करना जो उन्हें निर्देशित किए गये है।

(ix) निर्धारित अवधि के अन्दर परिनिर्णय देना ।

(x) परिनिर्णय पर हस्ताक्षर करना और उसकी एक प्रतिलिपि न्यायालय में भेजना ।

(xi) परिनिर्णय देने के बाद पक्षकारों को इसकी सूचना देना ।

(xii) यह तय करना कि परिनिर्णय सम्बन्धी शुल्क अथवा व्यय के भुगतान कौन पक्षकार करेगा ?

9.9 परिनिर्णय (Award)

9.9.1 परिनिर्णय की परिभाषा-

अधिनियम की धारा 2 (b) के अनुसार, 'परिनिर्णय' पंचों द्वारा दिये गये उस अन्तिम और लिखित निर्णय को कहते हैं जो पंच निर्णय समझौते के पक्षकारों द्वारा इस प्रस्तुत किए गए विवाद के सम्बन्ध में पंचों या मध्यस्थ द्वारा लिखित रूप से दिया जाता है।''

9.9.2 वैध परिनिर्णय के आवश्यक तत्व (Essentials of a valid Award)-

एक परिनिर्णय को वैधानिक रूप से प्रभावशाली होने के लिए निम्नलिखित शर्तो को पूरा होना आवश्यक है-

(i) परिनिर्णय लिखित होना चाहिए ।

(ii) परिनिर्णय पर सभी पंचों अथवा मध्यस्थ का हस्ताक्षर होना चाहिए । किन्तु अगर निर्णय बहुमत के आधार पर दिया गया है तो विरूद्ध पक्ष का हस्ताक्षर होना आवश्यक है।

(iii) यह आवश्यक है कि परिनिर्णय देते समय सभी पंच उपस्थित हों ।

(iv) परिनिर्णय पूर्ण एवं अन्तिम होना चाहिए ।

(v) सम्पूर्ण निर्देशित मामले पर एक ही परिनिर्णय देना चाहिए ।

(vi) परिनिर्णय साफ-साफ एवं निश्चित अर्थ वाला होना चाहिए ।

9.9.3 परिनिर्णय को न्यायालय में दाखिल करना (To File the award in the court)-

अधिनियम की धारा -14 (2) के अनुसार परिनिर्णय प्रसंविदा के किसी पक्ष या उसके अधीन अधिकार रखने वाले किसी अन्य पक्ष के निवेदन पर अथवा अगर वह न्यायालय द्वारा निर्देशित है एवं परिनिर्णय से सम्बन्धित फीस एवं व्ययों का भुगतान कर दिया है और परिनिर्णय दाखिल करने के व्यय भी दे दिये हैं, तो पंच या मध्यस्थ के परिनिर्णय की हस्ताक्षरयुक्त प्रतिलिपि न्यायालय में दालिख करना आवश्यक है, इस परिनिर्णय के साथ वे पत्र, प्रपत्र या कागजात भी दाखिल किया जाना चाहिए जो पंचों के सम्मुख पेश किये गये थे एवं पंचों के सामने सिद्ध किये गये थे ।

धारा 14 (3) के अनुसार, अगर पंचों या मध्यस्थ ने न्यायालय के सामने कोई विशेष विषय उसकी सम्मति के लिए प्रस्तुत किया है और न्यायालय ने उस विषय पर पक्षकारों को पर्याप्त सूचना देने के बाद एवं उनकी बात सुनने के बाद अपनी सम्मति प्रदान कर दी जायेगी एवं वह परिनिर्णय का ही एक भाग होगा ।

9.9.4 परिनिर्णय के सम्बन्ध में न्यायालय के अधिकार (Power of the court regarding award)-

अधिनियम के अन्तर्गत परिनिर्णय के सम्बन्ध में न्यायालय से निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है-

(1) परिनिर्णय को संशोधित करना (to modify the award)- अधिनियम की धारा 15 के अनुसार न्यायालय निम्नलिखित परिस्थिति में परिनिर्णय को संशोधित अथवा रूपान्तरित कर सकता है-

(i) जब न्यायालय को यह ज्ञात हो जाय कि परिनिर्णय में कुछ ऐसे बातों पर भी विचार किया गया है जिनके लिए निर्देश नहीं किया गया था और उन्हें आसानी से निर्णय को बिना प्रभावित किये अलग किया जा सकता है।

(ii) जब निर्णय अपूर्ण या अधूरा हो अथवा उसमें कोई गलती इस तरह की हो जिसका सुधार निर्णय को प्रभावित किये बिना ही किया जा सकता है।

(iii) जब परिनिर्णय में लिपिकीय त्रुटि अथवा आकस्मिक भूल या त्रुटि हो गयी हो।

(2) पुनविचार के लिए परिनिर्णय को वापस भेजना (To remit award for econsideration)- अधिनियम की धारा 16 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय परिनिर्णय को पंच अथवा मध्यस्थ के पास फिर से विचार करने के लिए भेज सकता है-

(i) जब परिनिर्णय में निर्देशित विषयों में से किसी एक के सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया गया हो,

(ii) जब परिनिर्णय में अनिर्देशित विषय का निर्णय दिया गया हो और उसे निर्णय से अलग नहीं किया सकता है।

(iii) जब निर्णय अनिश्चित होने कारण कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है।

(iv) जब उस परिनिर्णय को देखने से साफ विदित हो कि वैधानिक दृष्टि से यह आपत्तिजनक है।

(v) यदि किसी पंच या मध्यस्थ ने दुराचरण किया है।

(vi) यदि परिनिर्णय देने के बाद अन्य कोई ठोस व प्रभावपूर्ण साक्ष्य का पता लगा हो। एवं

(vii) अगर पंच ने यह स्वीकार कर लिया है कि परिनिर्णय में उससे कई गलती रह गई है एवं वे उसे पुनविचार के लिए वापस चाहते है।

उपर्युक्त परिस्थितियों में यह परिनिर्णय पुनर्विचार हेतु वापस भेजा गया जो तो न्यायालय चाहे तो एक समय निर्धारि कर सकता है जिसके भीतर पंच अथवा मध्यस्थ पुनः अपना निर्णय देंगे, न्यायालय इस समय में वृद्धि कर सकता है।

(3) परिनिर्णय की शर्तों के अनुसार निर्णय देना (Judgement in terms of award)- धारा 17 के अनुसार न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में परिनिर्णय की शर्तों के अनुसार अथवा निर्णय दे सकता है-

(i) जब परिनिर्णय को निरस्त करने के लिए आवेदन देने की अवधि समाप्त हो गयी है।

(ii) जब परिनिर्णय को निरस्त करने के लिए आवेदन देने की अवधि समाप्त हो गयी है।

(iii) जब परिनिर्णय को निरस्त करने के लिए प्रार्थना- पत्रा समय पर दे दिया गया हो एवं वह प्रार्थना-पत्रा निरस्त कर दिया गया है।

(iv) जब न्यायालय में परिनिर्णय को दाखिल करने की सूचना दे दी हो।

(4) परिनिर्णय को निरस्त करना (Setting aside the award)- अधिनियम की धारा 30 के अनुसार न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में परिनिर्णय को निरस्त कर सकता है-

(i) यदि किस पंच अथवा मध्यस्थ ने स्वयं अथवा कार्यवाही के संचालक ने दुराचरण किया हो।

(ii) यदि परिनिर्णय न्यायालय द्वारा पंच को उसके पद से हटाये जाने अथवा पंचायत की कार्यवाही को रद्द करने के आदेश दिये जाने के बाद दिया गया हो।

(iii) यदि परिनिर्णय अनुचित ढंग से प्राप्त किया गया हो अथवा किसी अन्य कारणसे अवैध हो।

9.9.5 न्यायालय के हस्ताक्षेप द्वारा पंच निर्णय जब कोई वाद विचाराधीन नहीं है (Arbitration wit intervention of court where there is no suit pending)-

अधिनियम की धारा 20 में यह प्रावधान है कि पक्षकार चाह तो पंच-निर्णय समझौता को न्यायालय में दाखिल करने के लिए आवेदन कर सकते हैं । इस धारा के अनुसार यदि पक्षकार आपस में यह अनुबन्ध करता हो कि दोनों के बीच कोई उत्पन्न हो जाये तो कोई भी एक पक्षकार न्यायालय में आवेदन कर सकता है। आवेदन भी अन्य कागजात की तरह लिखित हो, नम्बर दिया गया हो एवं पंजीकृत हो एवं उसपर पक्षकारों का नाम लिखा होना चाएिह । आवेदन दे देने के बाद न्यायालय का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उससे सम्बन्धित पक्षकारों को इस बात की सूचना दे एवं न्यायालय के सामने यदि कुछ कहना चाहे तो कहे । यदि अन्य पक्षों को इसके विरूद्ध कुछ कहना नहीं हो तो न्यायालय उस विवाद को पंच द्वारा निर्णय कराने का आदेश दे सकता है।

9 9.6 पंच-निर्णय जब कि न्यायालय में वाद चालू है (Arbitration in suits)-

अधिनियम की धारा 21 से 25 के अनुसार पक्षकार चाहे चाहे तो न्यायालय में चालू वाद पर निर्णय प्राप्त करने के लिए पंच-निर्णय के लिए वाद निर्देशित करा सकते हैं । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं-

(i) यदि वाद के पक्षकार आपस में पंच-निर्णय के लिए सहमत हों, तो न्यायालय की घोषण से पहले पंच-निर्ण के लिए लिखित आवेदन कर सकते हैं ।

(ii) न्यायालय, आदेश द्वारा विवाद-ग्रस्त विषय को जिन पर उसे विचार करना है, पंच निर्णय के लिए निर्दिष्ट करेगा एवं उस आदेश में परिनिर्णय देने के लिए उचित समय भी निर्धारित करेगा।

(iii) न्यायालय, आदेश द्वारा विवाद-ग्रस्त विषय को जिन पर उसे विचार करना है, पंच निर्णय के लिए निर्दिष्ट करेगा एवं उस आदेश में ही परिनिर्णय देने के लिए उचित समय भी निर्धारित करेगा।

(iv) जब किसी चालू वाद के केवल कुछ पक्षकारों द्वारा ही विवाद-ग्रस्त विषय को पंच-निर्णय के लिए निर्देश की अनुमति दे सकता है, बशर्ते निर्देशित विषय शेष विवाद-ग्रस्त विषय से अलग करनें योग्य हो ।

9.10 सारांश (Summing up)

पंच निर्णय अधिनियम में विभिन्न प्रकार के विवादों की निपटाने सम्बन्धी नियमों की चर्चा की गई है। पंच के अधिकार तथा उसके वैधानिक एवं कानूनी मान्यता की चर्चा की गई है।

9.11 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

1 पंचों के अधिकारों का वर्णन कीजिये।

2 पंचों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधानों की चर्चा कीजिये।

9.15 पठनीय पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : शुक्ल एवं नारायण
2. व्यापारिक सन्नियम : एन० डी० कपूर
3. व्यापारिक सन्नियम : डॉ० मेहता